रात् साहेब

श्रीमती शीला व्यास

एम. ए. द्वय (हिन्दी, इतिहास) बी. एड.
गंगाशहर (बीकानेर) राज.

प्रकाशक :

कलासन प्रकाशन

माडर्न मार्केट, बीकानेर

फोन : 0151-2526890
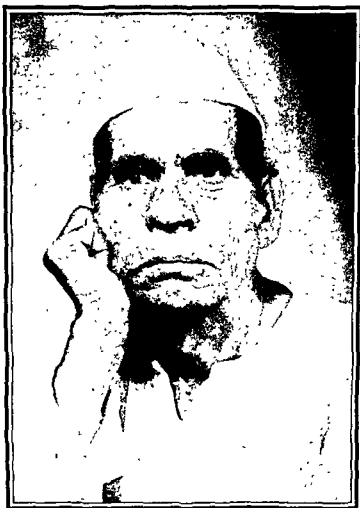
'प्राग्-मौर्य बिहार' के अध्येता, बिहार के प्रथम स्वर्ण पदक विजेता
परम पूज्य श्रद्धेय स्व. डॉ. देवसहाय त्रिवेदा

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के संवाहक, बीसवीं सदी के महान् क्रान्तिकारी इतिहासविद्, अनेकानेक ऐतिहासिक शोध ग्रन्थों के प्रणेता, ग्रामीणों के मसीहा, समाजसुधारक, 'प्राग्-मौर्य बिहार' के अध्येता, संस्कृत, आंग्ल भाषा (अंग्रेजी), हिन्दी और भोजपुरी के साथ-साथ अन्यान्य क्षेत्रीय भाषाओं के ख्यातनाम विज्ञ पुरुष मेरे पिताश्री श्रद्धेय स्व. डॉ. देवसहाय त्रिवेदा को सादर समर्पित।

श्रीमती शीला व्यास

संयुक्त परिवार की प्रमुखा, मां अन्नपूर्णा की साक्षात प्रतिमूर्ति जिन्होंने परिवार की विषम परिस्थितियों में परिवार के समस्त सदस्यों को निरन्तर झंझावतों से सुरक्षित रखा। स्वयं को आहूतकर परिवार की मर्यादा एवं अस्मिता को निरन्तर सुदृढ़ता प्रदान की। जिन्होंने रचनाधर्मिता का ज्ञानामृत पान कराके मुझे निरन्तर साहित्य सृजन की ओर प्रोत्साहित किया है।

उस महान विदुषी ममतामयी

मातृश्री

श्रीमती विद्यादेवी त्रिवेदी

को

को शत्–शत् नमन

दंश का निवारण समाज में जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा से होगा

✪ स्वामी श्री सोमगिरिजी महाराज ✪

साहित्य समाज का वह रूप है, जो स्पष्टत. मुखरित होकर व्यक्ति व समाज का हित सोचता है। इस प्रकटन मे भाषा आधारभूत प्रमुख साधन है। साहित्य की अनेक विधाएं हैं। उन सबका अपना-अपना रूप है, वैशिष्ट्य है। पद्य अभिव्यक्ति तथा गद्य अभिव्यक्ति, दोनो के ही अनेक रूप हैं। रचनाकार अपने संस्कार, दीक्षा, अभिरुचि, दक्षता आदि के अनुसार किसी एक या एक से अधिक विधाओ को अपनाकर सृजन करता है, किन्तु हर विधा की आत्मा है- लोक-मंगल। साहित्य द्वारा रचनाकार का एवं पाठको का चित्त शुद्ध, स्वस्थ और सुसंस्कृत बनना चाहिये।

रचनाकार या तो अपने स्वयं के जीवन मे जो-कुछ घटित होता है, उसको लेकर रचना करता है अथवा दूसरो के जीवन को देखकर फिर कुछ अनुभव करता है अथवा अन्यों के अनुभव को स्वय में आरोपित कर, फिर रचना करता है। किन्तु श्रेष्ठ रचना के लिए यह आवश्यक है कि अनुभव को गहरा व विस्तृत किया जाये, उसे देश, काल, व्यक्ति व परिस्थिति से बाहर ले जाया जाये और फिर उसे शब्दो द्वारा व्यक्त किया जाये।

उपन्यास साहित्य की वह विधा है जिसमे कई पात्र व कई परिस्थितियों का चित्रण, विश्लेषण व संश्लेषण किया जाता है और प्राय· यह होता है एक बडे कालखण्ड की रचनाओ का अवलम्बन लेकर।

श्रीमती शीला व्यास द्वारा लिखित उपन्यास "दंश" मे एक परिवार के कई सदस्यों को लेकर उनके सम्बन्धो, अनुभवो, क्रियाओ, प्रतिक्रियाओ को विस्तार से चित्रित किया गया है। सधी हुई भाषा द्वारा हर पात्र का व हर परिस्थिति का सुन्दर चित्रण किया गया है। जहां राग है वहा दु:ख होना अवश्यम्भावी है, संसार की रचना मे ही अनित्यता, जन्म, मृत्यु, जरा, दु.ख, व्याधि, भय आदि ग्रथित हैं। इनके द्वारा अनुभूत दु:ख को यदि दंश माना जाता है तो समझ लेना चाहिये कि अभी तक कर्म-सिद्धान्त, कर्मफल प्रदाता ईश्वर, सुहृद ईश्वर तथा पुनर्जन्म आदि के विषय मे दोषपूर्ण अवधारणा है। दहेज को लेकर पुत्रवधू को जला देना, सम्पत्ति को लेकर सघर्ष, परस्पर

राग–द्वेष को लेकर व्यवहार, सामाजिक विकृतियां व व्यक्ति की कमजोरियां – इनसे होने वाले दश का निवारण समाज मे जीवन–मूल्यों की प्रतिष्ठा से होगा।

संयुक्त परिवार की महत्ता, पति–पत्नी, माता–पिता, पुत्र, भाई–बहिन, भाभी आदि रिश्तों की मधुरता का सुन्दर चित्रण इस उपन्यास मे हुआ है। घटनाओं के बीच–बीच मे नारी की महिमा, मानवीय मूल्यो की आवश्यकता का समुचित उल्लेख हुआ है।

पात्रो के अन्तर्द्वन्द्व का सूक्ष्म चित्रण श्लाघनीय है। इस उपन्यास के सभी पात्रो मे जीवटता, आत्मबल तथा लक्ष्य प्राप्ति के लिये सजगता एव संकल्पशक्ति है। अत पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक वातावरण से जब भी पात्र दमित होता है, वह अपनी कर्तव्यपरायणता एवं दायित्वबोध से सहज ही मुक्त होने मे सफल हो जाता है।

मै मा शारदा से प्रार्थना करता हू कि उपन्यास की लेखिका श्रीमती शीला व्यास और भी अधिक श्रेष्ठ उपन्यासो की रचना कर मां शारदा को समर्पित कर सके, एतदर्थ शिवाशीर्वाद है।

शिवाय [illegible]

संवित् सोमगिरि

शिवबाड़ी मठ, शिवबाड़ी, बीकानेर

'दंश' देखते हुए....

◆ श्री हरीश भादानी ◆

समय की अनदेखी झीनी परत निरन्तर गतिशील रहती हुई मात्र शिखर–कन्दरा ही क्यो, मानवीय जीवन के हर गहरे–उथले दश को ढकती–छवाती चलती है। हर छांह–पर्त पर वर्तमान अपने को उकेरता जाता है। जबकि श्री शीला अपने 'दश' मे उस परिवेश को उतारती है जहा से वे आई हैं– अकेली नहीं, पूरे संस्कारो और घटनाओ के साथ आई हैं।

जहां अपनी निजता के साथ अपने परिवेश को जिया है, उसका उल्लेख निरी भावुकता के साथ करने मे सफल हुई हैं, पर जहां वे पर्यवेक्षक की भूमिका का निर्वाह करने लगती हैं, वहां उनसे वह भाववेग तो छूटता ही है, सम्बोधनात्मक सम्बध भी फिसल–फिसल जाता है। पाठक के सामने काशी के उनके परिवेश का वर्णन–भर रह जाता है। यहा पाठक को अचरज भी होता है कि हेमाचल वासिनी श्री शीला अपने निकटतम परिवेश से निरी अछूती रह कर वर्तमान मे अपने अतीत को वर्णन और भावावेग के साथ रूपायित करती चलती है, और अपने कथासार "दश" का समाहार करती हुई अपने वर्तमान के लिए ऊर्जा लेने को भी सकल्पित दिखती हैं।

यह "दंश" अधिक महत्त्वपूर्ण होता यदि वे डॉ. त्रिवेदा की इतिहास–शोधो का सन्दर्भ सहित उल्लेख करतीं। केवल एक सन्दर्भ का उल्लेख पाठक की जिज्ञासा को उकसाता है। यह जिज्ञासा उकसी ही रह जाती है।

एक ही लीक पर जी रहे परिवार पर अपने समय की परिस्थितियो का दबाव पडता है और हर घटक उसे सहजता से अपनाता चलता है। पीढियो का अन्तर बाधाएं उपस्थित नहीं करता। सौम्या अपने स्वभाव–विशेष के चलते 'दश' का अनूठा चरित्र बन पडा है। करुणा के प्रति पर्यवेक्षक के रूप मे ही सही, शीलाजी की दृष्टि की प्रशसा ही की जानी चाहिए।

यह पाठक शीलाजी से अपेक्षा करता है कि 'दश' का उत्तरार्द्ध जब भी आए डॉ त्रिवेदा' की इतिहास पर दृष्टि के एक–एक पन्ने को खोलता हुआ आए, अन्यथा इस पाठक की तरह अन्य पाठक भी सम्भवत. यह मानने लग जाएं कि गद्य में प्रवाह रखती शीलाजी से एक महत्त्वपूर्ण अनुभव विस्तार लेने से कैसे छूट गया?

मुझ जैसे कई पाठको को 'दश' के उत्तरार्द्ध की प्रतीक्षा रहेगी। उनका कर्म ऊर्ध्वगामी रहे, मेरी कामना।

हरीश भादानी
छबीली घाटी, बीकानेर

।। श्री हरि ।।

'दंश' उजले आसारों का द्योतक है

✿ श्री अन्नाराम सुदामा ✿

राजस्थान के हिन्दी साहित्य क्षेत्र मे महिला लेखिकाओ की सख्या उगलियो पर गिनी जाने योग्य ही समझे। उपन्यास क्षेत्र मे तो यह पात और भी क्षीणकाय प्रतीत होती है। उस पांत को कुछ और विश्वस्त और विस्तृत करने के योग मे श्रीमती शीला व्यास की लेखनी कटिवद्ध लगती है। कहानी और कविता के क्षेत्र मे उनकी प्रमुख कृतिया, अनुभूति के स्वर (काव्य संग्रह) माटी की गन्ध (कहानी सग्रह) भी काफी चर्चित रहीं। उपन्यास विधा मे दश उनकी प्रथम कृति है। नयनपथपार करते उसके सयत और सौदेश्य पदचापो की गति देखते यह प्रतीत हुआ कि यह यात्रा उसकी किसी निश्चित ऊचाई पर समासीन होने मे समर्थ होगी। कृति यह उजले आसारो की द्योतक है।

ताना–बाना इसका धार्मिक विश्वासों की धरती पर खडा किया हुआ है पर न रूढिग्रस्त है और न ही है दकियानूसी, ऊबाउ भी नही।

कथा के ताने–बाने मे कसाव है, विखराव कही नहीं, न कहीं तोड–मोड और न कही गाठ। देहाती शब्दावली का प्रयोग कही–कहीं पर हुआ है, वह आटे मे नमक की तरह है, वह सप्रयोजन और सुस्वाद्य।

लगता है गगा के उपकंठ मे बसने वाला परिवार पतितपावनी गगा की पवित्रता मे आबद्ध हो गया है, उपन्यास मे ही नही, आचरण मे भी। चिदानन्द सन्दोह शकर की उपासना मे सबकी रुचि। बडे–बूढो की छोडिये, बिना गगा नहाए और अपना पाठ याद किये बिना बच्चो को भी नाश्ता मिलना दुर्लभ था। (पृ स 2) सही तो यही है कि सस्कार के बीज बचपन की धरती पर गडकर ही गहन गम्भीर वृक्ष का रूप धारण करते हैं।

सोनू पिल्ले का वर्णन कुछ अतिरजित लगता है। पर स्नेहाधिक्य और भावातिरेक मे ऐसा होना असहज भी नहीं।

प्रमुख पात्र इसके बाबूजी हैं जो सारे परिवार को एक सोदेश्य धरती पर सुदृढ सेतु की तरह सम्हाले हुये हैं। प्यार और धैर्य के साथ, अनगिन कामनाओं की आधी मे किसी को भी उखडने नही देते जरा भी। उनके महाप्रयाण पर परिवार के सभी सदस्य अनायत दशित हो उठते हैं। यह सहज, स्वाभाविक है। और तो और पाठक भी इस अनुभूति से अछूता नहीं रहता। दश की यह उपलब्धि कम नहीं। कुल मिलाकर दश एक उत्प्रेरक उपन्यास है और लेखिका के अगले पडाव का मगल सूचक। इत्यलम्

अन्नाराम सुदामा
गगाशहर

'दंश' - स्वर्णिम इतिहास की खुलती परतें

❁ नरेन्द्र नीरव ❁

हिन्दी मे पारिवारिक उपन्यासो की सवेदनशील लेखन–परम्परा है। अनेक कविजन काव्य के माध्यम से भी अपने कुलगौरव अथवा भक्ति की कृतिया देते रहे हैं। आंचलिकता का अपना सम्मोहन है। आचलिक रचनाकार अपने इकहरेपन को बेवाक तरीके से जाहिर कर देते हैं। उनके पाठक भी सीमित होते हैं, किन्तु अधिकाश घर ऐसे होते हैं, जहां 'रामचरितमानस' के बाद कोई आंचलिक कृति या स्मारिका होती है। प्राय ऐसी पुस्तके खरीद कर नहीं पढी जातीं। बाजार मे इस तरह की पुस्तको के प्रकाशन–खर्च की वापसी नही हो पाती, फिर भी इनका प्रकाशन होता रहता है।

रचनाकार एक व्यक्ति मे ससार को देखने के लिये स्वतत्र है। परिवार में ही भू–मडल को देख सकते हैं। यदि कुटुम्ब की परम्परा कुछ भी गौरवशाली हो तो कलम उसको समेटती–सहेजती जरूर है।

'दश' उपन्यास की लेखिका डॉ शीला व्यास मूलत. वाराणसी की सुकन्या है जो राजस्थान प्रदेश के बीकानेर मे अपने यशस्वी पति डॉ सिद्धराज व्यास के साथ रहती हैं। विद्वान सपादक पति के साथ डॉ.शीला व्यास की जीवन–यात्रा शिक्षण, सत्सग, देशाटन और लेखन की दिशा मे निरन्तर चलती रही है। 'दिशाकल्प' पाक्षिक के सुन्दर वार्षिकाक और सन्तो के विचार मूल्यवान हैं। डॉ शीला व्यास की प्रकाशित कथाकृति 'माटी की गध' और 'अनुभूति के स्वर' (काव्य संग्रह), 'इन्द्रधनुष के पार' (काव्य सग्रह) को पाठको ने पसन्द किया है।

मेरे सामने डॉ शीला व्यास के उपन्यास 'दंश' की पाण्डुलिपि है। यह काशी में नगवा सामने घाट पर बने उस सबसे पुराने मकान की कहानी है जो चरित्र के साथ देश–देशान्तर मे घूमती रहती है। इस परिवार की कथा मूल रूप मे सुप्रसिद्ध इतिहासकार, सस्कृत और भोजपुरी के महान विद्वान डॉ. त्रिवेदा के अनूठे जीवन–चरित्र के इर्द–गिर्द घूमती है। डॉ त्रिवेदा का जीवन–संघर्ष अपने–आप मे एक महाकाव्यात्मक उपन्यास का विषय है। आज नही तो कल, लोग उन्हे पढेगे और उनके जीवन–संघर्ष से प्रेरणा लेगे।

श्रीमती शीला व्यास ने बिहार के अपने पैतृक गांव नगवा के अपने घर, राजस्थान के ससुराल और कोलकाता की घटनाओ को संस्मरण कथा के रूप मे निपुणता से पिरोया है। गंगा नदी की बाढ में घायल कुतिया के इलाज और जिद्दी बंदरिया के शृंगार के संस्मरण रोचक हैं। उपन्यास के 12वें अध्याय मे लेखिका ने छोटी बहन माधवी (काल्पनिक नाम) की दहेज–हत्या का हृदय–विदारक वर्णन किया है। सहज ही लेखिका का आक्रोश एक कठोर व्यग्य तथा सदेश मे बदल जाता है --

'हम नवरात्रि पर अपने घरो मे मां दुर्गा की प्राणप्रतिष्ठा करते हैं। दीपावली पर लक्ष्मी की उपासना करते हैं। विद्याप्राप्ति के लिये मां सरस्वती की आराधना करते है। पर, हमारे–आपके घरों मे शक्तिरूपा नारी, जो संपूर्ण परिवार की धुरी है, उसी की उपेक्षा करते हैं। पता नहीं यह परंपरा कब तक चलती रहेगी और न जाने कितनी यौवनमयी कलिकाएं सामाजिक अत्याचारो से दशित होती रहेगी। .... हम परपरागत रूप से दुर्गापूजा का पर्व तो अवश्य मनाते हैं, पर हमारे घरो मे आज स्त्रियां ज्यादा डरी और असुरक्षित हैं। वहा पुरुषो के रूप मे महिषासुर उनका रोज मर्दन करता है। उन पर अत्याचार, प्रताडना और यातना के कोडे रोज बरसाता है। आज हमारे सामाजिक जीवन मे महिषासुरी शक्तिया दिन–प्रतिदिन हिसक और खूखार प्रवृत्तियो का रूप धारण कर चुकी है। समाज मे दुर्गाओ का दहन रोज हो रहा है। जब तक इस अनवरत दहन का प्रतिकार नही करेगे, हमारा शक्ति–पूजा पर्व मनाना निरर्थक है।'

'दंश' का परिवेश विस्तीर्ण है। उसमे जितने चरित्र लेखिका की स्मृतियो को कुरदते हैं, उनमे से कुछ को उन्होने स्थान दिया। उदाहरण के लिये सुविख्यात् उपन्यासकार डॉ. शिवप्रसादसिह के संस्मरण। जब श्रीमती शीला व्यास ने अपना प्रथम काव्यसग्रह डॉ शिवप्रसादसिह को सौंपा तब उन्होने गद्य मे लिखने का स्नेहपूर्ण सुझाव दिया। 1992 मे जब लेखिका ने अपनी कहानियो का संग्रह 'माटी की गंध' डॉ शिवप्रसादसिह को भेट किया तब उन्होने 'शिवास्ते पथा' शीर्षक से शुभकामनाए लिख कर दी। लेखिका 'दश' के प्रकाशन अवसर पर डॉ शिवप्रसादसिह को बीकानेर बुलाना चाहती थी किंतु इस बीच उनका आकस्मिक देहावसान हो गया।

लीक छोडकर चलने वाले सपूत को लोग सहज ही स्वीकार नहीं कर पाते। नये रास्ते बनाने का काम जो करते हैं, नये रास्ते पर चलने जोखिम भी वही उठाते हैं। परवर्ती तो सिर्फ अनुसरण करते हैं। डॉ. देवसहाय त्रिवेदा

की प्रखरता, अक्खडता और साफगोई को बर्दाश्त करना सामान्य व्यक्ति के बूते की बात नहीं। आजादी के बाद के सभी बडे दार्शनिको, इतिहासकारो से उनका परिचय था। फिर भी उनका 'मिशन' उनके जीवनकाल मे पूर्ण नही हो सका। भारतीय इतिहास की सुनहरी वास्तविकता आज भी मिट्टी के नीचे दवी हुई है। नकली, सुविधाभोगी और परदेशमुखी इतिहासकारो की आक्रामक गोलबंदी अब भी सत्य को नकार रही है।

सत्य को कोई भी गर्भ छिपा नही सकता। कभी–कभी सत्य कमजोर या अकेला पड सकता है। धुएं का गुबार सूर्य को कुछ देर के लिये ढक सकता है। श्रीमती त्रिवेदा की स्थापनाओ को लोग कभी–न–कभी स्वीकार करेगे जरूर।डॉ. शीला व्यास का उपन्यास 'दंश' इस नयी आशा का ही संदेश देता है। अपने पिता और कलाधर्मी परिवार के संघर्ष की कहानी में उन्होने 'दंश' का यही अनुभव पिरोया है जो किसी भी क्रांतिकारी की आत्मजा को हो सकता है।

आज डॉ. त्रिवेदा का वंशवृक्ष विभिन्न दिशाओ मे पल्लवित–पुष्पित है। काव्य, आलोचना, चित्रकला, नाटक, सिनेमा, शिक्षा, फोटोग्राफी और जन–सचार के साथ जन–संघर्ष में भी उनके परिजन यशस्वी सिद्ध हैं।"डॉ. सिद्धराज व्यास और श्रीमती शीला व्यास वही रचनाकर्म कर रहे हैं जो फौजी हमले से पहले 'अगला दस्ता' करता है। रास्ता बनाता है और राहो के अवरोध हटाता है। शीला व्यास का उपन्यास भी एक प्रयोग है जो हमे क्षण–भर रुक कर सत्य के भावनापूर्ण साक्षात्कार की प्रेरणा देता है। यह 'दंश' सृजन की शक्ति को जन्म देगा, हमे यह पूर्ण विश्वास है।

नरेन्द्र नीरव
समालोचक एव ख्यातनाम साहित्यकार
ब्यूरो–प्रमुख, दैनिक गाण्डीव
वाराणसी, सोनभद्र ओबरा, सोनभद्र, उ.प्र

दंश : दर्शन

✿ कुंवर वीरसिंह मार्तण्ड ✿

वहन शीला व्यास कृत उपन्यास दंश आद्योपांत पढा। उपन्यास अच्छा वन पडा है। इसे पारिवारिक उपन्यास कहना ही उचित होगा। इसमे एक ऐसे परिवार की व्यथा–कथा है जो विहार प्रदेश के रोहतास क्षेत्र के ढोढन डिहरी गाव से आकर वनारस के गंगा घाट पर वस गया है। डॉ. त्रिवेदा इस परिवार के मुखिया हैं जो अपने पैतृक गांव मे 'नेउर चाचा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये भारतीय संस्कृति के समर्थक होते हुए भी आधुनिक विचारधारा से सम्पृक्त है। कई स्थलो पर ये परम्पराओ को तोडते हुए भी दिखाई पडते हैं एवं कठिन से कठिन पारिवारिक परिथितियो मे वहुत सूझ–वूझ एव साहस का परिचय देते हैं। विशेषकर सुमि के विवाह के अवसर पर, जव ये सुमि का विवाह एक राजस्थानी युवक से करना चाहते हैं और सुमि के मामा, जो अपने इलाके के जाने–माने जीवट व्यक्तित्व के धनी हैं, इस विवाह का विरोध करते हैं। डॉ. त्रिवेदा इस असमंजस की स्थिति मे अपने निर्णय पर अडे रहते हैं और अन्तत सबको उनके सामने झुक जाना पडता है। इस अवसर पर वे ठेठ भोजपुरी भाषा का प्रयोग करते हुए कहते हैं– "पडितजी, द्वारपूजा का कारज जारी रखिये। बिटिया के तेल चढ गयल है। मट मगरा की रस्म भी हो गई है। ओ का वियाह एही मडवे मा अउर एही लगन मै ए ही लरिका सग होई। कौनो माई का लाल अव ई बियाह ना रोक सकेला।"

इसी प्रकार जव उनके दो बेटे, वीनू और बीजू प्रेमविवाह करके अपनी–अपनी पत्नियो को घर ले आते हैं, तो पहले तो वे क्रोधित होते है, फिर गगा मे कूद कर आत्महत्या करना चाहते हैं, मगर फिर उनमे नई शक्ति जन्म लेती है और वे पडित बुलाकर उनसे दोनो के विवाह का मुहूर्त निकलवा कर लडकियो के पिताओ को खबर देकर एक ही साथ दोनो की विवाह प्रक्रिया सम्पन्न करवाते हैं।

डॉ त्रिवेदा का परिवार सयुक्त परिवार की एक अच्छी मिसाल है। उनका पाच बेटे और तीन बेटियो का भरापूरा परिवार है। इनमे बेटी सुमि और

तीन बेटे वीनू, वीजू और परिमल ही सर्वाधिक सक्रिय दिखाई पडते हैं। पुत्रवधुए भी वैसी सुशील एव समझदार हैं। वे किसी पारिवारिक कार्यक्रम की जिम्मेदारी गाते–वजाते निभाती हैं। बेटियो मे सुमि बहुत ही सामाजिक है, परिवार के हर सदस्य के प्रति उसके मन मे गहरा लगाव है। बेटी होकर भी वह माता–पिता के प्रति फर्ज–अदायगी मे कहीं–कही तो भाइयो से भी आगे खडी दिखाई पडती है। मा को जब लकवा मार जाता है तो वह उसे अपनी ससुराल ले जाती है ओर भरपूर सेवा–सुश्रूषा करती है। कठिन परिस्थिति तो तब आती है जब सुमि के पिताजी का देहावसान हो जाता है और डाक्टर की सलाह के अनुसार सुमि मा को यह बात नहीं बताती, बल्कि रोज उसकी माग मे सिदूर लगाती रहती है। इन सब घटनाओ के माध्यम से सुमि का चरित्र बहुत ऊचा उठ गया है।

सुमि के मामाजी का चरित्र भी बहुत प्रभावित करता है। वे अपने इलाके के जाने–माने गुण्डे थे। पर किसी निरीह या निरपराध को सताने वाले गुण्डे नही, बल्कि अन्याय का प्रतिरोध करने वाले गुण्डे। उन्होने एक बार लुटेरो के साथ भी लाठी चलाई थी। लेखिका ने यह भी संकेत दिया है कि पंडित वेचन शर्मा उग्र की कहानी 'गुण्डा' का चरित्र वास्तव मे सुमि के मामाजी का चरित्र है।

उपन्यास के अन्य चरित्र गौण हैं। सुमि के रूप मे लेखिका स्वय ही है। वास्तव मे यह लेखिका के परिवार की ही व्यथा–कथा है। लेखिका ने कहीं भी किसी पात्र का पूर्व परिचय देने की आवश्यकता नही समझी है। क्योकि उनका चरित्र जाना–पहचाना है। पाठको को इस कारण कही–कही कठिनाई भी महसूस हो सकती है।

उपन्यास की भाषा बहुत ही सहज, सरल एव बोधगम्य है। लेखिका का भाषा पर अच्छा अधिकार है। उसकी कथ्य शैली भी रोचक है। उपन्यास की कथा राजस्थान के बीकानेर, बनारस एव कोलकाता के परिवेश को समेटे हुए है। इसमे कही भोजपुरी एव कही मारवाडी बोली के भी दर्शन होते हैं। यथा जब सुमि अपने पति के साथ अपनी ससुराल पहुचती है तो जेठजी कहते हैं– "म्हारा भाग घणा ही चोखा है। म्हारा पढा–लिखा भाई आज घणे बरसा बाद म्हाने मिलिया है। पढी–लिखी बीनणी म्हारे घर मे, आगने मे आई है। आ जरूर एक दिन म्हारे कुल रो नाम उजागर करसी।"

इसी प्रकार पिताजी के अधिकतर बाहर रहने से मा जब बच्चो के सम्बन्ध मे चिन्तित होती तो डॉ साहब कहते– "काहे के हलकान होतहऊ,

अव तुहार वचवा के पाव जम गइल वा, अव ऊ ममता के पिजरे मे रहे वाली *चिराई नहिरवे, ओकर ममता तियाग दा।"*

कुल मिलाकर उपन्यास पठनीय है एवं प्रेरणास्पद है। विशेषकर टूटते परिवारों के इस वातावरण मे संयुक्त परिवार की व्यथा–कथा को समेटे यह उपन्यास शीतल हवा के झोके–सा लगता है।

परिवार है, समाज है, तव तक दश तो आते ही रहेंगे कि सुमि के पिताजी की तरह दंशो की परवाह न कर गृहस्थी को खण्ड–खण्ड होने से वचा लेना ही परिवार के मुखिया का दायित्व रहेगा। कवि के शब्दो मे –

मुखिया मुख सौ चाहिए, खान पान को एक।
पाले पोसे सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।।

मानसिक एवं सामाजिक दंशो से पीडित सुमि का हृदय जिस प्रकार अपने पिता की स्मृतियों की शीतल छाव मे ही सुख की प्राप्ति करने वाली बेटिया हो तो वह पिता भी धन्य हो जाता है।

मैंने लेखिका की अन्य काव्य पुस्तके भी पढी हैं और गद्य की यह पहली पुस्तक पढी। लेखिका की लेखनी मे गजब की शक्ति है। लेखिका और भी आगे वढे, उसकी लेखनी और भी शक्तिशाली हो। इसी शुभकामना के साथ–

दिनाक · 14 01.06
मकर सक्राति

कुंवर वीरसिंह मार्तण्ड
सम्पादक–साहित्यत्रिवेणी
डी–28, मंदिर साइड क्वार्टर्स
विरलापुर, दक्षिण 24 परगना–743318

मानवीय संवेदनाओं का जीवन्त उपन्यास 'दंश'

● डॉ. सरला अग्रवाल ●

सुविख्यात कवयित्री एव कथाकार श्रीमती शीला व्यास विगत तीन दशको से साहित्य सृजन मे साधनारत हैं। उनके दो काव्य संगह 'अनुभूति के स्वर', 'इन्द्रधनुष के पार' तथा एक कहानी संग्रह 'माटी की गंध' प्रकाशित हो चुके हैं, जिन्हे राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा अनुदान भी प्राप्त हुआ है। 'दश' उनकी चौथी कृति है।

एक सौ पचास पृष्ठों मे समाहित यह उपन्यास 'दंश' मानवीय सवेदनाओं का जीवन्त दस्तावेज है। इसमे जीवन में पग-पग पर घटित होने वाले घात-प्रतिघातो और चुनौतियों के बीच संघर्षरत एक परिवार की व्यथा-कथा का वर्णन है।

इस परिवार मे पति-पत्नी और उनके तीन बच्चे हैं। तीनो बडे हैं। दो पुत्र और एक पुत्री। पति-पत्नी, बेटे-बहू और पुत्री, सभी अपनी-अपनी जगह संस्कारित, दृढ़निश्चयी तथा व्यवहारकुशल दर्शाये गये हैं। मां अपना सम्पूर्ण जीवन अपनी सन्तानो के सही पालन-पोषण और सेवा मे होम कर देती है तो पिता उन्हे संस्कारित, नैतिक चरित्रवान् बनाने मे।

पिता अपने कर्तव्य को पूर्ण करते हुए ससार से विदा लेते हैं तो मा अन्तिम समय मे लकवाग्रस्त हो वाणी भी खो बैठती है, फिर भी वह वाकर के सहारे कार्यरत रहती है। मंझला बेटा कैंसर का शिकार होने पर भी अन्य लोगों की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहता है। बडी बहू एन.सी.सी अफसर है, पर जीवन के अन्तिम वर्षों मे मधुमेह तथा हृदयाघात जैसी भयानक व्याधियो से घिर जाने पर भी हार नही मानती और समाज को नवीन चेतना प्रदान करती है। इसी प्रकार परिवार की लाडली पुत्री माधवी अपने ससुराल मे पारिवारिक उलझनों एवं समसयओ का दृढतापूर्वक सामना करती है।

इस प्रकार उपन्यास का प्रत्येक पात्र शारीरिक, मानसिक एवं पारिवारिक दश से पीडित होने पर भी आरभ से लेकर अंत तक अपनी जीवटता एव जिजीविषा के साथ प्रतिकूल स्थितियो मे भी निरन्तर संघर्षरत रहता है।

लेखिका ने एक ही परिवार के सभी सदस्यो पर आपदा–पर–आपदा आती दिखाई है, जो उन्हे शारीरिक, मानसिक और मनौवैज्ञानिक दृष्टि से तोड सकती थी, पर फिर भी वे टूटते नहीं हैं। वे उसी प्रकार धैर्य और दृढता के साथ अपने–अपने कार्यो मे जुटे रहते हैं। माता–पिता अपने तन, मन और धन, सभी की आहुतिया देकर भी परिवार को विखण्डन से बचाते हैं। इसके लिए वे बाहर वालो की आलोचना की भी परवाह नही करते। यही दर्शाना लेखिका का उद्देश्य है और उपन्यास का सदेश भी।

यह उपन्यास पाठक को दु:ख, कष्ट और विषम परिस्थियो में भी जीवन्तता से जीने की कला सिखाता है। उपन्यास अत्यन्त प्रेरणादायी है, पाठको के समक्ष घोर अन्धकार के बीच आशा का उज्ज्वल दीप जलाता है।

उपन्यास की भाषा सहज और सरल है। पात्रों के अंतर्द्वन्द्व, व्यथा, सवेदनाओं और अनूभूतियो को उनके स्वाभाविक सहज रूप मे अभिव्यक्ति दी गई है। उनके सभी पात्र अपने रूप, रंग, मन स्थितियो एव विचारो मे सम्पूर्ण हैं। मुख्य पात्रो का निवास समय–समय पर देश के कई राज्यों में दिखाया गया, जैसे बिहार, बगाल तथा उत्तरप्रदेश। लेखिका ने वहा के परिवेश, देश तथा काल के अनुरूप ही भाषा, रहन–सहन, पर्व–त्योहार, राजनीतिक घटनाओ आदि का सटीक वर्णन किया है।

उपन्यास कथानक से कहीं भी भटका नही है। वह पाठक को अपने साथ बांधे रखता है। मुझे आशा ही नहीं, विश्वास भी है कि श्रीमती शीलाजी व्यास का यह उपन्यास पाठको को अवश्य पसंद आयेगा। मेरी ढेरो हार्दिक शुभकामनाए।

डॉ. सरला अग्रवाल
'आस्था' 5–बी–20, तलवण्डी
कोटा–324005(राज)

"सत्–साहेब"

चरैवेति-चरैवेति.......

✿ डॉ. सिद्धराज व्यास ✿

संसार नश्वर है, जन्म के साथ–साथ मृत्यु भी प्रतिपल–प्रतिक्षण जीव के साथ–साथ चलती रहती है। काया से छाया विलग नही हो सकती है, उसी प्रकार जीव का आगमन ही मृत्यु के वरण के लिये है। प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा रचित सृष्टि नश्वर है और निरन्तर चरैवेति–चरैवेति की ओर अग्रेसित है।

शब्द की साधना परमात्मा की उपासना है। शब्द की सरचना अपने–आप मे महान् है। अक्षर शब्द का प्राणाधार है। अक्षर कभी क्षय नहीं होता है, उसका रूप, आकार और दर्शन सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे अनवरत प्रतिध्वनित होता रहता है। शब्द–शिल्पी द्वारा सृजित साहित्य विश्व की अमूल्य धरोहर। शब्द की संस्कृति और सभ्यता का जनक है – साहित्यकार। अत शब्द–शिल्पी की रचनाए कालजयी और अजर–अमर होती हैं। साहित्य शब्द का शाब्दिक तात्पर्य है – सत्य का अनुसरण करता हुआ जन–जन के कल्याण के लिये साहित्य का सृजन करे। साहित्य के माध्यम से रचनाधर्मी अपना सन्देश जन–जन तक पहुंचाने का अथक प्रयास करता रहता है जिससे निरन्तर नूतन साहित्य सृजन की प्रेरणा साहित्यकार को मिलती रहती है।

बीज मे विराट् वट वृक्ष का आकार लेने की क्षमता निहित है। बीज को समुचित सुविधाए, देख–भाल तथा उचित रख–रखाव विराट् स्वरूप प्रदान करता है, लेकिन विपरीत परिस्थितियो मे भी बीज पाषाणो को विखण्डित कर अकुरित और प्रफुस्टित होने की शक्ति रखता है। प्रतिभासम्पन्न प्राणी अनुकूल परिस्थितियो मे भी अपनी क्षमता का परिचय देने मे निश्चय ही सफल होता है।

इन्द्रधनुषी स्वप्न देखना, कल्पना लोक मे विचरण करना सवेदनशील प्राणी का सहज स्वभाव है। शब्द–शिल्पी के समक्ष जो कुछ घटित होता है उससे वह अछूता नही रह सकता है। स्वप्न साकार रूप ले सके, इसके लिये यह आवश्यक है कि, इच्छाशक्ति, सकल्पशक्ति और विश्वास को और अधिक सुदृढ बनाया जाय। यात्रा–पथ पर आने वाले झझवातो को निष्क्रिय करता हुआ

साहित्यकार अपनी रचनाधर्मिता का आदर्श स्वरूप प्रस्तुत करने का भगीरथ प्रसास करता है।

कालजयी रचना का महामना स्व प मदनमोहन मालवीय ने अपने उद्‌बोधनो मे इस बात पर अधिकाधिक बल दिया है "प्रत्येक प्राणी ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा का धनी है, आवश्यकता है उस प्रतिभा को संस्कारित और सत्यनिष्ठ बनने का सुअवसर प्रदान किया जाय, यह कार्य समाज के विशिष्ट कर्णधार और साहित्य जगत् के गणमान्य सस्कृतनिष्ठ व्यक्ति ही कर सकते हैं।"

मानव–मन निरतर कुछ करता ही रहता है। सूक्ष्म शरीर में घटित घटनाए मानव–मन को निरन्तर सृजन की ओर प्रेरित करती रहती हैं। मन बुद्धि और ज्ञान से सर्वाधिक प्रभावित होकर चतुर्दिक् घटनाओ को साकार स्वरूप प्रस्तुत करता रहता है।

यह सर्वविदित है कि दु.ख बांटने से कम होता है और सुख बांटने से निरन्तर वृद्धि होती है। सुख और दु.ख एक दूसरे के पूरक हैं। व्यक्ति अपने मनोभावो को विभिन्न माध्यमो द्वारा अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है। जनम से लेकर जीवन के अन्तिम पडाव तक मानव–मन सांसारिक जिम्मेदारियो को पूर्ण निष्ठा से सम्पादित करता है। जीवन के हर क्षेत्र मे अपने वर्चस्व को बनाये रखने के शत–शत प्रयास करता रहता है, जिससे उसे समय–समय पर मान–सम्मान, अपमान, दु.ख, कष्ट आदि वर्जनाओ को आत्मसात् करना होता है। इतना ही नहीं, उसे अपनो द्वारा प्रताडित, उपेक्षित और उत्पीडित भी किया जाता है। शरीर पर लगा चोट का घाव धीरे–धीरे भरकर चोट के कष्ट को भुला देता है, लेकिन शब्दाघात द्वारा मानसिक व्यथा को व्यक्ति भुलाने पर भी नही भूल पाता है। व्यक्ति के जीवन की यही नियति है कि वह जीवन पर्यन्त उपेक्षित भाव से मुक्ति पाने के लिये अनवरत सघर्ष करता रहता है।

जीवन का नाम ही कर्म है। हमारा कर्म ही हमारा धर्म है। हम अपने कर्म से किसी का अहित न करे, यह चिन्तन निरन्तर हमारे मन–मस्तिष्क मे रहना चाहिये। हमारा सोच, हमारी आर्य सस्कृति के अनुरूप हो। वहा इस बात का उल्लेख किया गया है कि "आप दूसरो के साथ वह व्यवहार या आचरण न करे जिसके कारण उसे शारीरिक और मानसिक पीडा पहुंचे। दूसरो के प्रति आचरण करते समय हमे यह नहीं भूलना चाहिये कि जो व्यवहार आप दूसरो के साथ कर रहे हैं वही व्यवहार यदि आपके साथ किया जाता है, तो आपको कितना दुःख और कष्ट होगा। विधि के विधान को

सर्वोपरि मानते हुए अपने–आप को कर्म मार्ग से कभी भी च्युत नही करना चाहिये, क्योकि हमारा कर्म ही हमारा व्यवहार है, आचरण है, चरित्र है, स्वभाव है और सस्कार है जो हमे दया, प्रेम, सहिष्णुता, सहयोग के साथ–साथ बन्धुत्व की भावनाओ की ओर प्रेरित करता रहता है। धार्मिक ग्रन्थो के महान् प्रणेता भगवान वेद व्यासजी ने धर्म को परिभाषित दो ही पंक्तियो मे करते हुए कहा

परोपकाराय पुण्याय पापाय पर पीडनम्:

रामचरितमानस के रचयिता सत तुलसीदासजी ने भी इसी विचार धारा को अभिव्यक्त करते हुए कहा :

परिहित सरिस धरम नहीं गाई।
परपीड़ा सम नहीं अधमाई।।

इन सबके कहने का तात्पर्य यही है कि प्राणीमात्र मे दयाभाव हो। प्राणी–प्राणी मिलजुलकर जीवनयापन करें, एक दूसरे के सुख–दु.ख के भागीदार बने। "जीओ और जीने दो" का सिद्धान्त जीवन का प्रमुख आधार बने।

व्यक्ति समाज की प्रमुख इकाई है। समाज के सुसंगठन से एव सस्कारित विचारो के योगदान से समाज का चहुंमुखी विकास सुनिश्चित है। समाज का आदर्श स्वरूप है सयुक्त परिवार, जिसका आदि स्वरूप बस्ती और ढाणी के रूप मे जाना जाता रहा। वर्तमान में भी आदिवासी इलाको मे संयुक्त परिवार की परम्परा कबीले के रूप मे जानी जाती है। संयुक्त परिवार, जिसमे दादा–दादी, माता–पिता, लड़के–लडकियां तथा परिवार के अन्य विशिष्ट सदस्य। परिवार के मुखिया का दायित्व होता है कि परिवार के समस्त सदस्यो के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, शैक्षणिक और आर्थिक विकास मे सर्वाधिक योगदान करना, परिवार के समस्त सदस्यो का मार्गदर्शन करना तथा समय–समय पर मिल–बैठकर पारिवारिक समस्याओ का स्थायी समाधान करना जिससे परिवार की सुख–शाति, वैभव और धन–सम्पदा का उत्तरोत्तर विकास होता रहे, साथ ही परिवार के सभी सदस्यो मे परस्पर प्रेम, सहयोग और सम्बन्धो की सुदृढता बनी रहे। सयुक्त परिवार की परिकल्पना का मूल उद्देश्य यही रहा कि परिवार के सभी सदस्य सगठित होकर जीवन में घटित घटनाओ का स्थायी समाधान करने मे सक्षम हो, साथ ही पूर्वजों द्वारा प्राप्त सस्कृति और सभ्यता को सुरक्षित रखा जा सके।

साठ के दशक के पश्चात् पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से प्रभावित होकर सुख–सुविधा, वैभव और प्रतिष्ठा के लिये परिवार के सदस्य धीरे–धीरे

सयुक्त परिवार से अलग होते गये। परिवार के सदस्यो में प्रतिस्पर्धा की भावना उत्तरोत्तर बढती गई। धन–सम्पदा, मान–सम्मान के समक्ष सयुक्त परिवार मे बिखराव आना स्वाभाविक हो गया। धीरे–धीरे पारिवारिक सम्बन्धो मे नीरसता आने लगी। परिवार के सदस्य व्यक्तिनिष्ठ होते गये और समष्टिनिष्ठ भाव तिरोहित होना स्वाभाविक रहा। परिवार का अभिप्राय 'हम दो और हमारे दो'। बूढे माता–पिता, दादा–दादी परिवार के बोझ बन गये तथा बुजुर्गों की निरन्तर उपेक्षा की गई, साथ ही अपने छोटे–छोटे बच्चो को भी बुजुर्गों के प्यार से वचित कर दिया गया। पति–पत्नी दोनो ही वेतनभोगी होने के कारण बच्चो की परवरिश आया अथवा नौकर द्वारा की जाने लगी। जिसकी परिणति है समाज मे बढता अनाचार, अत्याचार, कदाचार, आतकवाद और भ्रष्टाचार। पारिवारिक सम्बन्धो की उपेक्षा के कारण शहरी जीवन असुरक्षित है। असामाजिक तत्त्वो के द्वारा आये दिन जघन्य अपराध – लूटपाट, हत्या और आगजनी बडे शहरो मे आये दिन घटित होते रहते हैं। उनसे हमारा अतीत शर्मसार है। लेखिका श्रीमती शीला व्यास ने वर्तमान मे सयुक्त परिवार में हो रही टूटन और बिखराव को बचाये रखने के लिये जीवन्त विषय को 'दश' उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत कर युवा पीढी को पुन भारतीय संस्कृति और सभ्यता की अस्मिता की रक्षा करने के लिये आह्वान किया। साथ ही, सयुक्त परिवार की गरिमा और मर्यादा को बनाये रखने के लिये संगठित होकर जीवनयापन करने का मार्ग प्रशस्त किया है।

अपने उपन्यास 'दश' मे सयुक्त परिवार के घटनाक्रम को, परिवार के मुखिया को महान् इतिहासकार, व्यावहारिक, सुविज्ञ, विचारक, युगद्रष्टा, समाज– सुधारक, तत्कालीन परिस्थिति के समादरक के साथ–साथ परिवार के प्रत्येक सदस्य के शुभ–चिन्तक के रूप मे प्रस्तुत कर यह सन्देश देना चाहा कि परिवार के मुखिया का भी दायित्व होना चाहिये कि वह समयानुसार परिवार की बदलती परिस्थिति और सामाजिक मर्यादा के साथ–साथ परिवार की गरिमा के लिये सिद्धान्तो के साथ समझौता करने मे अपने धैर्य और बडप्पन का परिचय देवे जिससे सयुक्त परिवार का आदर्श बना रहे तथा समाज मे नयी मान्यताओ का समादर हो सके। श्रीमती शीला व्यास द्वारा विरचित अनुभूति के स्वर (काव्य सग्रह), माटी की गन्ध (कहानी सग्रह), इन्द्रधनुष के पार (काव्य सग्रह) श्री चन्दन प्रकाशन, गगाशहर से प्रकाशित हो चुके हैं।

श्रीमती शीला व्यास की साहित्यिक यात्रा का यह चतुर्थ पुष्प सयुक्त परिवार की आदर्श परम्परा को समर्पित है। विज्ञ पाठक ही इसका ज्ञानार्जन कर आने वाली युवा पीढी का मार्ग प्रशस्त कर सके, इसी मे श्रम की सार्थकता निहित

है। पुस्तक के प्रकाशन का दायित्व कलासन प्रकाशन ने स्वीकार कर लेखिका के सृजन की धर्मिता को संबल प्रदान किया। श्री मनमोहन कल्याणी (मोती बाबू) ने आत्मीयता के साथ पुस्तक के प्रकाशन मे जो अपना योगदान किया है, श्रीमती शीला व्यास और उनके पति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं, साथ ही यह विश्वास व्यक्त करते हैं कि निकट भविष्य मे भी आपका सहयोग सदैव मिलता रहेगा।

उपन्यास के प्रमुख पात्र डॉ. त्रिवेदा अपने समय की क्रांतिकारी ऐतिहासिक मान्यताओ के प्रणेता रहे जिन्होने इतिहास जगत् में व्याप्त भ्रान्तियों और गलत तथ्यो के प्रति भारत के महान् इतिहासविदो का आह्वान किया है कि भारतीय इतिहास की प्रामाणिक मान्यताओं को स्वीकार कर नये सिरे से इतिहास की सरचना की जाए। उसके साथ–ही–साथ उनका सामाजिक दायित्व, ग्रामीण समस्याओ के प्रति जीवटता और ग्रामीणो के सर्वांगीण विकास के लिये अभूतपूर्व योग आदि विशिष्ट महान् कार्यों के साथ–साथ उनका यायावरी जीवन में शैक्षिक सुधार, शोध पत्रो का वाचन, संगोष्ठियो का समायोजन, सम्मान, पुस्तक प्रकाशन, विदेशो से आत्मिक सम्पर्क आदि विशिष्ट गुणो के साथ–साथ भारतीय संस्कृति, दर्शन और आध्यात्मिक उत्थान के लिये सस्कृत, हिन्दी, अंग्रजी और भोजपुरी भाषाओ मे लिखे गये सैकडो ग्रन्थो की समीक्षा तथा उनकी उपादेयता आदि विशिष्ट कलेवर को लेकर लेखिका श्रीमती शीला व्यास का निकट भविष्य मे "नेऊर चाचा" के नाम से उपन्यास शीघ्र प्रकाशित होने जा रहा है। इसके साथ–ही–साथ श्रीमती शीला व्यास का शिक्षित महिलाओ की पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक अन्तर्द्वंद्व की विषम परिस्थितियो को उजागर करता हुआ 'काला सागर उजली पांख' प्रकाशनाधीन है। आपके स्नेह, आशीर्वाद और आत्मीय सुझाव लेखिका श्रीमती शीला व्यास के सवल बने जिससे उनकी रचनाधर्मिता का रथ निरन्तर गतिवान रहे।

लेखिका श्रीमती शीला व्यास की रचनाए मानवीय मूल्यो के प्रति पूर्ण समर्पित भाव से ओत–प्रोत हो तथा समाज मे व्याप्त विसंगति के स्थायी समाधान का पाथेय बने, इन्ही मगलकामनाओं के साथ–

– डॉ. सिद्धराज व्यास
भूतपूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष
श्री जैन, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीकानेर

महाशिवरात्रि
फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी, 2062

स्वकथ्य

✿ शीला व्यास ✿

सर्वप्रथम कविता सग्रह "अनुभूति के स्वर", फिर कहानी सग्रह "माटी की गध" एव उसके पश्चात् काव्य सग्रह "इन्द्रधनुप के पार"। कलम जब भी उठी तो मा भारती की ऐसी कृपादृष्टि रही कि उसने थमने का नाम ही नही लिया और अब मा सरस्वती के पावन चरणो मे अपनी भावाभिव्यक्ति का चतुर्थ पुष्प"दश"उपन्यास के रूप मे समर्पित करने जा रही हूं।

सुधि पाठक यह सोचने को विवश हो सकते हैं कि अपनी साहित्यिक यात्रा काव्य संग्रह से आरंभ करने वाली कवयित्रि ने गद्य रचना का विशाल फलक क्यो चुना, इसलिये मैं यह स्पष्ट कर देना चाहती हूं कि जब अनुभूतिया सघन हो जाये, एक के पश्चात् एक चुनौतियां और घटनाएं जीवन को आन्दोलित करने पर उतारू हो जाएं तो भावाभिव्यक्ति के लिये कविता का कैनवास छोटा पडने लगता है।

मेरे जीवन के अन्तराल के दो वर्षो मे ऐसा झझावात आया कि उस आधी मे मेरे अपने आत्मीयजन मुझसे एक–एक करके सदा के लिये दूर हो गये। उन्हे काल के क्रूर क्रोड ने अपने मे समाहित कर लिया। वे उस अनन्त मार्ग पर चले गये जहा से पुन. वापिस लौटना नितान्त असभव है, पर मेरे हृदय मे उनकी स्मृतिया शेष रह गईं जो दिन–रात मेरा पीछा करती रहती थी। यह ठीक है कि नियति की विडम्बना के समक्ष हम सब विवश है, पर मेरे आकुल–व्याकुल मन को इन आघातो से उबरने का कोई रास्ता दृष्टिगत नही हो रहा था। सब ओर था केवल सूनापन और निविड अधकार। ऐसी विषम परिस्थिति मे मेरे जीवन–साथी ने रचनाधर्मिता की ओर प्रेरित करते हुए कहा कि तुम्हे अपनी स्मृतियो, अनुभूतियो एव सवेदनाओ को शब्दो मे रूपायित कर देना चाहिये। जो स्मृतिया एव घटनाये 'दश' की तरह दिन–रात तुम्हारे हृदय को दशित करती रहती हैं उनको शब्दो का आकार दे दो। अमर कर दो उन पात्रो को अपनी लेखनी से जो कभी तुम्हारे परम आत्मीय रहे। उनकी भावनाओ के अनुरूप मैंने अपने आत्मीय जनो के बारे मे लिखना शुरू किया जिसे वे अपने द्वारा सम्पादित एव प्रकाशित समाचार पत्र "दिशाकल्प पाक्षिक" मे प्रकाशित कर मुझे निरतर लिखने के लिये प्रेरित करते रहे।

धीरे–धीरे प्रत्येक अक मे (दिशाकल्प के) किश्तो के रूप मे दश का धारावाहिक प्रकाशन होता रहा जिससे मुझे आत्मिक शाति मिलती रही और उपन्यास मे पात्रो के चरित्र एव घटनाओ का समावेश होता रहा। विज्ञ पाठको के पत्र मुझे निरतर प्राप्त होते रहे जिसमे इस बात का सुझाव एवं अनुरोध रहा कि क्यो न इसे उपन्यास के रूप मे प्रकाशित किया जाये। उनकी भावनाए उपन्यास के साकार रूप लेने का सबल बनी और उन सुधि पाठको के सम्मान की यह परिणति है कि उपन्यास "दश" पाठको के समक्ष प्रस्तुत है।

यशस्वी उपन्यासकार डॉ. शिवप्रसादसिह ('नीला चाद' उपन्यास के प्रणेता) मुझे पहले ही उपन्यास रचना के लिये प्रेरित करते रहे जिसका मैंने उल्लेख इस उपन्यास के मध्य मे किया है। इसी बीच मैंने बंगला उपन्यास लेखिका आशापूर्णादेवी के "चतुष्पर्ण" लघु उपन्यास का अध्ययन किया जिसमे उन्होने एक स्थान पर यह लिखा है कि "मैं अपने पूर्वजों के ऐतिहासिक चरित्र पर उपन्यास लिख रहा हू पर इसकी मर्यादा कौन समझेगा, कौन इसे महत्व देगा, कौन इस वश के कीर्तिकलाप का इतिहास पढकर पुलकित होगा, लेकिन लग रहा है, यह मेरा पवित्र कर्तव्य है, इसी के द्वारा मैं अपने पूर्व पुरुष का तर्पण कर रहा हूं।" उत्तर पुरुष के नायक के मुख से यह वाक्य कहलाया गया है पर इसमे लेखिका की भावनाएं ही निहित हैं।

इसे पढकर मेरे मन में भी यह विचार आया कि मैं परिवार के मुखिया इतिहास पुरुष की सम्पूर्ण जीवन गाथा लिखू। शायद मेरे परिवार के लोग इसे पढकर गर्व का अनुभव करे और इस मान–सम्मान, ज्ञान विद्या से समृद्ध वंश की धारा बनाये रखने का उत्तरदायित्व कोई अपने ऊपर ले सके, पर मैं इस उपन्यास के माध्यम से अपने आत्मीयजनों को शब्दाजलि अर्पित अवश्य ही कर रही हू।

"दंश" उपन्यास वैसे तो एक संयुक्त परिवार की गाथा है जिसका केन्द्र परिवार का मुखिया है पर जो चुनौतिया, सघर्ष, शारीरिक तथा मानसिक दंश इस परिवार के सदस्य झेल रहे हैं, वे पात्र प्रत्येक परिवार मे मिल जायेगे। लेकिन वे चुनौतियो का सामना कितने आत्मबल, जीवटता एवं जीवन्तता से करते हैं तथा विपरीत परिस्थितियो के समक्ष पराजय स्वीकार नही करते हैं, यही प्रेरणा देना मेरे उपन्यास का मूल उद्देश्य रहा है। यह सच है कि परिवार के मुखिया विनू के बाबूजी (इतिहासपुरुष डॉ. त्रिवेदा) के

पच्चासी वर्षों के जीवन का विशाल कालखण्ड इतना व्यापक और नि:सीम है कि वह शब्दातीत है। बाबूजी की सम्पूर्ण जीवनगाथा, कृतित्व एवं व्यक्तित्व को शब्दो की सीमा मे समेटना एक दुष्कर कार्य है, पर आपकी आत्मजा ने ऐसा करने का दुःसाहस किया है। ईश्वर मुझे शक्ति प्रदान करे।

इस उपन्यास का प्रकाशन तीन–चार वर्ष पूर्व ही हो जाता पर देवयोग से मेरे जीवन मे विवशता की ऐसी घडिया आई कि मैं बिस्तर पर पडने के लिये विवश थी। मेरे साथी डॉ सिद्धराज ने अपने अथक प्रयास से पुन मुझे स्वावलम्बी बनाने मे अपनी भूमिका निभाई और जीवन की समतल पगडण्डी पर मेरे कदम फिर चल पडे और इस अपूर्ण कार्य को पूर्ण करने का सकल्प मेरे मन मे जाग्रत हुआ जिसकी परिणति "दंश" उपन्यास के रूप मे पाठको के समक्ष है।

इस उपन्यास के प्रारभ मे जिन्होंने अपने आशीर्वचन एवं शुभकामना सदेश दिये हैं उनका उल्लेख करना मेरा नैतिक दायित्व है। स्वामी सवित् सोमगिरिजी महाराज, शिवबाडी, बीकानेर, जनकवि श्री हरीश भादानी, उपन्यासकार अन्नारामजी सुदामा (बीकानेर), कोटा से कथा लेखिका डॉ. सरला अग्रवाल, वाराणसी से नरेन्द्र नीरव (गांडीव दैनिक), कोलकाता पं. बगाल से त्रिवेणी साहित्यिकी के सम्पादक कुंवर वीरसिंह मार्तण्ड ने मेरे इस उपन्यास को जो शाब्दिक सबल दिया है, उन सबके प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं। इस पुस्तक के प्रकाशित होने मे मेरे जीवनसाथी डॉ. सिद्धराज ने जो अथक प्रयास किया है, उसे शब्दो मे व्यक्त करना कोरी औपचारिकता होगी।

मैं राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करती हू जिन्होने "दश" उपन्यास की पाण्डुलिपि को (पाण्डुलिपि प्रकाशन सहयोग के रूप मे) आठ हजार रुपये का आर्थिक सहयोग देकर प्रकाशित करने मे अभूतपूर्व योगदान दिया है। अकादमी की पाण्डुलिपि प्रकाशन सहयोग योजना से नवोदित साहित्यकारो को निश्चय ही नव-सृजन की प्रेरणा मिलती रहेगी। साथ ही पाण्डुलिपि पर किया गया मूल्याकन लेखक को पुस्तकीय आकार देने मे सम्बल प्रदान करता रहेगा।

मैं स्व माणकचन्द प्रदीपकुमार रामपुरिया चैरिटेबल ट्रस्ट के प्रति अपना आभार प्रकट करना चाहती जिन्होने मुझे उपन्यास 'दश' के लिये शब्दर्षि सम्मान से सम्मानित किया है।

— शीला व्यास

सत्-साहेब

दंश

एक

खट–खट–खट–खट, काष्ठ चरणपादुका की ध्वनि के साथ-साथ, सवेरे चार बजे से ही गंगा-किनारे स्थित उस घर मे खडाऊं की ध्वनि गूंजने लगती थी। वह आवाज जैसे घर के बच्चो के लिये अलार्म का सकेत थी, जिसको सुनते ही वे अपनी-अपनी रजाइयों मे दुबक कर बैठ जाया करते थे या अगर गरमी होती तो छत पर अधलेटे-से हो जाते थे। बाबूजी की खडाऊं की आवाज सुनते ही बडे भइया बोलना शुरू करते और उनसे छोटे भाई-बहन उनका अनुसरण करते।

एको ब्रह्म द्वितीयोनास्ति

बोलते-बोलते वाणी अस्पष्ट हो उठती। वे फिर नींद के झूले में झूलने लगते। उनकी चुप्पी देखकर बाबूजी की गभीर गिरा गूंज उठती। आप लोग सो गये क्या ? बोलिये, आगे बोलिये।

परिवार का सदस्य, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, सबके लिये वे 'आप' सम्बोधन ही किया करते थे। शायद वे ऐसा सम्बोधन देकर सबको शिष्टाचार का पाठ पढाना चाहते थे। उनकी रौबीली आवाज सुनकर बच्चे फिर कंठस्थ करने लगते–

चारों वेद, पांचों पाण्डव, एको चन्द्र, एको सूर्य।

आज जिस तरह घर-घर मे दूरदर्शन के अश्लील कार्यक्रम का दुष्प्रभाव हमारी संस्कृति पर कुठाराघात कर रहा है, पाश्चात्य संगीत की धुन

पर थिरकना बच्चो को अच्छा लगता है, उस समय वेद की ऋचाएं गूंजती थी, गीता के श्लोक कठस्थ कराये जाते थे, पिता वेद-पाठी ब्राह्मण जो ठहरे। जैसे ही बच्चे बोलते-बोलते विश्राम लेते, बाबू जी गाने लगते।

देखो जी एक बाला जोगी द्वार तुम्हारे आयो जी,

जैसे-जैसे सूर्योदय की लालिमा फैलती जाती, उस घर के कार्य-कलाप अविराम गति से सम्पादित होते रहते।

बिना गंगा मे नहाये और अपना पाठ याद किये उन बच्चो को नाश्ता मिलना दुर्लभ था। कभी-कभी ज्यादा सर्दी पडने पर वे केवल हाथ-मुह धोकर गगाजी से वापिस चले आते और जब बाबूजी पूछते कि आप लोग गंगाजी नहा आये क्या ? तो वे सभी बच्चे मुँह नीचे कर बडी फुर्ती से जवाब देते।

"हां बाबूजी, हम तो जल्दी-जल्दी नहा आये। भिनसारे पानी गरम रहता है न, बाद में ठडा हो जाता है, इसलिये हमने फट से डुबकी लगा ली।

उस समय अगर बाबूजी उनके बालो को छूकर देखते तो वे शायद सूखे ही मिलते। उनकी अनुभवी ऑखों से कुछ भी छिपा नही था। छह बजते-बजते सबके पेट मे चूहे कूदने लगते। उनकी निगाहें चूल्हे की ओर ही लगी रहती। जहा नीचे सिर झुकाये मॉ कडाही मे चने की घुघनी बनाती रहती। कागज के दोने बना–बना कर एक-एक करछुल चने सभी बच्चो को दिये जाते और बच्चे बडे तृप्तभाव से उसे खाते। कभी-कभी जब गांव से चिउडा आ जाता तो उनकी जल खाई का रूप बदल जाता। तब उसी कडाही मे चूडा मटर बन जाता और वह भी एक-एक करछुल सबको परोस दिया जाता। उनके लिये वह नाश्ता मोहनभोग या बूदी के लड्डू से कम नहीं था। आखिर उन सब बच्चों को, जो पढने वाले थे, पौष्टिक आहार भी तो चाहिए था और इससे बढकर उनके लिये पौष्टिक आहार भला क्या हो सकता था।

सच पूछिये तो वह घर, घर नही था, खुशियो का आगार था। उन सबके चेहरो पर हर समय सुख की उजली धूप खिली रहती थी। उदासी तो जैसे उनके पास जाने से कतराती थी। वे सब एक-दूसरे मे इस तरह समाहित थे, जेसे दूध मे पानी। एक चुटकुला सुनाता, सब हॅसने लगते। एक गाने की एक लाइन शुरू करता तो बाकी सारे उससे सुर मिलाकर वही गाना गाने लगते। एक अन्त्याक्षरी शुरू करता तो सब अन्त्याक्षरी करने बैठ जाते। एक अगर मुंह बनाकर वैठ जाता और बिसूरने लगता तो सारे के सारे रुआसे–से हो जाते।

उस घर मे मुख्य द्वार से लेकर बरामदे तक चप्पलो, छोटे जूतो का ढेर लगा रहता था। बडी चप्पले, छोटी और उससे भी छोटी। जब माँ झाडू लगाती, उन्हे करीने से सजाती, सबकी जोडिया मिला-मिला कर रखती, पर जब भी वे बाहर जाते, भगदड-सी मच जाती। किसी के जूतो की जोड़ी का एक जूता पलग के पास और एक बरामदे मे मिलता। किसी की चप्पल किसी के पैर मे पहनी जाती। बडी मुश्किल से जोडी मिलान करके वे पहनते और बाहर जाते। और जब वापिस आते तो फिर सब तितर-बितर हो जाता। माँ झाडू लगाती, उन्हे फिर करीने से सजाती और जोडिया मिला-मिला कर रखती।

जैसे ही दशहरा का त्यौहार आता, उन बच्चो का मन रामलीला मैदान में भटकने लगता, उस समय गुलाबी सर्दी पडनी शुरू हो जाती। वे सब जने लदफद कर रामलीला मैदान मे जल्दी जाकर आगे की लाइन मे जा बैठते। यह प्राचीन परम्परा रही है कि रामलीला मे पुरुष ही स्त्री का पार्ट निभाते हैं, इसलिये जो लडका सीता माता का रूप धारण करता था, उसे वे बार-बार पर्दा हटा कर देखते, उन्हे यह देखकर आश्चर्य होता कि यह लडका होकर भी सीता माता का रूप कैसे इतना सुन्दर धारण कर लेता है। उसका सीता मइया बनना, बच्चो के लिये उत्सुकता एव कौतूहल का विषय था। उनका मन होता, उसे पास से जाकर हाथ लगाकर देखें, उसके सारे अंग-प्रत्यगो को स्पर्श करके देखे, पर लोग कहते-यह सीता माता है इनके केवल चरण स्पर्श कर सकते है और इससे आगे कुछ नही।

वे रात को रामलीला मे जो भी देखते, दिन मे उसको खेल बना कर खेलते। बाजार से धनुष-बाण लेकर आते, तरह-तरह के चेहरे लेकर आते और स्कूल से लौटने के बाद रामलीला करते।

गंगा मइया की उस घर पर विशेष कृपा-दृष्टि थी। वह घर गगा किनारे जो बना हुआ था। वर्ष मे एक बार गगा मे आने वाली बाढ उनके घर को द्वीप की सज्ञा दे जाती। बाढ का आना जहा घर के बडे लोगों के लिए परेशानी का विषय था, वहीं उन बच्चो के लिए आनद और उत्साह का विषय था। वे बारी-बारी से दौड-दौड कर घाट पर जाते और हाथ से संकेत करके बताते कि गंगा का जल उनके घर से कितनी दूरी पर है। वे इसका अदाजा भी लगाते कि गंगाजी को उनके घर तक आने में अभी कितना समय और लगेगा। उन सबमे बिनु , बिजु , सुमि की कुछ ज्यादा ही पटती थी। जैसे

ही द्वार के चारों ओर बाढ का पानी भर जाता तो छुट्टियां हो जाती। वे दिन–भर ऊपर से कूदकर पानी मे डुबकी लगाते, बहते हुये आम-अमरूदो को पानी से निकाल कर बॉट-बॉट कर खाते, कागज की ढेर–सारी नावे बनाकर उनके ऊपर अपना नाम लिखकर पानी मे तिराते, सीढियों पर बैठकर छोटे-छोटे कपडो को धोते। नाव चलाते मल्लाहो को हाथ हिला-हिला कर अपने पास बुलाते। बडे भैया विनु ने तो लकडी के एक खाली बक्से को नाव का आकार दे दिया था। उसी को चलाकर वे बाजार जाते और घर का सारा सामान लेकर आते।

एक दिन जब वे अपने घर के बरामदे मे बैठे थे और उनके घर की सीढिया बाढ के पानी में डूबी हुई थी, उसी पानी में छप-छप करता हुआ लहरो मे डूबता-उतराता छोटा–सा पिल्ला बरामदे की सीढियो मे आ लगा था। सावन के महीने मे भी वह बुरी तरह काप रहा था। उसके शरीर पर जगह-जगह घाव हो गये थे। जिनमे से खून बह रहा था। शायद उसे किसी जलीय जीव ने काट लिया था। जब विनू ने उसे अपने हाथो मे लिया तब वह अपने जीवन के लिए याचना कर रहा था "कि मुझे बचा लो, मै जिन्दगी –भर तुम्हारा उपकार नही भूलूगा।"

विजू ने उसे गोद में उठाकर पुराने गमछे से उसके शरीर के एक एक अंग को पोछा था। उसके घावो को डिटौल से धोया था और फिर उसके मलहम लगाया था। सुमि एक कटोरे मे गरम दूध लाई थी पर उसमे इतनी शक्ति नही थी कि वह अपना मुह लगाकर दूध पी सके। इसलिए विजू ने रूई से उसके मुह मे दूध की बूद-बूद डालनी शुरू कर दी थी। वह छोटे बच्चे की तरह आख फाडे चप-चप दूध पी रहा था। और सबको अजनबी की तरह देख रहा था वे तीनो भाई बहिन उसकी सेवा मे ऐसे जी–जान से जुट गये थे कि उन्हे अपने खाने-पीने का भी होश नही रहा था। जब माँ ने आवाज लगाई कि – तुम लोग खाना खा लो, रात हो रही है तब से उसके लिए अपनी सुध बुध खोकर जुटे हुए हो।

जब उसे होश आया था, उस दिन उन्हे लगा था, आज उनके हाथो मे एक बहुत बडा काम हुआ है, आज उनके हाथो किसी के प्राणो की रक्षा हुई है।

कुछ दिनो तक सार–सभाल करने से वह बिल्कुल ठीक हो गया, वह उनके घर के परिवार का सदस्य–सा बन गया। उन तीनो भाई–बहन के

खेल मे वह चौथा अब शामिल हो गया। वे गेद फेकते, वह उसे उठाकर लाता, वे दौडते वह भी उनके साथ दौडता। वह गगा नहाने जाते, वह भी उनके साथ जाता। पर उसे पानी से बहुत डर लगता था, बिजू , विनू स्कूल जाते तो वह भी उनके साथ जाता, छुट्टी होने पर उनके साथ वापस घर लौटता। उन्होने उसका नाम प्यार से सोनू रख दिया था। उसकी स्नेह की डोर परिवार के प्रत्येक सदस्य के साथ इतनी गहरी जुड चुकी थी कि वह उनकी सुविधा-असुविधा का खयाल भी रखने लगा था। एक दिन तो उसने बुद्धिमानी का ऐसा कार्य किया कि सभी चमत्कृत रह गये थे।

सुमि को स्कूल से घर आने मे देर हो गई थी। रात घिरने लगी थी। एन.सी.सी. की परेड होने के कारण उसकी छुट्टी देर से हुई थी। घर मे सभी लोग आवश्यक कार्य से बाहर गये हुए थे। केवल बूढी नानी और सोनू था घर में। उसने आव देखा न ताव, एक मील का सफर मिनटो में तय कर दौडता हुआ सोनू स्कूल पहुंच गया। सुमि गेट पर दुविधा मे खडी थी कि वह घर कैसे जाए, रात हो चुकी है, सुनसान रास्ता है, जगल पार करके जाना पडता है। उसी समय उसने देखा कि सोनू सामने खडा है। वह उसकी टागो पर अपना सिर रगडने लगा। बार–बार मुह से युनिफार्म खीचने लगा जैसे उसकी आंखे कह रही हो कि–

"सुमि बहन, चलो आज मेरे साथ घर चलो, तुम्हारी रक्षा मैं करूगा।"

पहले तो सुमि दुविधा मे पड गई, पर उसने सोच लिया कि घर से कोई आज आ सकेगा नही, इसलिए इसके साथ जाना ही सही रहेगा, वह उसके साथ चल पडी, वह उसके आगे दौड रहा था। जब वह पीछे रह जाती तो दौडकर फिर उसके पास आ जाता। कोई उसके पास से गुजरता तो उसके लिए साक्षात् काल बन जाता। इस तरह वह सुमि को स्कूल से सुरक्षित घर ले आया था। दूसरे दिन घर मे, पास–पडौस मे सोनू अपने इस कार्य के लिए चर्चा का विषय बना रहा। सबसे अधिक खुशी की बात तो यह थी कि सुमि के स्कूल से घर का रास्ता निरापद नही था। अनेक चोर डाकू, गुंडे, जगली जीव उस रास्ते मे पडते थे क्योकि वह सुनसान जगल था, जो उसके रास्ते मे पडता था। लेकिन आगे उसने जिस कार्य मे संवेदना का परिचय दिया, उससे सबके मन मे उसके प्रति स्नेह बढता ही गया।

वह दिन था संक्रान्ति का, जब सुमि की बडी बहन की असामयिक मृत्यु हो गई थी। घर मे सारे लोग दुखी थे। सबकी आखों से आसू बह रहे

थे। घर के लोग जब कीनू को लेकर श्मशान घाट गये तो सोनू भी उनके साथ था और वहा से लौटने के बाद दो दिन तक तो सोनू ने रोटी की ओर मुह उठाकर देखा भी नही। थाली सामने पडी रहती और सोनू मुह फेर कर बैठा रहता। घर मे चारो ओर बेचैनी से घूमता, आसमान की ओर सिर करके जोर से चिल्लाने लगता। हम उसके सिर पर हाथ फेरते तो वह गर्दन नीची करके रोने लगता, शायद ऐसी सवेदना और सहानुभूति मानव समाज मे भी नही मिले। उसकी इस सवेदना ने हम सबको झकझोर कर रख दिया था।

कितनी बार वह चोरो के द्वारा पीटा गया था, उसके मुह मे कपडा ठूंस दिया गया था, उसको रोटी पर नशीली दवा रखकर खिलाकर उसे बेहोश कर दिया गया था, उसे विष तक देने का प्रयास किया गया था। पर उसने शकर की तरह सब–कुछ विषपान कर भी उस घर को आपदाओ से बचाये रखा था।

लेकिन इसे विधि की विडम्बना कही जाये या दुर्योग कि जो सोनू सबका लाडला था, उसी को अपने हाथो से मौत की सजा सुनानी पडी थी। सोनू को छूत की बीमारी हो गई थी। उसके शरीर मे जगह-जगह घाव हो गये थे। जहा पर कीडों ने अपना घर बना लिया था। विनू उसके घावो को डिटोल से धोता, दवा लगाता पर मर्ज बढता ही जा रहा था। अनेको नामी डाक्टरो से, पशु विशेषज्ञो से उसका इलाज करवाया था पर उसका रोग लाइलाज हो गया था। उसका दर्द से कांपना और लम्बी आवाज मे चिल्लाना, अपने स्थान से न उठ पाना इस बात का परिचायक था कि वह बहुत गहरी पीडा के दौर से गुजर रहा है। डाक्टरो ने अन्त मे यही कहा था- "यह पुडिया इसे दे दो, इसका प्राणान्त हो जायेगा। यह शान्तिपूर्वक मौत को प्राप्त हो जायेगा। इसका अन्त अगर अपने हाथो से तुम लोग नही करोगे तो यह न तो जी सकता है और न ही मर सकता है।"

घर मे दिन–भर सोनू की लम्बी पीडापूर्ण कराहे सुनाई पडती। उसकी आंखो मे आंसू बहते रहते। अन्त में विजू-विनू भइया को अपने कलेजे पर पत्थर रखकर डाक्टर की बात माननी ही पडी। पुडिया देने के बाद सोनू एक बार छटपटाया और लम्बी सांस लेकर चिर निद्रा मे सो गया। मृत्यु के पूर्व भी उसकी आखो मे वही याचना के भाव थे, जब उन्होने उसको बाढ में डूबने से बचाया था।

उन सबकी आखो मे आंसू थे। काश सोनू को वे बचा पाते, वह

परिवार मे एक शिशु की तरह आया था। हर खेल मे शामिल हुआ था। आज सबको रुलाकर चल दिया। सोनू तुम्हारी आत्मीयता, तुम्हारी कर्तव्यपरायणता सबके हृदयों मे जीवित रहेगी, तुमने पशु योनि में जन्म लेकर भी जो उदाहरण प्रस्तुत किया वह अन्यत्र कही नही मिलेगा। मानव जाति को कर्तव्य और संवेदना का पाठ तुमसे सीखना चाहिए।

पशु मे स्वामीभक्ति, सवेदना और कर्तव्यपरायणता आदि विशिष्ट गुण ईश्वर प्रदत्त हैं। पशु अपने स्वामी के प्रति पूर्ण समर्पित भाव से जीवन–पर्यन्त कर्तव्यपरायणता का परिचय देता हुआ अपने प्राण न्योछावर करने मे सदैव तत्पर रहता है।

पशुओं के प्रति अत्याचार को समाप्त करने के लिये, जीव-जन्तुओ की रक्षा के लिए मानव को व्यक्तिगत स्वार्थ का परित्याग कर पर्यावरण की महत्ता को स्वीकार करना चाहिये तथा जीओ और जीने दो के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए पशुओ के प्रति दया प्रेम, सहयोग आदि भावो को महत्त्व देना चाहिये।

लेकिन एक बार बाढ ने इतना भयंकर रूप धारण कर लिया था कि उस समय घर की पहली मजिल भी डूब गई थी। सभी लोग घबरा उठे थे।

निचली मजिल का सामान ऊपर की मजिल पर ढोया जा चुका था। मॉ कहने लगी–

'घर छोडना पडेगा, खतरा है पुराना घर है। कहीं बैठ न जाये।' पर नानी ना-नुकुर करती अपने पोपले मुह को बार-बार अस्वीकृति में हिलाती- 'ना, रे ना घर छोडकर जायेगे, पीछे से चोरी-चकारी हो जायेगी तो मै तो घर ना छोडने की। नानी के लिए वह घर, घर नहीं था स्मृति स्थल था, जहा कण-कण मे उनके परिवार की स्मृतियां बसी हुई थी। पर नानी की कौन सुनता। भैया उन्हें गोद मे उठाकर नाव में चढा देते। घर का सारा सामान नाव मे रख दिया जाता, नाव धीरे-धीरे सुरक्षित स्थान की ओर बढती जाती। उन बच्चो का पानी से खेलने का सारा मजा किरकिरा हो जाता।

उस घर के पास आम-अमरूद के बगीचे भी उन बच्चो के लिए जैसे क्रीडांगण थे। दो जने छत पर चढ जाते और पत्थर फेक कर कच्ची अमियां तथा अमरूद तोडते। नीचे रहने वाले दो जने उन्हे बटोरते और वे फिर उसे मिल–बांट कर खाते।

बाबूजी अक्सर दौरे पर रहते, सरकारी अफसर जो ठहरे। बच्चों को उगली पकडकर स्कूल ले जाना, उनका एडमिशन कराना, उनके लिये ट्यूटर की व्यवस्था करना, सब काम माँ ही करती। बाबूजी जब आते तब रुपयो की व्यवस्था करते, उसमे कमी-वेसी होने पर माँ ही सारा इन्तजाम करती थी।

उन लोगो को पढाने जो मास्टरजी आते वे काफी वृद्ध थे। पर सवेरे सात बजते ही वे साइकिल की घंटी बजाते घर पहुंच जाते। उनकी आदत थी कि वे काम न करने पर बाल पकड कर मारते थे। इसलिए छोटे भैया विजु रात को सोने से पहले खूब–सारा तेल बालों में चुपेड लेते, माँ मना करती कि तकिया गदा हो जायेगा।

पर भइया भला क्यो सुनते, उन्हे तो मास्टर की मार से बचना था, जैसे ही मास्टरजी उनके बाल खींचते उनका सारा हाथ तेल से चिपचिपा हो जाता, बाल हाथ से छूट जाते। भइया मार से बच जाते और मास्टरजी कहते– 'तेली कहीं का ! सारे बालो में तेल चुपड रखा है, लगता है सारे डिब्बे का तेल तू ही खत्म कर जाता है।'

बाकी नीचे मुंह किये अपना सवाल करते रहते और इस तरह आम-अमरूद बटोरते, पानी से खेलते, बस्ते लटका कर स्कूल जाते। रोज सवेरे उठकर वैदिक मत्र याद करते। उन सबके बीच से बचपन कब कुलांचे मार कर निकल गया और यौवन ने दस्तक देनी शुरू कर दीं, इसका आभास उन्हे तब हुआ जब उनके साथ खेलने वाली नन्ही-मुन्नी सुमि ने फ्राक छोड कर साडी पहनना शुरू कर दिया और उसके ब्याह की सुगबुगाहट घर में होने लगी।

दो

सुमि उन सबकी छोटी बहन, पर परिवार की सबसे बडी बेटी जिसका जन्म ऐसे समय हुआ, जब प्रत्येक व्यक्ति के मन मे क्रान्ति का ज्वार उबल रहा थ। वह वर्ष था 1942 का।

सन् 1942 की अगस्त क्रान्ति। जब प्रत्येक भारतीय के हृदय मे देशप्रेम का ज्वालामुखी उबल रहा था। महात्मा गाँधी का उद्घोष 'अग्रेजो

भारत छोडो', तथा 'करो या मरो' का प्रेरक आह्वान जन-जन को उद्वेलित कर रहा था। नवयुवको ने महाविद्यालयो का, छात्रों ने विद्यालयो का, वकीलो ने अदालतो का एव सरकारी कर्मचारियो ने सरकारी नौकरियो का बहिष्कार करने के लिए कमर कस ली थी। अंग्रेजो की दमनकारी नीति के विरोध मे डाकघरो को आग लगाई गई, रेल की पटरिया उखाडी गई, यातायात को अवरुद्ध किया गया। अपने आक्रोश को व्यक्त करने का यही साधन था भारतीयो के पास, इसके अतिरिक्त पराधीन भारतीय जनमत को और कोई दिशा दिखाई नही पड रही थी।

ऐसे ही क्रान्तिपूर्ण वातावरण में बाबूजी के गृह में मूल नक्षत्र मे जिस कन्या का जन्म हुआ, वह उनकी सबसे बडी बेटी सुमि थी, जिसका मुंह बाबूजी चालीस दिन बाद ही देख पाये थे, वह भी कांसे के कटोरे में तेल भर के उसकी परछाईं--भर देख सके थे। क्योकि पडितजी का कहना था, 'बिटिया का जन्म मूल–नक्षत्र मे हुआ है, इसलिए वह माँ-बाप पर भारी है।'

बिनू के बाबूजी परम्परावादी नही थे, रूढिवादी तो बिल्कुल ही नही थे। सामाजिक वर्जनाएं उन्हे कभी प्रतिबधित नहीं कर सकी थी लेकिन वे सरकारी अफसर थे, उनके भी कुछ उत्तरदायित्व थे, जिनका निर्वहन आवश्यक था। ऐसे विद्रोहपूर्ण वातावरण मे आवागमन के साधनो के अभाव मे वे इतने विवश हो गये थे कि सुमि का मुह चालीस दिनो तक देख नही पाये थे।

दो बेटों के बाद होने वाली सुमि माँ-बाबूजी दोनो की लाडली थी। सुमि की मॉ की तीव्र आकांक्षा थी कि दो बेटो के बाद उसके घर मे प्यारी–सी गुडिया का जन्म हो और यह इच्छा सुमि के जन्म से पूर्ण हो गई थी। माँ उसकी बाल-क्रीडाएं देख-देख कर हर्षित होती। बाबूजी जब बाहर जाते, गोदी मे उठाकर उसे बाहर ले जाते।

थोडी-सी बडी होते ही सुमि घर भी संभालने लगी। मॉ बाहर जाती तो सुमि ही घर को देखती। दो-दो वर्ष के अन्तराल मे जन्मे उसके दोनो भाई उसे डाट-डपटकर घर मे रखी चीजे खा जाते, सारे घर मे उपद्रव मचाते रहते, कोई भी चीज अपने ठिकाने पर न मिलती, जब माँ बाहर से आती और सुमि से घर मे रखी वस्तुओ के बारे मे पूछती तो सुमि मौन-मूक खडी रहती, क्योकि दोनो भाइयो पर आरोप लगाने मे वह असमर्थ थी। वे दरवाजे के पीछे खडे उसे बार-बार थप्पड और मुक्का तानकर धमकाया करते। उस समय मॉ के

क्रोध का सारा भार सुमि को ही झेलना पडता। वह खडी-खडी पिटती रहती तब बाबूजी ही आकर बीच-बचाव करते, इसे मत मारो, यह तो हमारे घर की लक्ष्मी है।

जब दोनो भाई मिलकर उसे पीटते तो भी बाबूजी यही कहते, अरे यह तो कन्या है, दुर्गा का अवतार है, इसे मत मारो। और इस तरह वे अपने स्नेह की शीतल छाया मे उसे गुस्से और विपदाओ से बचाकर रखते। माँ उसे गुस्से मे मारती, पर बाद मे उसे कलेजे से लगाकर उसके मुंह और गालो पर चुम्बनो की बौछार कर दिया करती। भाइयो से वह अकडी-अकडी रहती पर जब दोनों भाई उसके आगे-पीछे घूमते और कहते, हमारी मुन्नी तो बडी अच्छी है, सब चीज बाट-बाट कर खाती है, तो उसका सारा गुस्सा काफूर हो जाता और वह दौड-दौड कर उनकी मनुहारे करने लगती।

उन भाई / बहनो मे विनू तो कुछ बडे अवश्य थे पर सुमि उनसे चार वर्ष छोटी थी। होगी कोई सुमि की उम्र 8 वर्ष की। पर जब भी बाबूजी के सग छुट्टियो मे जाने की बाते छिडती, सबसे पहले सुमि अपनी तैयारी शुरू कर देती। बाबूजी सरकारी अफसर थे और बच्चे वाराणसी मे स्कूलों मे पढ रहे थे इसलिये ग्रीष्मावकाश मे ही उनके साथ छुट्टियां बिताना संभव था।

एक बार जब बाबूजी की पोस्टिग शिमला मे हुई तो छुट्टियो मे वहा जाने की बात सुनकर वे तीनो खुशी के आवेग मे उछल पडे थे। आजकल तो दूरदर्शन ने हर अदृश्य को दृश्यमान कर दिया है, पर उस समय तो उन्होने केवल पुस्तको मे ही उस बर्फीले प्रदेश के विषय मे सुन रखा था। इसलिये जब वे पहली बार वहां गये तो उन्होने खच्चर और घोडे पर सवार होकर यात्रा की। जब उन्होने पहली बार वहा पर बर्फ गिरते देखी तो वे अपने आप को घर के अन्दर नही रख सके। माँ के बार–बार मना करने पर भी वे फर का कोट और बन्दर छाप टोपी पहन कर घरो से निकल पडे। और बर्फ के गोले उठा उठाकर एक–दूसरे को मारने लगे। बर्फ के छोटे टुकडो को उठाकर मुँह मे रखने लगे जब वहां के लोगो ने समझाया कि इस तरह करने से तुम बीमार पड जावोगे तब उन्हे कुछ समझ आई थी।

उस समय सुमि हर समय अपने पास एक शीशा और कंघी अवश्य रखती थी। घर के सामने बैठ जाती और जो जाता, उससे पूछती–

"देथो, मैं छुन्दर लगती हूँ।"

आने–जाने वाले लोग, जो उस रास्ते से गुजरते, वे बाबूजी के घनिष्ठ मित्र एव मातहत थे। वे उसे गोद मे उठा कर पुचकारते और कहते– अरे वाह, मेरी बिटिया तुम तो बडी सुन्दर लगती हो। हमारे पास भी तुम्हारे जैसी प्यारी सुन्दर–सी गुडिया है। कभी हमारे घर आवो तो तुमको दिखायेगे, फिर तुम और वो ढेर–सारी बाते करना।

सुमि वास्तव मे लगती भी थी गुडिया जैसी। झक दूध–सा गोरा,रग, भूरे सुनहले–से बाल। दोनो बडे भाई अक्सर उसकी हँसी उडाते और चिढाते।

"तुम हमारी बहन थोडे ही है। तुम तो किसी अंग्रेज की बेटी हो। वे जब अपने देश गये तो तुम्हे छोड गये थे। तुम माँ को अग्रेजी दवा की दुकान पर मिली थी।"

तब वह रोने लगती। माँ से शिकायते करती। माँ उन्हे जोरदार झाड लगाती तो वे मुँह छिपाकर हँसने लगते थे। पर उनके छेडने के सिलसिले मे कही कोई कमी नहीं आती थी। कभी वे कहते–

"तुम तो बन्दरिया की बच्ची हो हमारी बहन थोडे ही हो। तभी तो एक दिन बन्दरिया तुम्हें उठाकर ले गई थी, पर माँ को तुम अच्छी लगी थी और हमारी कोई बहन थी नही, इसलिये माँ ने तुम्हे उससे माँग लिया था।

वास्तव मे इसके पीछे एक रोमाचक घटना थी जो माँ उन भाई बहनों को बचपन मे सुनाया करती थी। जब भी माँ इस घटना का जिक्र करती, सुमि को गोद मे चिपका लिया करती थी।

एक बार जब बाबूजी की पोस्टिग जबलपुर मे हुई थी उस समय सुमि गोद में थी। वहा पर घर मे जो खिडकियां थीं उनके पट अक्सर मैं खोल दिया करती थी और वही खाट पर सुमि को सुलाकर घर के कार्यो मे लग जाया करती थी। वह मेरे काम में व्यवधान उपस्थित न करे इसलिये थोडा–बहुत अफीम की मात्रा उसे दूध मे मिलाकर पिला दिया करती थी जिससे वह गहरी नींद मे सो जाया करती थी। मेरे पास दोपहर मे एक बन्दरिया निश्चित समय पर आया करती थी जब मैं गृहकार्यों से निवृत्त होकर चोटी करने और सिदूर, लगाने का उपक्रम करती उस समय वह बन्दरिया बिना कोई नागा किये मेरे पास आकर बैठ जाया करती और अपने हाथो को हिलाहिलाकर मुझ से सिन्दूर, बिन्दी लगाने का आग्रह किया करती थी। तब मैं उसे भी बिन्दी लगाकर सिदूंर भर दिया करती थी। वह वहां लगे शीशे मे अपना चेहरा देखकर बहुत खुश होती थी और उसके चेहरे पर खुशी की

भावना व्यक्त होती थी। जब मै गोद मे सुमि को उठाकर उसे दूध पिलाती थी तो वह बडे आश्चर्य मे भर कर टुकुर–टुकुर मेरा मुँह देखा करती थी।

और फिर एक दिन मै रसोईघर मे थी और सुमि खिडकी के पास पडी चारपाई पर सोई हुई थी। जब मैं सब कामों से निवृत्त होकर कमरे मे आई तो मेरे विस्मय का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि वह बन्दरिया गोद मे सुमि को लेकर खिडकी पर बैठी है और मेरी ही तरह सुमि को छाती से लगाकर दूध पिलाने का उपक्रम कर रही है। विशेष रूप से बच्चे माँ की गोद पहचानते हैं पर सुमि को अफीम की मात्रा दी गई थी इसलिये वह अर्द्धचेतन अवस्था मे थी, नही तो वह कुनमुनाती अवश्य। उसका ममत्व भाव देखकर मेरा हृदय भर आया, पर साथ ही मैं भयभीत भी हो उठी इस आशका से कि अगर बन्दरिया सुमि को खिडकी से बाहर जगलो मे फेक देगी तो क्या होगा ? क्योकि अकसर ऐसा देखा जाता है कि पशु–पक्षी अपना काम करने के बाद चीजे उठा कर फेक देते हैं, इसलिये मैने अपनी सहज बुद्धि से काम लेकर उसे अनेक प्रलोभन दिये। चना, अमरूद, केले आदि खाने की अनेक वस्तुए दी, पर वह तो सुमि को अपने बच्चे की तरह छाती से चिपकाये बैठी रही। तब मैंने बिन्दी का पत्ता, सिदूर की डिबिया और काँच सामने लाकर रखा तो वह झट से सुमि को विस्तर पर पटक कर मेरे सामने बैठ गई और अपने हाथो को हिला कर बिन्दी–सिदूर लगाने का आग्रह मुझसे करने लगी। तब मेरे दिल की धडकन शान्त हुई। मैने रोती हुई सुमि को गोद मे उठा लिया और उसे दूध पिलाने लगी। बन्दरिया भी एकटक मेरी इस क्रिया को देखे जा रही थी। सुमि को दूध पिलाकर मैने बन्दरिया का श्रृंगार किया और वह सतुष्ट भाव से चली गई। कभी–कभी मुझे ऐसा प्रतीत होता कि वह बन्दरिया इस जन्म मे भले ही पशु रूप मे हो, पर पिछले जन्म मे अवश्य कोई सुहागिन नवयौवना थी जो श्रृगार करने की अधूरी आस लिये इस दुनिया से चली गई हो और इस जन्म मे पूरी कर रही हो।

विजू, विनू माँ के मुँह से इस घटना को कई बार सुन चुके थे और कुछ समझ आने पर सुमि ने इस घटना को आत्मसात कर लिया था इसलिये उनके चिढाने पर भी अब वह चिढती नही थी।

वैसे अगर देखा जाये तो बडे भइया विनू कम उदार और दयालु नहीं थे। आज अगर वे परिवार मे सबसे बडे हैं और सबका ध्यान रखते हैं तो यह सरकार वचपन से ही उनमे पड चुका था। जब भीख मागने के लिये कोई

भिखारिन आती या फटे कपडो में कोई दुर्बल व्यक्ति आता और कुछ मागता तो वे उसे पीछे वाले दरवाजे से कटोरा भर कर आटा दे दिया करते थे और वह कटोरा भी कम से कम डेढ पाव का हुआ करता था। एक दिन माँ का ध्यान गया तो देखा कि दो दिन मे ही पूरा टीन आधा समाप्त हो गया है। यह ठीक था कि घर मे पॉच–छ सदस्य थे, पर तो भी एक सीमा होती है। जब तीनो को डॉट पडी तो इस सत्य का उद्घाटन हुआ कि भइया रोज सवेरे–शाम कटोरा भर–भर कर आटा दे दिया करते थे।

वे दूसरो को भले ही चीजे दे दिया करते थे पर किसी से कुछ मांगना उसकी आदत मे शामिल नही था। शायद इसके पीछे बाबूजी की कठोर अनुशासनप्रियता थी जिसने उन्हे सिखा दिया था कि किसी से कुछ लेना नही है। बचपन का समय ऐसा नाजुक समय होता है कि न चाहने पर भी गलती हो ही जाती है और उसके लिये कठोर दण्ड भुगतना पडता है, पर उसकी अमिट छाप जीवनपर्यन्त मानस पर पड जाती है। इसलिये जब एक बार एक महिला कर्मचारी सुमि को अपने घर ले गई और उसके कमीज–पैन्ट की जेबो मे अखरोट और खुमाणी भर दिये थे, उस समय सुमि बाबूजी के सिखाये वचनो को भूल गई थी। फ्राक पहनना उसे पसन्द न था। वह अपने भाइयो की तरह ही कमीज–पैन्ट पहना करती थी। सुमि रास्ते–भर सोचती रही कि वह कब घर पहुचे और कब वे लोग मिल बॉट कर खायेगे। पर घर के दरवाजे पर पहुंचते ही सबसे पहले बाबूजी ही सामने दिखाई दिये। क्योकि बाबूजी को घर के बाहर बैठना ही ज्यादा अच्छा लगता था। वे जहा भी जाते, घर के प्रमुख दरवाजे के आगे ही बैठते, केवल एक धोती और गंजी पहने हुये ही। उनकी सादी–सी पोशाक थी। घर मे घुंसने के पहले उनके सामने ही सबकी पेशी हो जाया करती थी। इसलिये जब बाबूजी ने सुमि की फूली हुई जेबो को देखा तो वे कडक कर बोले–

क्या भर रखा है इन जेबो मे? ला मुझे दिखा तो सही।

सुमि ने दोनो हाथ जेबो पर रख लिये और बोली– नही बाबूजी कुछ नही, कुछ भी तो नही। पर बाबूजी ने उसकी जेबे उलटी कर चीजे निकाल ली थी और गुस्सा होकर बोले– किससे माँग कर लाई थी? किसने तेरी जेबे भरी थी? ले यह लिफाफा, सब सामान इसमे डाल दे। दस बार उठक–बैठक कर खबरदार जो आइंदा किसी से कोई चीज फिर ली।

सुमि सुबकती जा रही थी और उठक–बैठक करती जा रही थी –

गुस्से मे यह ध्यान ही नहीं रहा था कि मेरे हाथ से यह क्या हो गया। जब सुमि के सिर से खून की धार बहकर जमीन को लाल करने लगी तो मॉ जोर से चिल्लाई– हे भगवान यह क्या हो गया? अरे, यह मैंने क्या कर दिया? जारे विनू, दौडकर जल्दी से बाबूजी को बुला ला।

बाबूजी आते ही सुमि की हालत देखकर माँ पर बरस पडे– पहले तो बिटिया को लोटा खींच कर मार दिया, अब काहे को रो पीट रही है। अरे बच्चे तो जिद करते ही है पर आपको तो अपने को वश मे रखना ही चाहिये। इतना भी गुस्सा भला किस काम का?

पर यह समय बोलने का नहीं था, यह बात बाबूजी भी जानते थे। गोद में लेकर सुमि को अस्पताल दौड पडे थे घाव बहुत गहरा लगा था आठ टांके लगे थे सुमि को। पन्द्रह दिनो के लिये खेलना–कूदना सब बन्द कर दिया गया था।

पर सुमि को उस दिन शिक्षा मिल गई थी कि ज्यादा जिद्दी होना अच्छा नहीं है। आज वर्षो बीतने के बाद दर्पण के सामने जाते ही सुमि की अंगुली अपने माथे के घाव के निशान पर लगती है और वह कही अन्दर तक आर्द्र हो उठती है। आज ससार मे मॉ नही है, पर उनका स्मृति चिह्न घाव के रूप में उसके मस्तक पर अकित है जो जीवन के आखिरी क्षणों तक उसके साथ रहेगा और उसके बाद उसी के साथ जलकर राख हो जायेगा।

खेलने–कूदने की मनाही सुमि को थी, पर मोटरकार मे घूमने की पाबन्दी थोडे ही थी। धनबाद मे बाबूजी को सरकारी जीप मिली हुई थी और वहा झरिया में जो कोयले की खान थी, वहा बाबूजी के साथ जाते। क्योकि वहां जाना उनके मन को बहुत प्रिय लगता था वहा काम करने वाले मजदूर रोजी–रोटी की तलाश में अपना घर–परिवार छोडकर यहा आ बसे थे। सहज–सरल स्वभाव के उन मजदूरो का चेहरा और शरीर दिन–रात कोयले की खानो मे काम करने के कारण काला पड गया था, पर उनके मन का उजलापन बरकरार था। वे विजू, विनू, सुमि के जाते ही दौडकर उन्हे गोदी मे उठा लिया करते थे। कभी उनको भार ढोने वाले झूलो पर बैठाकर सैर भी कराया करते थेफ वे उनसे बहुत देर तक बाते किया करते। जब मालिक उन्हे आवाज लगाता, तो वह चिल्ला कर कहते–

"आवत हई थोडा बचवन लोगन के खिलालेई फिर तो खान में घुसे के परी।

उन मजदूरो का आत्मीयतापूर्ण स्नेहिल स्पर्श उनके मन को छू जाता। पर जब वे वापिस घर लौटते और स्कूल जाते तो भी अपने सगी-साथियो के बीच उनकी ही बातें करते। लेकिन कुछ दिनों के बाद पढाई की व्यस्तता मे सब भूल बैठते। पर उनके अध्ययन में उस दिन जबरदस्त व्यवधान उपस्थित हुआ था जब उन दोनो भाइयों ने सुमि के ब्याह की सुगबुगाहट घर मे सुनी और सुमि के विवाह के लिये बाबूजी वर की खोज मे लग गये। उन्हे इस बात का अदाज तो था कि सुमि की शादी मे खूब आनंद आयेगा क्योकि यह घर मे पहली शादी थी। पर जब वे सोचते कि सुमि हमसे दूर चली जायेगी, तो उनकी भावुकता का कोई ठिकाना नहीं रहता। वे सोचते कैसे रह पायेगे वे सुमि के बिना? कौन उनकी मनुहारें करेगा?

तीन

जिस तरह सुमि का जन्म क्रान्तिपूर्ण परिवेश मे हुआ था, उसी तरह उसका विवाह होना भी एक क्रान्तिकारी कदम था।

जिस वर को उसके बाबूजी ने चुना था उसके पिताजी बचपन मे ही भगवान को प्यारे हो गये थे। पढाई की तीव्र आकाक्षा मन मे रखते हुए वह दिन-रात मेहनत करता और अपनी पढाई मे लीन रहता। उसकी कर्मठता और लगन से प्रभावित होकर विनू के बाबूजी ने सुमि का ब्याह उससे करने का सकल्प ले लिया था। लडका जाति का ब्राह्मण था पर रहने वाला राजस्थान का था। बाबूजी जानते थे कि इस पर कुछ लोग जरूर आपत्ति उठायेगे। पर हर स्थिति का सामना करने का उनमे अदम्य साहस था। बाबूजी के घर मे यह पहला ब्याह था। नाते-रिश्तेदार, गाव-गोत के सभी लोग इस ब्याह मे शामिल होने को उत्सुक थे। एक महीने पहले से ही रिश्तेदारो का जमघट लगने लगा था। उस समय लोगो मे गहरी आत्मीयता थी, समय भी था उनके पास। आज वह आत्मीयता तिरोहित हो गई है। आज तो केवल रिश्तों को ढोने-भर की औपचारिकता शेष रह गई है। सुमि के ब्याह का उत्साह सभी के मन मे था पर ऐन वक्त पर ननिहाल के लोग ही दगा दे गये। एक तरफ तो द्वारपूजा हो रही थी, दूसरी ओर वे पुलिस के दरोगा को लेकर आ गये और डण्डा तान कर बोले-

"यह ब्याह हम किसी हालत में नही होने देंगे। हम भी देखते हैं, आप बिटिया का ब्याह कैसे रचा लेते हैं। क्या यहां लडको का अकाल पडा था जो आप राजस्थान में लडकी को दे रहे हैं, जहां उसे दो बूंद पानी भी नसीब नहीं होगा।" सब किंकर्तव्यविमूढ हो गए। क्या करे, क्या न करे। पर बाबूजी सधी हुई आवाज मे हुकार उठे थे। वे अपने ठेठ भोजपुरी लहजे पर उतर आए थे। "पडितजी आप दुवारपूजा का कारज जारी रखिए। बिटिया के तेल चढ गइल है। मटमगरा की रस्म भी हो गई है। ओकरा बियाह ए ही मडवे मा अउर ऐ ही लगन मे एही लरिका सग होई। कौनौ माई का लाल अब ई बियाह ना रोक सकेला।"

बाबूजी की इस घोषणा से सभी लोग हतप्रभ रह गये। दरोगाजी सारे सिपाहियों के साथ वहां से प्रस्थान कर गये और जो इस विवाह का विरोध कर रहे थे, उनका भी विरोध हवा मे कपूर की तरह उड गया। ननिहाल वालों का हृदय भी भर आया था क्योकि जिस सुमि बेटी को उन्होने अपनी गोद मे खिलाया था, वही आज पराई होने जा रही थी। उसी समय मामा चुनरी, बिछुवा और नथ लेकर सुमि के सामने आ खडे हुए और उसका शृगार करके उसे विवाह मंडप में बैठा दिया, जहा सप्तपदी के लिए कन्या की प्रतीक्षा की जा रही थी।

वास्तव में मनुष्य का हृदय कितना विचित्र है! शायद इसके समान क्षण-क्षण परिवर्तित होने वाला और कोई तत्त्व इस ससार मे नहीं है। पत्थर के समान कठोर हृदय से किस समय स्नेह और ममता का छिपा हुआ स्रोत फूट सकता है, इसे कौन जान सकता है।

यही बात तो सुमि के बाबूजी के साथ थी। ऊपर से कठोर अनुशासनपूर्ण व्यवहार करने वाले बाबूजी बेटी को विदा करते समय अपने-आप को संभाल नही सके थे। जब सुमि विदा होने लगी, तो उसकी आखें चारो तरफ बाबूजी को हेरती रही पर बाबूजी लुकते-छिपते फिरते रहे कि कहीं बेटी के सामने उनके आंसुओ का बांध टूट न पडे। उसका चेहरा देखते ही वह फफकने न लग जायें। और जब विदा होने के बाद साल-भर तक ससुराल से उसका कोई समाचार नही मिला तो बाबूजी उसकी चिन्ता मे पागल-से हो गये और उसकी ससुराल मे पोस्टकार्ड डाल दिया जिस पर केवल एक लाइन लिखी थी-

"पाहुन, किरपा करके हमरा के समाचार दिजीये कि हमार बिटिया जिन्दा है या मुव गइल ?"

आत्मीयता और स्नेह प्राप्त हुआ है जो मेरे लिए अकल्पनीय था। और मेरे पति सुकान्त, जिन्हे पाकर तो मेरा यह जीवन जैसे विकसित पुष्प के समान सुगधमय हो उठा। मैंने कभी स्वप्न मे सोचा भी नहीं था कि मैं अनजान रिश्तों की डोर से इतना बंध जाऊगी कि सदा के लिये यह मरुधरा ही मेरी सगिनी बन जायेगी और मेरा सुख-सौभाग्य यही पर पल्लवित और परिवर्द्धित होगा।

आपकी बेटी

सुमि

कितने विह्वल हो उठे थे बाबूजी, सुमि के पत्र को पढकर। उनके हृदय से जैसे कोई भार-सा उतर गया था। उन्हें लगा था कि सुमि के विषय में उन्होने सही निर्णय ही लिया था।

चार

उन्हें जब भी देखा, नगे पैर देखा। न पैरो मे जूते, न चप्पल। गलियों मे, सडको पर, बाजार मे, जहां भी देखा, नंगे पैर ही देखा। जब धरती अलाव की तरह तपती तब भी वे सारा दिन नगे पैर ही घूमते रहते। जब सर्दी पैरो को ठिठुराने लगती, आम लोग जूते–मौजे पहनकर घरो से बाहर निकलते, तब भी वे नंगे पैर ही नजर आते।

कभी–कभी सुमि मन मे सोचती, आखिर नंगे पैर क्यू ? क्या गरीबी इतनी अधिक हावी हो चुकी है कि जूता-चप्पल खरीदने की सामर्थ्य नही या पैर इतने बडे हैं कि उनके नाप के जूते-चप्पल बाजार मे नहीं मिलते होगे या फिर कोई मनौती माँगी होगी कि जब तक यह सकल्प पूरा नही होता पैरों मे जूते-चप्पल नही पहनेगे। पर उसकी भी तो एक निश्चित अवधि होती है। लेकिन यहां तो वर्ष पर वर्ष बीत गये, पर उनका वही नगे पैरो फिरना अबाध गति से चलता रहा। अक्सर कुछ लोग मनोकामना सिद्धि के लिये संकल्प लेते हैं पर उनको देखते हुए यह बात सच नहीं लगती।

उनकी बडी-बडी मूंछे, नुकीली नासिका, सतेज ऑखे। बच्चे अक्सर उनकी मूंछें देखकर डर जाते। यही तो था उनका उदासीन, नि:स्पृह–सा रूप। कपडो की तो जैसे उन्हें चिन्ता ही नहीं थी। ज्यादा सर्दी हुई तो एक कुर्ता बदन पर डाल लिया। बस, हो गई छुट्टी।

और जब पत्र मिलते ही सुमि अपने पति के साथ तीन रोज बाद आ पहुची तो उनके कलेजे मे ठडक पडी थी।

वैसे बाबूजी का आशंकित होना स्वाभाविक भी था। जो सुमि गगा नदी के किनारे पली और बडी हुई थी, उसे दूरस्थ राजस्थान के मरुसिक्त अचल मे अपने दाम्पत्य जीवन की नीव रखनी थी। चारो ओर दूर तक फैली बालुका-राशि, पेडो का नामोनिशान नही, दूर-दूर तक हरीतिमा का कोई अवशेष नही, कैसे कर पायेगी सुमि अपने वैवाहिक जीवन को संतुलित और खुशियो से सुरभित ?

ट्रेन में रास्ते-भर सुमि इन्ही विचारवीथियो में निमग्न रही। जो स्थान इतना उजाड है, जहा ठूंठ ही ठूठ खडे हैं, क्या वहां के लोग उसे स्नेह की वर्षा से अभिषिक्त कर सकेगे ? क्या इस मरुधरा पर ऐसी पावन सरिता का स्रोत भी किसी के हृदय मे प्रवाहित होता मिलेगा, जो उसके मन को आर्द्र कर डालेगा ? पर सुमि को इन विचारो से खीच कर ले आये उसके पति सुशान्त, जिनका विशाल मस्तक, सागर के समान गहराई लिये हुए आखे, नुकीली नासिका और विशाल वक्षस्थल किसी को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त था। सुमि उन उजाड रेतीले टीलो को देखती और फिर देखती अपने पति के अदम्य व्यक्तित्व को, तो उनके दीप्त रूप को देखकर सारी चिन्ताए दूर हो जाती। वह हल्की-फुल्की हो उठती। चेहरे पर सलज्ज मुस्कान खिल-खिल उठती। वह सोचती, वह कैसे समझेगी उन अपरिचित, अनजान लोगो की भाषा, पर सुकांत उसे रास्ते-भर राजस्थानी शब्दो के हिन्दी पारिभाषिक शब्द समझाते रहे।

नये परिवेश मे आकर सुमि को कुछ दिन तो अटपटा-सा लगा। पर नवीन रिश्तो की डोर ने उसे अपने पाश मे बाध ही लिया। उसे एहसास हुआ कि जिस धरती को वह शुष्क समझ रही है वही तो उसके पति सुशान्त की जन्मदात्री है। जिन धूल-भरी आधियो को उमडता देखकर वह रोष से भर उठती है, वहीं तो उसके सुकान्त का शैशव व्यतीत हुआ है। अगर वह उसका अपना है तो यह प्रकृति भी उसकी परम आत्मीय है।

इसी तरह कुछ अनजान रिश्ते भी सुमि के साथ जुडते गये जो उसके जीवन को और भी जकडते गये। और सुमि ने बाबूजी को आश्वस्त करते हुए पत्र लिखा।

बाबूजी, आप जरा भी चिन्ता न करे। आप यह भी न सोचे कि इस मरुधरा मे मेरी बेटी दो बूद पानी के लिये तरस जायेगी। यहा पर मुझे इतनी

आत्मीयता और स्नेह प्राप्त हुआ है जो मेरे लिए अकल्पनीय था। और मेरे पति सुकान्त, जिन्हे पाकर तो मेरा यह जीवन जैसे विकसित पुष्प के समान सुगंधमय हो उठा। मैंने कभी स्वप्न मे सोचा भी नहीं था कि मैं अनजान रिश्तो की डोर से इतना बंध जाऊगी कि सदा के लिये यह मरुधरा ही मेरी संगिनी बन जायेगी और मेरा सुख-सौभाग्य यही पर पल्लवित और परिवर्द्धित होगा।

आपकी बेटी

सुमि

कितने विह्‌वल हो उठे थे बाबूजी, सुमि के पत्र को पढकर। उनके हृदय से जैसे कोई भार-सा उतर गया था। उन्हे लगा था कि सुमि के विषय में उन्होंने सही निर्णय ही लिया था।

चार

उन्हे जब भी देखा, नंगे पैर देखा। न पैरो मे जूते, न चप्पल। गलियो मे, सडको पर, बाजार मे, जहां भी देखा, नगे पैर ही देखा। जब धरती अलाव की तरह तपती तब भी वे सारा दिन नगे पैर ही घूमते रहते। जब सर्दी पैरो को ठिठुराने लगती, आम लोग जूते–मौजे पहनकर घरो से बाहर निकलते, तब भी वे नंगे पैर ही नजर आते।

कभी–कभी सुमि मन मे सोचती, आखिर नंगे पैर क्यू ? क्या गरीबी इतनी अधिक हावी हो चुकी है कि जूता-चप्पल खरीदने की सामर्थ्य नही या पैर इतने बडे हैं कि उनके नाप के जूते-चप्पल बाजार मे नही मिलते होगे या फिर कोई मनौती माँगी होगी कि जब तक यह संकल्प पूरा नहीं होता पैरो मे जूते-चप्पल नही पहनेगे। पर उसकी भी तो एक निश्चित अवधि होती है। लेकिन यहां तो वर्ष पर वर्ष बीत गये, पर उनका वही नगे पैरों फिरना अबाध गति से चलता रहा। अक्सर कुछ लोग मनोकामना सिद्धि के लिये सकल्प लेते हैं पर उनको देखते हुए यह बात सच नहीं लगती।

उनकी बडी-बडी मूछे, नुकीली नासिका, सतेज ऑखें। बच्चे अक्सर उनकी मूछे देखकर डर जाते। यही तो था उनका उदासीन, निःस्पृह–सा रूप। कपडो की तो जैसे उन्हे चिन्ता ही नही थी। ज्यादा सर्दी हुई तो एक कुर्ता बदन पर डाल लिया। बस, हो गई छुट्टी।

उन परम आत्मीय का परिचय किन शब्दों मे दिया जाये। सुमि उनके स्नेह से इतनी अधिक अभिभूत हो उठती थी कि उनके समक्ष केवल मौन–मूक वंदना ही कर पाती थी। इस जीवन यात्रा मे बहुत लोग मिले, पर उनके व्यक्तित्व मे सुमि ने ममता की निर्झरणी जिस प्रकार प्रवाहित होते देखी, वो आज तक अन्यत्र नही देखी।

वे कभी किसी स्कूल मे पढने नही गये, किसी विश्वविद्यालय ने उन्हे शिक्षा की उपाधि से विभूषित नहीं किया। वे मुह मे सोने का चम्मच लेकर भी पैदा नही हुए थे। यह ठीक है कि अनेक मनौतियो के बाद उनका जन्म हुआ था और माता-पिता उन्हे ईश्वर का दिया हुआ वरदान ही समझते थे, पर जल्दी ही पिता का साया उनके सिर से हट गया था।

परिवार मे सबसे बडे और उनसे छोटे पांच भाई-बहन। अक्सर जब वे थाली लगाकर भोजन करने बैठते तो पूछते– सभी जीम लिये? और जब किसी की निगाहे झुकी पाते तो अपनी थाली उसके आगे सरका देते। जब उनके लिये कपडे बनवाये जाते और वे छोटे भाइयो को उदास मुद्रा मे सिर झुकाये देखते और उन्हे लगता कि वे चोर निगाहो से बडे भईया को देख रहे है तो वे अपनी सारी चीजे, कपडे उनके आगे रख देते। माँ उनका कुछ ज्यादा ही खयाल रखती। वे बात–बात मे कहती- "म्हारे भोमियो बेटो है, म्हारे जेठरी बाजरी है, म्हारे देवता रा दियोडा परसाद है।" पर वे इन सब बातो से नितात अपरिचित अपने काम मे लगे रहते। जब स्कूल भेजने का समय आया तो उन्होने यही कहा- "हू पढ–लिख'र काई करसू" जैसे-जैसे वे बडे होते गये, दूसरे लोग भी उनसे कहते, भाई थोडा–बहुत पढ ले, तुम्हारे काम आयेगा। माँ भी उनसे पढने के लिए बार-बार कहती क्योकि उसके सुप्त मन मे यह बात अवश्य थी कि मेरा सबसे बडा बेटा है, पढ-लिखकर सरकारी नौकरी लग जायेगा।

पर वे बार-बार यही कहते, "छोटे ने पढा ले मिनख बन जासी, तो म्हारा जनम सफल हो जासी। म्हारो काई, हूं तो मेहनत–मजूरी कर पेट पाल लेसूं पर इनारी आत्मा ने रोप मती।" और पिता की मृत्यु के बाद छोटो को पढाने के लिये उन्होने क्या नहीं किया। राशन की दुकान से बाणियो की दुकान तक बोरी ढोते रहे, तगादे पर जाते रहे, कोई सरकारी नौकरी तो थी नही, बाणियो की दुकान पर काम करते। दिन–दोपहरे जो भी काम कहता

उन्हे करना ही पडता।

शायद यह उनकी मेहनत का ही फल था कि छोटे परिवार का सबसे प्रबुद्ध व्यक्ति बन गया था। काशी से, कलकता से, पता नही कौन-कौनसी डिग्री लेकर लौटा था और केवल डिग्री ही नही, पढी-लिखी बहू भी साथ में।

जब उन्होने यह समाचार सुना कि छोटे ने काशी मे ब्याह रचा लिया है और लोगों ने जात-कुजात की दुहाई दी थी। घर के और लोगों ने तो यहॉ तक कह दिया था, अपने पैर कुल्हाडी मार ली है उसने अपने कुल का नाम डुबो दिया है, अब हमारे घर से सम्बन्ध कौन करेगा ?

पर वे तब भी शान्त मुद्रा मे बैठे बैठे यही बोले- "उण ने घरे तो आवण दे– मै म्हारे बेटे ने बिने तार देर बुला स्यू, देखसू कूण माई रा लाल उणने उल्टा-सीधा बक सके है।" और वास्तव मे उन्होने अपने बेटे के ब्याह मे छोटे और उसकी बहू को तार देकर बुला लिया था और जब तागे से उतर कर पहली बार बहू ने उनके चरणस्पर्श किये तो वे इतने अधिक भावविह्वल हो उठे कि उनके गमछे का आधा हिस्सा उनके आसुओ से भीग गया था। वे बार-बार गमछे से अपने आसू पोछते जा रहे थे और यही शब्द कहते जा रहे थे। "म्हारा भाग घणा ही चोखा है। म्हारा पढा-लिखा भाई आज घणे बरसा बाद म्हाने मिलिया है। पढी-लिखी बीनणी म्हारे घर मे, आंगने मे आई है। आ जरूर एक–न–एक दिन म्हारे कुल रो नाम उजागर करसी।"

वे इतने भावविह्लव हो गये थे कि घर के सम्पूर्ण सदस्यो को छोटे और बहू के सामने लाकर खडा कर दिया था। और एक-एक का हाथ पकडकर उसके सामने लाते ओर कहते **"देख इणने देख, इणने रूप ने देख, आं थाने लोगां ने नीच जात री लागे है। नहीं-नहीं, आ तो पहरी–ओढी गणगौर सी लागे है, देखते ही जी सोरा हुवे है।"**

उस समय ऐसा लगा था जैसे इस उजाड मरुस्थल मे ममता की पयस्विनी मद गति से प्रवाहित हो रही है, जो सुमि के अंतर्मन को भिगोती रही है और जिसका कोई ओर-छोर नही, जो अपने सारे बॉध तोडकर उसके मन को आप्लावित करती रही है। उसके बाद उन्होने अपने घर से कभी उसे रीता नही लौटाया, कुछ नहीं तो चार बताशे ही लाकर उसकी अंजुरी पर रख दिया करते थे।

पर यह कभी सोचा भी नही था कि अपनी ममता का अक्षय स्रोत मुक्तहस्त लुटाकर एक दिन वे अनत यात्रा पर चल पडेगे और अस्पताल के

आपात कक्ष मे पडे उनके अचेतन शरीर का दर्शन ही उनका अन्तिम दर्शन होगा। इसे दुर्भाग्य ही कहना पडेगा कि बिस्तर पर पडे रहने के लिये मैं सुमि विवश थी पर सूक्ष्म मन उनके आस–पास ही भटक रहा था।

फिर भी जाना ही पडेगा पर उनका दर्शन लाभ नही होगा। बिना किसी से सेवा कराये उन्होने इस ससार से सदा के लिये विदा ले ली थी।

भटकता हुआ सूक्ष्म मन अक्सर उन्हें स्वप्न मे देखता–बाजार मे वे नगे पैरो से दौड रहे है। सिर पर बोरी का भारी बोझ लिये शिथिल कदमों से वे नगे पैर बोरी दुकान के भीतर रख रहे हे। जहां भी जाती, वे नंगे पैर पीछा करते रहते।

उस महान कर्मयोगी की अनन्त यात्रा का आज दसवां दिन है। पुरजन, परिजन एव सांसारिक सम्बंध रखने वाले स्त्री–पुरुष उनके घर के आगन मे श्रद्धायुक्त पण्डितजी महाराज को वस्तुओ का दान कर उस महान आत्मा के प्रति मानसिक नमन करते हुये चौपाल में आकर बैठते जा रहे हैं। परिवार के सभी स्त्री–पुरुष और उनकी माँ यह सब देखकर द्रवीभूत हो उठते हैं। सुमि अपने–आप को रोक नहीं पाती है तथा कुछ समय के लिये अन्दर कमरे मे जाकर और आसू बहाती हुई निस्तब्ध होकर बैठ जाती है।

भीड अब भी वैसी ही है और पंडितजी महाराज उत्सुकता से परिवार के सदस्यो की ओर जिज्ञासाभरी दृष्टि से देखते हुये यह कहना चाहते है कि अभी कुछ और देना बाकी है। तभी भीड मे से एक बुजुर्ग की आवाज आती है–

क्या बात है महाराज, परिवार वालो से क्या कमी रह गई। जूते –चप्पल चाहिये क्या ?

इतना सुनते ही महाराज अपनी जगह से उछल पडे ऐसा लगा जैसे उनका इच्छित वरदान मिल गया हो।

बस जजमान, यही तो कमी रख दी आपने। सब कुछ दिया पर जूतो की जोडी नही दी भला गर्मी का मौसम है। एक जोडी जूते मिल जाते तो कम से कम गर्मी तो कट ही जाती।

पीछे खडे उनके सबसे बडे बेटे ने कहा– पर महाराज, हमारे तो बा ने सारी उम्र पैरो मे जूते डाले ही नहीं। जूते पहनने मे भी कोई आनन्द है, इसका उन्होने अनुभव कभी किया ही नही। फिर भला हम उनके पीछे जूते दान मे क्यो दे?

पडितजी बोले– पर जजमान यह तो आप की भूल है। आपके

बाबूजी ने भले ही जूता–चप्पल पहने बिना अपनी जिंदगानी बिता दी, पर उनके पीछे जूतो की जोडी तो दान करनी ही पडेगी, नहीं तो उन्हे मुक्ति नहीं मिलेगी, उनकी आत्मा भटकती ही रहेगी।"

पंडितजी की बाते सुनकर परिवार के सभी सदस्य एक–दूसरे का मुँह देखने लगे। इतना सब–कुछ करने के बाद भी यदि पिता को मुक्ति नहीं मिली तो वे पितृऋण से कैसे उबर पायेगे? आँखो ही आखो मे सकेत हुए और सबसे बडे ने चमचमाते जूतो की नयी जोडी लाकर पडितजी के सामने रख दी। सारी उम्र नंगे पैर घूमने वाले उस परम आत्मीय की मुक्ति हुई अथवा नहीं, यह तो ईश्वर ही जाने, पर पंडितजी का लक्ष्य अवश्य पूरा हो गया था। उनको दिये सब सामानों के बीच नागरा जूतों की नई जोडी ही सबसे अधिक चमक रही थी।

पांच

विनू की मॉ एकाग्र भाव से पूजागृह में बैठी हुई थी। अभी कुछ देर पहले ही मॉ ने शिव स्तुति प्रारभ की थी। पूजाघर से बरामदे तक माँ की शान्त, गम्भीर वाणी गूज रही थी–

"नमामि शमीशान निर्वाण रूपम्
विभुम व्यापकम् ब्रह्म वेद स्वरूपम्"

मॉ वर्षो से शिव की यह स्तुति करती आई थी। जब सारे भाई–बहिन छोटे थे तो मॉ के साथ स्वर मे स्वर मिला कर यह स्तुति किया करते थे, इसलिए घर मे छोटे-बडे सभी को यह स्तुति कठस्थ हो गई थी। वैसे भी काशी नगरी भगवान शंकर की नगरी मानी जाती है। जहां का ककड भी शकर है। इस बम भोले के दरबार मे शिव स्तुति करना तो अनिवार्य है ही, यह हमे आस्थावान बनाती है। आज बच्चे बडे हो गये है, सब अपने-अपने क्रिया-कलापो मे लीन है, इसलिये मॉ एकान्त भाव से पूजाघर मे एकाकी पूजा मे लीन थी। उसी समय एकाएक मॉ ने अपने पैरो पर कुछ हाथो को स्पर्श किया। उनमे दो जोडी हाथ तो बचपन से ही उनसे परिचित थे जो उन्ही का अश थे और जिन हाथो को उन्होने ही पकड कर चलना सिखाया था पर दो जोडी हाथ सर्वथा अपरिचित थे। एकाएक आवाज सुनाई पडी।

"इनके चरण स्पर्श करो, यह हमारी मॉ है। आज हम जो, कुछ भी बन सके है, यह इनकी ही कृपा है।"

आवाज वडे भैया की थी। मॉ ने सिर उठा कर देखा, दो वधुए नतग्रीवा मॉ के चरण स्पर्श कर रही थी। वे एकदम से चौक गई, हतप्रभ रह

गई। उनके मुंह से निकलने वाली स्तुति के मंत्र–अस्फुट से पड गये। यह क्या हो गया! ईश्वर, ऐसा तो मैंने स्वप्न में भी नही सोचा था। न कोई शहनाई, न पंडित, न बारात, यह कैसी शादी है जिसमे वे अपने बेटो को रस्मो-रिवाज के साथ बारात लेकर न भेज सकी? कितने अरमान थे उन्हे इन दोनो के ब्याह के।

जब विजू और विनु छोटे थे तभी से इनके बडे होने की, दूल्हा बनने की कल्पना उन्हे अकसर गुदगुदा दिया करती थी। जब वह उन दोनो की चोटी गूंथ कर माथे पर काजल का डिठौना लगाकर उन्हे निहारती तो उन्हे उनमे लव–कुश की छवि के दर्शन होते। इन दोनो बच्चो की व्यस्तता ने ही उनकी आगे बढने की लालसा को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया था। उन दोनों को हँसता-खेलता देखकर वे अपने सारे दुख भूल जाया करती थी। जब वे दोनो बीमार पडते तो वे चकरी की तरह सारे दिन डाक्टर के यहां चक्कर लगाती रहती। घर की दहलीज से स्कूल के गेट तक उंगली पकड-पकड कर उन्होने दोनो को पहुचाया था। घर के काम का अधिक बोझ रहने पर भी वे उनका स्कूल का गृहकार्य स्वय कराया करती थी। कभी-कभी वे चावल का मॉड और गुड की डली खाकर रह जातीं पर उन्हे पौष्टिक आहार अवश्य देती ताकि वे पुष्टिकर बने। स्त्रियो को अपने आभूषण बहुत प्रिय होते हैं पर विनू की मॉ ने कभी अपने गहनो का मोह नहीं किया। उनके दोनो लाल पढ-लिख कर कुछ बन सके, इसके लिए उन्होने अपने गहने तक बेच डाले थे, पर आज वह क्या करे, कहाँ जाये? उन्हे सारा घर घूमता-सा नजर आ रहा था। उन्हें लग रहा था कि विनू के बाबूजी ठीक ही कहते है। बाबूजी अक्सर बाहर ही रहते थे। बेटो के मोह की जंजीरों से इतना नही बंधे थे वे जितनी मॉ बधी थी। माँ बच्चो से दूर रहने की कल्पना से व्याकुल हो उठती थी। तब बाबूजी उन्हें दिलासा देते हुए कहते– **"काहे के हलकान होतहऊ अब तौहार बचवा के पांव जम गइल बा अब ऊ ममता के पिंजरे में रहे वाली चिराई नहिखे। ओकर ममता तियाग दा।"**

और आज यही हुआ था। बच्चो ने बिना उनकी स्वीकृति के अपने घर-ससार बसा लिये थे। बडे ने तो कोर्ट मे जाकर ब्याह कर लिया था और छोटे ने आर्य समाजी ढग से ब्याह रचा लिया था। उन्हें अपनी गृहस्थी की दीवारे गिरती–सी जान पडी थी। वे तो औरत है, औरत धरती की तरह सहनशील होती है। किसी तरह अपने हृदय पर पत्थर रखकर झेल लेगी वे इस घाव को, पर जब बाबूजी को इन घटनाक्रमो का पता लगेगा तो क्या

हाल होगा उनका? उनके वेद–पाठी संस्कारनिष्ठ पति, जो जीवनभर अपने मान-सम्मान के साथ जीवनयापन करते आये हैं। जो हिन्दू संस्कारो को अपना अभीष्ट मानते रहे हैं। जिन्होंने बचपन से ही बच्चो के मन में वैदिक संहिताओं के मत्र कठस्थ करवाये थे, आज उन्होने ही उन के हृदय पर चोट पहुंचाई है। कैसे झेल सकेगे वे इन घटनाचक्रो को ? क्या वे इन दोनो वधुओ को अपनी कुलवधुओ के रूप मे स्वीकार कर सकेगे ? आखिर उनसे यह बात छिपाई भी तो नहीं जा सकती है। इतनी बडी बात छिपेगी कैसे और कब तक? और वही हुआ जिसका माँ को डर था।

और विनू के बाबूजी को दोनो बेटो के ब्याह की खबर मिली तो वे माथे पर दुहत्थड मार कर रो पडे थे, गरियाने लगे थे, अपने प्राण देने पर उतारू हो गये थे। उन्हे लगा था, वे अपने गांव कैसे जायेगे? अपने गांव–गोत के लोगो को क्या मुंह दिखायेगे? लोग उनको पकडने दौडे, पर वे सीधे गंगाजी की तरफ दौड पडे थे। सबको ऐसा लगा कि बाबूजी गगा मे कूदकर अपने प्राण दे देगे। पर जैसे ही बाबूजी गंगा किनारे पहुंचे, उन्होने एक नया दृश्य देखा, गंगा की लहरे अपने सग तट पर की सारी गंदगी बहाकर ले जा रही हैं और वह गदगी भी गगा के जल मे पहुचकर उज्ज्वल रूप धारण कर रही है। उन्हे लगा, वे भी तो कुछ नया कर सकते हैं। जिस तरह जल देव है उसी प्रकार अग्नि भी देव हैं। वे अग्नि मे आहुति देकर सब–कुछ शुद्ध कर देगे। वे वैदिक संस्कारो से बेटो के फेरे करवा देगे। फिर कोई कुछ नहीं कहेगा। वे अपनी गृहस्थी को किसी भी हालत मे खण्डित नही होने देगे और जब वे गगा किनारे से वापिस लौटे तो उनके चेहरे पर एक नयी मुस्कान थी और कदमों मे नयी दृढता।

घर लौटते ही विनू के बाबूजी ने घर के समस्त सदस्यो को एक स्थान पर एकत्र किया। घर वाले उनके इस अचानक परिवर्तन पर आश्चर्य चकित थे, । कहा तो बाबूजी का वह रौद्ररूप, और कहां यह शान्त चेहरा, जिस पर विजयी मुस्कान खेल रही थी। बाबूजी ने दोनो बेटो को अपने पास बुलाया, उनके सिर पर बारी-बारी से आशीर्वाद के हाथ रखे तथा पडितजी को बुलाने के लिए कहा। बडे भइया पंडित जी को बुलाकर ले आये। उनके आते ही बाबूजी ने शान्त व गंभीर स्वर मे कहा- पंडितजी, आप एक मास के अन्दर का कोई शुभ मुहूर्त निकलवाइये। हमे अपने दोनों बेटो का ब्याह जल्दी से जल्दी करना है अब हम दोनो से यह गृहस्थी का बोझ नहीं संभलता, जल्दी से घर मे बहुए आ जायें तो हम इस जिम्मेदारी के बोझ को उनके ऊपर डाल दें।

पडितजी के मुहूर्त निकालते ही वावूजी ने वडे भइया को निमंत्रण पत्र छपवाने का आदेश दे दिया। उन्होने घर मे जो एक जलजला और तूफान आया था, उसका जिक्र किसी के सामने भी नहीं किया। उन्होने सबके सामने यही प्रकट किया कि उन्हें लडकियां पसद आ गई हैं और वे अपनी जिम्मेदारी को उतारने के लिये बेटो को झट से ब्याह देना चाहते हैं। उन्होने लडकियो के पीहर पक्ष को गगा के उस पार भवन लेने की सलाह दी और अपने गांव के सब लोगो को इस अवसर पर विशेष रूप से निमत्रित किया। वे इष्ट मित्रो के साथ दोनो बेटो की वारात लेकर गगा के उस पार गये और दोनो बेटों की शादी विधि-विधान से करवा कर लौट आये। घर आते ही प्रीतिभोज किया और वहुओ की मुह दिखाई की रस्म पूरी हुई। और जैसे ही दोनों बेटो और वहुओ ने उनके चरण स्पर्श किये, उन्होने गद्‌गद होते हुए कहा कि, "आज से यह घर तुम्हारा है अब तुम लोग इस घर की भागदौड संभालो, मुझे भारमुक्त करो।"

और इस प्रकार विनू के वावूजी ने अपनी गृहस्थी को खण्ड-विखण्ड होने से बचा लिया था। किसी को कानोकान भी खबर नही लगने दी कि उनके घर मे इतना वडा तूफान आकर ठहर गया है।

अपने इस निर्णायक फैसले पर विनू के वावूजी को कभी पश्चात्ताप नही करना पडा। दोनो बेटो और वहुओ ने उन्हे पूर्ण सहयोग दिया था और कहा था- "बाबूजी आप सब चिन्ता छोड दे। हम लोग मिलकर अपने समस्त उत्तरदायित्वो को पूरा करेगे।"

इस प्रकार गृहस्थी की समस्त जिम्मेदारी बेटों और बहुओ के सशक्त कंधों पर डालकर, वावूजी इतिहास लेखन के महान् कार्यक्षेत्र मे अपने स्वप्नों को साकार करने निकल पडे।

धारणाओं को स्वीकार करेगे ? क्या उनके द्वारा प्रज्वलित की गई ज्ञान ज्योति का प्रकाश विश्व इतिहास का मार्ग प्रशस्त कर उसे एक नया मोड दे सकेगा ? आदि-आदि और जव ये सव विचारविन्दु उनके दिमाग को मथने लगते तो सव–कुछ छोडकर अपने पैतृक गांव चले जाते और वहां की मिट्टी मे रच-यस कर अपने आकुल मन को शान्त करने का प्रयास करते। वहां के लहलहाते खेत–खलिहान उन्हे एक नयी आशा से भर देते क्योकि उन्ही के वीच उनका वचपन वीता था।

विहार मे स्थित एक छोटा–सा गाव ढोढनडिहरी। यही तो थी विनू के वावूजी की जन्मभूमि, उर्फ डा त्रिवेदा उर्फ नेउर चाचा की धरती जहां उनका वचपन वीता था। गाव मे विनू के वावूजी को सव नेऊर चाचा कहकर के ही वुलाते थे।

अपने पाच भाइयो में सवसे छोटे थे नेऊर चाचा। दिन–भर गाव के खेत-खलिहान में घूमते रहते। शहर की चहल-पहल से कोसों दूर डेहरी आन सोन के किनारे वसा उनका छोटा–सा गांव। स्टेशन से गाव तक जाने के लिए वैलगाडी रास्ते–भर हेचू-हेचू करती हुई मेड के धचके से हिलती-डुलती। चारों ओर कमर तक पानी मे खडे धान के लहलहाते खेत। जरा–सा मेड चूके कि गप्प से पानी मे गिर पडे। कभी तो गाव पर सोन नदी की ऐसी कृपा होती है कि धान से घर–कुठार सव भर जाते हैं और कभी ऐसी दरिदर अकाल की छाया पडती है कि वाल–वच्चे दाने-दाने वास्ते तरस जाते हैं। किसी-किसी साल तो सोन नदी का पानी अपनी कुल–मर्यादा तोडकर समूचे गाव में प्रलय मचा देता है। सोन नदी के पुल और प्लेटफार्म की गिनती भारत के सवसे वडे प्लेटफार्म के रूप मे की जाती है पर उसके किनारे जो मनुष्य निवास करते हैं उनकी मनोव्यथा, उनका दुख, उनका दिन-रात गरीबी से सघर्ष करना, इन सवको कौन जान सकता है।

नेऊर चाचा ऐसे ठेठ देहाती गाव में जन्म लेकर भी पढाई-लिखाई में अव्वल रहे और पटना विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की डिग्री प्राप्त करने वाले पहले व्यक्ति थे जिन्हे डा. त्रिवेदा के नाम से जाना जाता था। पटना मे सरकारी अफसर थे। एक जीप और दो चपरासी भी मिले हुए थे। बाल–बच्चे शहर के उच्चस्तरीय स्कूलों मे पढते थे। ठाठ से शाम को कार पर चढकर घूमने जाते, पर इन सब सुविधाओ के मिलने पर भी नेऊर चाचा का मन गाव मे ही भटकता रहता। गांव के चौपाल से उनका मोह का बंधन बंधा हुआ था और जब तक विनू की दादी जीवित रही, उनकी जान–परान

नेऊर मे ही अटकी पडी थी, छोटे बेटे जो ठहरे। वैसे भी छोटे बेटे पर माँ का मोह ज्यादा होता है, क्योकि वह पेट पोछना होता है। जब-जब दादी के सामने बडे ताऊजी खेत के बटवारे की बात चलाते, तब वो बार-बार यही कहती– 'अब ही तो हम बैठल बानीं। हमार मुवे बाद हमार लाश पर बंटवारा होखी।'

विनू के बाबूजी के कानो मे माँ की यह बात हर समय गूंजती रहती। कान सन-सन करने लगता। ऐसा लगता जैसे कान के अन्दर कोई कीडा रेंग रहा है। पर आज से दो बरस पहले दादी ने भी इस ससार से सदा के लिए विदा ले ली थी। गांव की सीमा मे घुसने से पहले ही जब नेऊर चाचा ने यह समाचार सुना कि माँ नहीं रही तो वे अपना सिर थामकर बैठ गये थे। एक मोह का बधन था, जो टूट चुका था। पर दूसरा मोह का बंधन था गाव की माटी, जिसे वह छोड नही पाये थे। वर्ष में दो-तीन बार गांव जाते। कभी बडे बेटे विनू को तो कभी छोटे विजू को या बडी बेटी सुमि को भी साथ ले जाते। कोई पाहुन तो थे नही कि स्टेशन पर बैलगाडी या डोली लेकर कहार खडे रहते, पैदल ही कच्चे रास्ते से गांव जाना पडता।

पर एक बार जब बडी बेटी सुमि ब्याह मे शामिल होने के लिये बाबूजी के साथ गाव गई तो उनका रास्ता चलना उसने हलकान कर दिया। बार-बार एक ही सवाल करती, बाबूजी अभी गाव कितनी दूर है ? बाबूजी ठेठ भोजपुरी लहजे मे कहते– 'ऊं का समनवा लौकत है।'

सुमि आख फाड-फाड कर देखती पर दूर तक कुछ दिखाई नहीं पडता। मीलों तक पसरे खेत-खलिहान जरूर दिखाई पडते। गांव पहुचते-पहुंचते संझा पड गई और सुमि जब घर के द्वार पर पहुंची तो न किसी को पांयलागी, न नमस्कार, बस, धम्म से खटिया पर गिर पडी। गांव मे सब तरफ चीख पुकार, अफरा-तफरी मच गई। सुमि के का हो गईल ?

बिटिया ऐसन हाल–बेहाल काहे परी है ? नाक मे नथली पहने, बडी–सी टिकुली माथे से साटे हुए भौजी सुमिया का पैर मसलने लगीं और मतवा सरसो का तेल कपार पर रखकर चापने लगी। भौजी माथै पर हाथ धरकर रोते-रोते बोली– **"अरे मोरी माई रे ई का भईल। सुमिया के ऊपर तो महुवा के पेड का भूत चढ गईल। बाटे झट से कौनों ओझा पंडित बुला के झाडा मन्तर कराये के परी नाहीं तो परान संकट में पड जाई।"** रात–भर सुमि बुखार मे सुलगती अन्ट-सन्ट बकती रही। *गाव–भर के कुछ ओझा–पडित झाडा–मन्तर फूक कर पैसा ऐठ कर ले गये*

पर सुमिया का जी ठीक नही हुआ। बुखार तो जैसे उतरने का नाम ही नही लेता था। सवेरे-सवेरे शहर ले जाकर सबसे बडे डाक्टर को दिखाया गया तब सुमिया की तबियत मे सुधार हुआ। नेऊर चाचा तो पहले से ही इस बात को जानते थे कि यह शहर में पली,पढी–लिखी लडकी है, जन्तर-मन्तर से कुछ फायदा नहीं होने वाला। बिना अंग्रेजी दवा लिये बुखार नहीं उतरेगा पर भौजी और मतवा किसी का कहा माने तब तो। आज ससार मे मतवा नही है, पर उनके ममताभरे हाथों का स्पर्श सुमि को आज भी सुखद अनुभूति से भर देता है।

बुखार उतरने के बाद सुमि ने गाव के ब्याह में खूब मौज-मस्ती ली थी। रात के समय गाव की औरतें चेहरों पर घूघट डालकर पैरो मे हजारा पायजेब पहनकर गोले में नाचने लगती और गीत गाती–

कोठवा पर का सिपाहिया रे
गड़वा हमसे माँगे
बाहर से देइवे रे अन्दर नहीं जइवे
दूसरे मौहल्ले की औरतें जवाब देती–
बरिहे बरिस की उमरिया रे
लाज से मरि जइबै

वह बारह बरिस वाला गीत सुमि को बड़ा अच्छा लगता क्योकि स्वयं भी तो उस समय 12 वर्ष की थी। इस गीत के बोल के साथ उनके मन–प्राण झूम उठते और वह भी उनके साथ गोले में थिरकने लगती। उसकी मधुर मुस्कान और बालसुलभ चपलता देखकर नेऊर चाचा अपनी सब चिन्ताए भूल जाते। पर जब उनको गुस्सा आता तो वे किसी को भी नही छोड़ते, चाहे वह बडा व्यक्ति हो या नन्ही–सी जान। सुमि अभी भी उन घटनाओं को अपने मानसपटल से विस्मृत नहीं कर सकी है जब एक बार नन्हकी ने गुड से भरी हडिया के कपडे मे ऊंगली से छेद करके गुड निकाल कर खा लिया था तो उसकी जान संकट में पड गई। नेऊर चाचा तो उसके पीछे हाथ धोकर पड गये थे।

सुमि को अभी वह दृश्य अच्छी तरह याद है, जब नेऊर चाचा ने नन्हकी का हाथ पकडकर उसको जमीन पर बैठा दिया और उसके सामने गुड़ से भरी हडिया रख दी और अपने हाथ मे डण्डा लेकर उसके सामने बैठ गये एवं डपटकर बोले–

"चल ई सब गुड़ खा, मकोरा आज तोहरा के ई सब गुड़ खाये के परीं। खइबू की ना ? अब ही एक डण्डा देव, चोरी करे का लच्छन सीखत बानी काल दिन ससुराली जइबू तो हमार कुल खानदान के नाम पर बट्टा लगा देबू।"

नन्हकी डर के मारे रोने लगी। पहले धीरे-धीरे, फिर जोरो से। गुड खाती जाती और रोती जाती। खाते-खाते उल्टी होने लगी, नाक से खून गिरने लगा। आखिर बच्ची जो ठहरी। इतना—सारा गुड खाना कोई बस की बात थोडे ही थी। वह रोती जाती और हिचकी भर-भर कर कहती जाती—

ऐ चच्चा हो........अब चोरी न करब..........

अबकी हमरा के माफी दे देहिन।

बार-बार एक ही बात दोहराती पर नेऊर चाचा तो हठ कर के बैठ गये थे। बार-बार एक ही वाक्य दोहराते—

"आज तोहरा के ई सब गुड़ खाये के परी, मले तू मुई जा।"

बडी माँ दालान मे बैठी हुई घण्टे—भर से यह सब झंझटबाजी देख रही थी। आखिरकार उससे रहा नही गया। वे उठी और नन्हकी का हाथ पकड कर उसको दालान मे खीच लाई और क्रोधित होकर बोली— **"आज कुल गुस्सा नन्हकी पर उतरीं का ? काल दिन बिटिया के कुच्छो हो जाई तो माथे पर हाथ घर के रोवे के परी।"** और इस तरह बडी मॉ ने नेऊर चाचा के क्रोध से नन्हकी को बचा लिया था। वैसे तो चाचा का हृदय भी द्रवीभूत हो गया था। उनका उद्देश्य उसे हलकान करना नही था, केवल चोरी की सजा देना—भर था। आज नन्हकी संसार मे नही है पर उसकी रोती—बिसूरती सूरत आज भी दृष्टिपट से ओझल नही होती।

गांव मे नेऊर चाचा को लोग बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। कठिन से कठिन समस्या आने पर लोग उनकी सलाह लेते हैं क्योकि वे गाव के सबसे अधिक पढे-लिखे विद्वान जो ठहरे। उनके उन ताऊ का सिर भी आज गर्व से ऊचा है जिन्होने कभी उनके पढाई न करने पर जमीन मे गड्ढा खोदकर गाड देने की बात कही थी। शायद उन्होने स्वप्न भी मे नही सोचा था कि वही बालक एक दिन इतना बडा इतिहासकार बनेगा जिसे लोग डा त्रिवेदा के नाम से जानेगे और जो सम्पूर्ण विश्व को [illegible]तिहास सम्ब[illegible] अवधारणाए देगा। वही डा. त्रिवेदा उर्फ ने[illegible] [illegible] मसीहा, दिन-रात सबके सुख—दुख मे शामिल [illegible] की

शादी होती तो नेऊर चाचा की धान की फसल उसके नाम हो जाती। नाई, धोबी, कुन्बी, कहार गांव की सत्तर जात के लोग, किसी के बीच कोई जात का बंधन आड़े नहीं आता। सबके लिये उनकी करुणा की धारा अनवरत रूप से प्रवाहित होती रहती।

यह उनके स्नेह का ही फल है कि विनू के बाबूजी उर्फ नेऊर चाचा ने अपने ठेठ देहाती डोढनडेहरी जैसे गांव में सरकार पर जोर डालकर पुस्तकालय, वाचनालय और अस्पताल खुलवा दिया है। स्टेशन से गाव तक जाने के लिये पक्की सडक भी बन गई है। यह सब नेऊर चाचा के अथक श्रम का ही परिणाम है। बाल-बच्चे सब बडे-बडे शहरो मे रहते हैं। कोई गांव में आकर रहना नहीं चाहता है और न किसी को इतनी फुर्सत है कि अपना काम–धन्धा छोडकर गाव की जमीन को सम्हाले पर 80 वर्ष के होने पर भी विनू के बाबूजी का मन आज भी गांव की मिट्टी से जुडा हुआ है। जबकि वे भी इस सत्य को अच्छी तरह समझ चुके हैं कि गाव मे अब राजनीति घुस गई है। जरा-जरा–सी बात पर लाठिया, भाले और बरछी लेकर लोग एक-दूसरे पर पिल पडते हैं। बिना कुछ सोचे-समझे एक–दूसरे की फसल को जानवरों को खिला देते हैं। रातों-रात झोपडी मे आग लगवा देते हैं, जिसमे सब–कुछ जलकर स्वाहा हो जाता है। पहले जैसा प्रेम और भाईचारे का व्यवहार अब गांव मे कहां ? आत्मीयता का तो जैसे झरना ही सूख गया है। गांव की मिट्टी में जैसे किसी ने वैमनस्य का विष घोल दिया है। रिश्तो में सर्वत्र स्वार्थ का बोलबाला व्याप्त है। यह स्थिति देखकर अक्सर विनू के बाबूजी गुनगुना उठते हैं–

पहले एक गांव की बेटी।
होती थी पूरे गांव की बेटी।
सब उसे दुलारते थे।
सबसे गले मिलती थी
अब नहीं बढता है कोई हाथ
गले लगाने को
गले कौन मिले
जब गले कटने की नौबत आ गई।

गांव की ऐसी विषम स्थिति और विस्फोटक वातावरण देखकर अक्सर विनू और विजू बाबूजी को कहते– बाबूजी ई गांव की जमीन बेच दीजिये, हम लोग गांव कैसे रहेगे इतनी फुर्सत कहां है हमारे पास। और फिर

हम क्या वहा फौजदारी करने जायेगे?

उस समय विनू के बाबूजी को लगता जैसे कोई उनकी छाती पर घूंसा मार रहा है। उनकी स्थिति जलविहीन मछली की तरह हो जाती. । उनके मन मे अन्तर्द्वन्द्व चल रहा है। उनका शरीर इसी गांव की माटी का अंग है। उनका प्राण इसी माटी के कण-कण का ऋणी है। इसी माटी ने उन्हे पाला है, पोसा है, बड़ा किया है और सम्मान तथा ख्याति दी है। उनका बचपन इन्हीं खेत-खलिहानों मे बीता है। इस माटी की गंध उनके रोम-रोम मे बसी हुई है। उनका जीवन, उनका आदर्श और उनका प्राण आज इसी माटी की गंध का पर्याय है। इसलिये आजकल अक्सर वे गाव से दूर चले जाते है ताकि कुछ मोहभंग हो। वे अक्सर प्रवास पर रहते हैं। कोलकात्ता महानगर उनके प्रवास का मुख्य केन्द्र है क्योकि बडा बेटा विनू आजकल कोलकात्ता मे ही बस गया है।

सात

कोलकाता महानगर भारत का एक बडा महानगर, जहा हर जाति, धर्म और सम्प्रदाय के लोग निवास करते हैं। जिस महानगर मे कोई व्यक्ति शायद ही रात को भूखा सोता है। जिसको कहीं कोई रोजगार न मिले, वह भागता है कोलकाता की तरफ और कोलकाता शहर भी समेट लेता है उसे अपनी बाहो मे परम आत्मीयता से। वह महानगर, जहा एक तरफ बगाली आभिजात्य सस्कृति है तो राजस्थान के लोग भी रच–बस गये हैं जो अपने ठेठ मारवाडी शब्द न बोलकर बगला मिश्रित भाषा मे बंगालियो से बात करते हैं। जहां के लोग इस बात को गर्व के साथ कहते है आमार बगाल सोनार देश। कोलकाता जो जन्मभूमि एव कर्मभूमि है महाकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर की, बंकिमचन्द्र चटर्जी की, शरद बाबू की, जिन्होने अपने बंगला साहित्य से राष्ट्र को एक नया आयाम दिया है। जहाँ के स्वामी विवेकानद ने पश्चिमी देशों मे भारतीय सभ्यता एवं स्स्कृति का प्रसार किया था। रामकृष्ण परमहस और माँ शारदा ने आध्यात्मिक चेतना प्रवाहित की। यह वही स्थान है, जहां सुभाषचन्द्र बोस ने, खुदीराम बोस ने जन्म लिया था। 1857 की क्रान्ति का पहला बिगुल कोलकाता की बैरकपुर छावनी से ही उद्घोषित हुआ था। जहां आशापूर्णादेवी, महाश्वेतादेवी जैसी महान् लेखिकाओ ने जन्म लेकर नारी की समस्याओ का ध्यान रखते हुए उपन्यास सृजन किया। जहा के कण-कण मे कला है, संगीत है। कोलकाता वह महानगर है जहां एक तरफ गगनचुम्बी इमारते हैं, तो दूसरी ओर सडक पर झोपडपट्टी बना कर लाखो लोग सोते हैं। इतना व्यस्त और हलचल से परिपूर्ण शहर, जहां की भीड का हिस्सा बन गया है इस शहर का हर आदमी। इसी कोलकाता महानगर मे सुमि और विनू को

कई बार आना पड़ा था। यहां पर स्थित रेलवे क्वार्टर में उनके बचपन का अहम हिस्सा बीता था क्योंकि उस शहर से उनका खून का रिश्ता था। कहते हैं, माँ मरे मौसी जिये, तो उस शहर मे विनू की मौसी का घर जो था। घर क्या, समझ लीजिए ममता से परिपूरित एक आश्रयस्थल। जो भी उस शहर मे नौकरी की तलाश मे आता, सबसे पहले उसी घर में आश्रय लेता। उस घर के मुखिया अजय के बाबूजी छोटी से छोटी खुशी को सर्वाधिक महत्त्व देते थे। छोटे-बड़े सभी सदस्यो के लिये, यहां तक कि दूरस्थ संबंधियो के लिये भी, वे अपने स्नेह का अक्षय कोष निरन्तर दोनो हाथो से लुटाया करते थे।

किसी को नौकरी दिलानी हो, नये सिरे से बसाना हो, महानगर मे अगर किसी को ठहरने का ठौर-ठिकाना न मिले तो उनका क्वार्टर सबके लिये ऐसे आश्रयस्थल के समान था जहां सब लोग एक ही सघन वृक्ष की छाया तले विश्राम लेते थे।

कितने खुश होते थे वे सबको इकट्ठे देखकर। उनका स्वय का परिवार तो केवल तीन बेटो तक ही सीमित था। और विनू को उन्होने बड़ा बेटा समझ कर ही स्नेह दिया था। वे जब भी जाते मौसाजी कहते– चलो तुम्हें पिक्चर की शूटिंग दिखा कर लाये, कभी कहते, फलाने होटल मे मसाला दौसा खिलायें।

जब वे दोनो सोते तो रात मे उठकर उन्हे कम्बल और चादरे ओढ़ाते। उनके लिये घर मे रोज नये-नये पकवान बनाते। ऐसे स्नेह–परिपूरित परिवेश मे रहने वाले सुमि और विनू के लिये वे दोनो माता-पिता से किसी प्रकार भी कम नही थे।

सुमि को अभी भी याद है कि जब एक बार अजय के बाबूजी के पैर में फ्रैक्चर हो गया था तो वे रेलवे हास्पिटल मे महीनो तक रहे थे। सुमि भगवान से प्रार्थना करती, हे भगवान तू इन्हे इतना दुख क्यो दे रहा है? जिन्होने कभी किसी का दिल नही दुखाया, एक चींटी की भी जो हत्या नही कर सकते, उनको ऐसी मर्मान्तक पीड़ा क्यों ?

और जब मौसाजी ठीक हुए तो कितने खुश थे वे सब। छड़ी लेकर जब चलने लगे तो कैसे हर्षोत्फुल्ल होकर उन्होने पूरी कॉलोनी मे मिठाई बांटी थी। पर शायद विधाता ने उनके जीवन मे इतना सुख देखना ही लिखा था। काल के क्रूर हाथो ने उन्हे सबसे अकस्मात् छीन लिया। बड़ा ही कठिन था

इस दुख को सहन करना। लगा, जैसे किसी ने सबको स्नेह विगलित शीतल आचल की छाया से दूर कर जलते रेगिस्तान की तपिश भरी बालू मे फेक दिया है। अभी एक दुख से वह उबर नहीं पाये थे कि मौसी भी उसी डगर पर चल पड़ी जहा से कोई वापिस नहीं आता। सुमि के तीनो भाई अकेले रह गये। मातृ-पितृ विहीन तीनो भाई। जिनकी वही एकमात्र बहन थी जो उनसे इतने दूरस्थ प्रात मे बैठी थी, कि वह मृत्यु पर उनके दो बूंद आंसू भी पोछने नही जा सकी थी। सुमि ने कभी उन तीनो भाइयो को पराया नहीं समझा था जब भी कोई पूछता सुमि तुम्हारे कितने भाई हैं। वह हथेली की पांचों अंगुलिया सामने कर दूसरे हाथ की तीन अंगुली उनमे और जोड देती और बडे गर्व से कहती–

मेरे आठ भैया हैं। जब मैं ससुराल जाऊगी तो सब बारी-बारी से मुझे लेने आएंगे।

सुमि का बचपन उनके साथ ही बीता था। उसके दोनो सगे भाई और दो मौसेरे बडे भाई, पांचो की एक मण्डली थी। सुमि के हृदय मे बचपन की स्मृतियां अभी भी संजोई हुई हैं जब चारो बडे भइया और उनके साथ खेलती सुमि। उम्र में सबसे छोटी होने पर भी उनके बीच आयु का कोई व्यवधान नही था। दिन–भर मैदान मे क्रिकेट, गुल्ली, डण्डा, टिन–टप्पा खेलना। एक–दूसरे को पिदना और पिदाना। दशहरे की छुटि्टयो मे रात होने पर रामलीला में जाकर नककटइया और लका दहन देखना। मेले मे से मुखौटे और धनुष–बाण लाकर उन चारो भाइयों का राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न बनना और सुमि का सीता माता का रूप धारण करना। दिन–भर घर मे ऊधम मचाये रखना। उन चारो भाइयो मे से मुन्नू भैया सबसे बडे थे, पर सबसे बडे होने के बावजूद भी गम्भीरता उन्हे छू नहीं गई थी। वे हर समय हँसी-मजाक करते रहते। जब वे मिलकर लुकाछिपी का खेल खेलते और मुन्नू भैया उन्हे ढूढ नही पाते तो बार-बार एक ही पंक्ति दुहराते–कोई हॅस दे भई, कोई हँस दे। उनकी आवाज सुनकर सारे खिलखिला कर हॅस पडते और इस तरह वे पकडे जाते। जब वे पाचों एक साथ खाना खाने बैठते तो भी वही होड और मस्ती का दौर रहता। मुन्नू भैया घोषणा करते- जो थाली से सबसे पहले उठेगा वह देवता कहलायेगा। और जो सबसे बाद मे उठेगा वह पेटू राक्षस कहलायेगा। किस तरह मुन्नू भैया सबसे पहले खाये–अधखाये ही उठ जाते और हमेशा देवता की श्रेणी मे आते, यह चोरी हम कभी पकड नही पाये।

उस दिन जब पोस्टमैन दरवाजे की झिरी से कोना फटा पोस्टकार्ड डालकर चला गया तो सुमि का हृदय शंकित हो उठा था। यह इस बात का सकेत था कि अवश्य ही हमारा कोई प्रिय स्नेही हमसे सदा-सदा के लिए दूर चला गया है। हृदय के आवेग को शान्त करके किसी तरह बडी मुश्किल से चार पक्तियां पढी।

मुन्नू भइया नही रहे। आज दस दिन हो गये।

ओह यह क्या हो गया। कभी पल–भर के लिये भी ऐसा सोचा न था। कुछ देर पहले ही तो सुमि शादी के घर से आई थी जहां एक जीवन का दूसरे जीवन से गठबंधन जुडा था, पर यहां तो सुमि के भइया सारे बन्धन तोडकर सदा के लिए उस पथ पर चले गये थे, जहां से वापिस कोई नहीं आता।

सुमि को विश्वास नही होता, बार-बार आंखो मे आसू आते। उन्हे पोछती, लाइनो पर दृष्टिं डालती, नही ऐसा नही हो सकता। लगता है कुछ लिखने में भूल हो गई। ऐसे जवान जहीन भइया को क्या मौत इस तरह चुपचाप आकर शिकजे मे कस लेगी, पर यह सच था, बाद में मिले टेलीग्राम ने इस सत्य की पुष्टि कर दी थी।

अभी दीपावली का त्योहार बीते बहुत दिन नही हुए हैं। एक मास पूर्व ही तो सुमि भइया को जीता-जागता छोडकर आई थी। भाईदूज का टीका इन्ही हाथो ने उनके चौडे मस्तक पर लगाया था। कितने खुश थे भइया उस रोज। पुलकित होकर बोले थे- आज बहुत वर्षों बाद चारों बहने एक साथ इकट्ठी हैं, कितना अच्छा लग रहा है।

और यह एक महज संयोग ही था। बचपन मे एक साथ खाई-खेली बहने शायद ही कभी तीज-त्योहारो पर एक स्थान पर इकट्ठी हो पाती थी। कितना दीप्तिमान था भइया का वह रोली लगा चौडा ललाट और मुस्कराती सूरत, जो आंखो से ओझल हो गई है पर जिसकी स्मृति सुमि के प्राण मे अभी भी बसी हुई है।

इस बार दीपावली की छुट्टिया मायके बिता कर जब सुमि ससुराल वापिस आ रही थी तो कितना रोका था मुन्नु भैया ने। उसे हल्का-सा बुखार हो आया था। ढेर–सारी सलाह दे डाली थी मुन्नु भइया ने। ट्रेन मे आराम करना, चाय पीती रहना, पावरोटी खाना, दवा साथ में रखी है अथवा नहीं, सर्दी का एहसास हो तो एक गरम चादर भी साथ रख लेना। ट्रेन चलने तक

वे छोटी-छोटी हिदायतें देते रहे थे।

वह कोना फटा पोस्टकार्ड सुमि को अतीत के आंगन मे खीच लाया है। हर समय बालो में कंघी करते, निर्विकार भाव से मुस्कराते मुन्नू भैया का ध्यान पढाई-लिखाई की ओर कम और रेडियो, टी.वी. की ओर ज्यादा था। इसलिये भइया ने यही क्षेत्र चुन लिया था। पूरी रेलवे कॉलोनी मे अपने व्यवहार तथा हुनर के कारण मुन्नू भइया सबको प्रिय थे। कोई बुलाने आता, चाहे दिन हो या रात, वे समय-कुसमय कुछ नहीं देखते। सब काम छोडकर चले जाते।

मुन्नू भइया ने सुमि को कभी मौसेरी बहन नहीं समझा था। समझते भी कैसे, उनके आगे बाबूजी सदा सुमि को अपनी बेटी की तरह लाड-दुलार करते आये थे। सुमि को पाकर उन्होने कभी बेटी का अभाव महसूस नही किया था। कितना उत्साह था उन्हें मुन्नू भइया के ब्याह का। रोज डाक से दर्जनों फोटो आते, उन्हें बैठकर छांटा जाता। कभी पास, कभी दूर, लडकी देखने का सिलसिला चलता पर भइया कोई–न–कोई कोर कसर निकाल ही देते। आखिर मौसी गुस्सा होकर कहती-

कैसी लडकी चाहिए तुझे ? कोई हूर की परी तो मिलने से रही।

मुन्नू भइया उसी चिर-परिचित मुस्कराहट से कहते-

ऐसी लडकी जो इतनी कोमल हो कि चले तो मुझे उसके रास्ते में आये कंकडो को बीनना पडे कि कहीं उसके पैरो मे न गड जाये।

सिर पर भंवरा बैठते ही वे आश्वस्त होकर कहते–

"अब बहुत जल्दी मेरी मनचाही दुल्हन मिल जायेगी।" पर मुन्नू भइया के माता-पिता उनके ब्याह की अधूरी साध लिये ही इस दुनिया से चले गये। भइया घर संभालते। अपने हाथो से खाना बनाकर परोस कर दोनो भाइयो को खिलाते। अम्माँ-बाबूजी के अभाव की पूर्ति में लगे रहते। पर सबके मन मे एक ही आकांक्षा थी कि किसी तरह भइया का घर बस जाये, ऐसी दुल्हन घर में आये जो तीनों भाइयो को जोडकर रख सके और ईश्वरीय अनुकम्पा से वह दिन आ ही गया था।

सुमि के अम्माँ-बाबूजी ने ही बडे चाव से मुन्नू भइया की शादी रचाई थी। गंगा के किनारे स्थित उसी घर में, जहां उन सबका बचपन बीता था। जिसकी बालुका राशि मे उन्होने अपने घरौंदे बनाये थे उसी घर मे मुन्नू भइया की शादी के गीत और ढोलक पर थाप सुनाई पडने लगी थी। कोलकाता

महानगर मे रहने वाले मुन्नू भइया के इष्ट मित्र सव उस विवाह में वडे उत्साह से शरीक हुए थे।

सुमि ने आरती उतारकर दूल्हे वने भइया को विदा किया था और जव भाभी को लेकर भइया कार से उतरे तो सुमि ने जमकर नेग लिया था। भइया मुस्कराते रहे थे और जेवें खाली करते थे। फिर वो शुभ दिन भी आया था जव मुन्नू भइया के आंगन मे दो नन्हे सुन्दर पुष्प खिल उठे थे जिन्होने अपने सौरभ से भइया के जीवन में एक नई सुगन्ध विखेर दी थी और भइया ने वडे आग्रह से सुमि से छठी पूजा करवाई थी।

याद आती है वह वात भी जव भाभी ने हँसी-हँसी मे एक बार कहा था–

एक वेटी हो जाए तो कितना अच्छा हो, कम से कम भाइयो को राखी यांधने के लिए एक वहन तो चाहिए ही।

पर मुन्नू भइया झट से वात काटकर वीच में ही बोल पडे थे-

क्या जरूरत है ? क्या हमारे वहन हुई थी, पर इन वहनों को पाकर कभी हमने वहन की कमी अनुभव नहीं की। वैसे ही ये कभी क्यों महसूस करेगे और भाइयो के तो लडकियां हैं ही। वे ही राखी वांधेगी, वही करेगी टीका।

मुन्नू भइया इस संसार मे नहीं है। उनके जाने दो मास पश्चात् नन्ही गुडिया ने इस ससार मे अपनी आखे खोली हैं। क्या बीती होगी भाभी के हृदय पर। चार-पाच वर्ष ही तो हुए थे भइया के ब्याह को। इन थोडे–से वर्षों में ही भइया ने भाभी पर इतना सचित प्यार लुटाया था कि वर्षों साथ रहने के वाद भी लोग उससे वंचित रहते हैं।

उस दिन शनिवार था। माँ ने कोलकाता जाने के लिए भरे मन से भाभी को विदा किया था। स्टेशन पहुंचने के पूर्व ही भइया की तवीयत खराव हो गई थी। हास्पिटल मे अथक प्रयास और दौडधूप के वाद भी भइया को बचाया नहीं जा सका था। उस दिन अस्पताल आने के पहले हडबडी में भाभी ने अपनी माँग मे जो सिदूर भरा था वही उनके लिए राख बन गया था। किसे पता था कि वह उस दिन अन्तिम बार मॉग भर रही हैं फिर जीवनपर्यन्त इस माँग को रिक्त ही रहना पडेगा। सब ठगे–से रह गये थे। भइया की मृत्यु ने सबको झकझोर दिया था। उन छोटे भाइयो को तो और भी अधिक जिन्होने अम्मा-बाबूजी के न रहने पर सुख-दुख, आंधी-तूफान, मुश्किलो-परेशानियो

को एक साथ मिल कर झेला था। उनका दीवार और दरवाजो से सिर टकरा-टकराकर रोना इस बात को प्रकट कर रहा है कि वे कितने अकेले हो गये है। सबसे छोटे उस गुमसुम-से रहने वाले भइया ने मुन्नू भइया का अतिम सस्कार वडी निष्ठा और श्रद्धा से किया है क्योकि उसे मालूम है कि भइया हर काम बडी श्रद्धा से करते थे।

इसे सयोग कहा जाए अथवा दुर्योग कि गंगा किनारे स्थित जिस आवास से पांच वर्ष पूर्व मुन्नू भइया सिर पर सेहरा बाधकर दूल्हे के रूप मे शहनाइयों की गुजार के बीच कार में बैठकर निकले थे, उसी घर से आज भइया की अतिम यात्रा निकली थी। उस घर की दीवारे, जो आज तक हँसी और कहकहे सुनती आई थी, उन्हे पहली बार मर्मभेदी सत्य से साक्षात्कार करना पड़ रहा है। इसे विधि की विडम्बना के सिवा और क्या कहा जा सकता है।

आठ

गगा किनारे स्थित उस घर में बहुत-कुछ बदलाव आ गया है। अब छोटी चप्पलो का स्थान बडे-वडे जूतो ने ले लिया है। विनू और विजू दोनो का विवाह होने से ये अपनी गृहस्थी की सार-सभाल मे लग गये हैं। सुमि और शुचि अपने घर मे रच-बस गई है। सवेरा होते ही दोनो बेटो को अपने काम पर जाने की जल्दी रहती है। केवल एक बाबूजी हैं जिनकी दिनचर्या में कोई परिवर्तन नहीं आया। पर वे निवृत्ति का जीवन बिता रहे है। रिटायर्ड जीवन व्यतीत करने वाले बाबूजी घर के अन्दर कभी नहीं बैठे। जब अफसरी करते थे तब भी कभी कमरे के अन्दर बैठे नही देखा। वे हमेशा बरामदे मे ही बैठे रहते। उनकी कुर्सी व चोकी हमेशा वरामदे मे पडी रहती। प्रात से लेकर सध्या तक, यहा तक कि रात्रि को भी अपनी दिनचर्या के सारे काम बरामदे में ही निपटाते। वे कुर्सी के हत्थे पर अपने कपडे रखते। खादी पहनना उनकी आदत मे शामिल था। उसी कुर्सी पर बैठकर रामायण का पाठ करते। हालाकि बाबूजी मन्दिर कभी नही गये, पर उन्होने माँ को मन्दिर जाने से नही टोका था। वे अनास्थावादी थे, पर पुरानी परम्पराओ को तोडकर नये मूल्यो के रचाव में विश्वास करते थे। बाबूजी उसी कुर्सी पर बैठकर इतिहास के वृहद् ग्रन्थो का अध्ययन करते उनकी समालोचना करते, नवीन ऐतिहासिक

धारणाओं को लेखनीवद्ध करते। जव भोजन का समय होता, उसी के सामने स्टूल लगाकर भोजन कर लेते। जव नींद का झोंका आता तो उसी कुर्सी पर आखे यद करके नीद लेने लगते। केवल रात्रि को ही वे चौकी पर सोया करते। वे स्वयं न तो दिन को शयन करते और न किसी और को सोने देते। अगर किसी को दिन के समय विस्तर मे सोता हुआ देखते तो कहते–

गधा, उल्लू, वेवकूफ क्यो दिन मे सो रहा है ? दिन मे सोने से उम्र घटती है।

वे प्रातः जल्दी उठने के पीछे भी यही तर्क देते (जो सवेरे जल्दी उठता है, उसका कोई काम अधूरा नहीं रहता, सफलता उसके चरण चूमती है)

लेकिन सवसे वडी समस्या उस घर मे आने वाले आगन्तुकों के लिए थी। वावूजी ठहरे एम्पलायमेन्ट एक्सचेज के रिटायर्ड अधिकारी। इसलिये जो भी घर मे प्रवेश करता, उसे पहले वावूजी द्वारा पूछे गये प्रश्नो का उत्तर देना ही पडता जैसे वे प्रश्न यक्ष प्रश्न थे। या वे प्रश्न लक्ष्मण रेखा पार करने की चुनौती थे। आखिर उन्होने जीवन–भर रोजगार दफ्तर मे लोगो के इन्टरव्यू लिये थे, इसलिए लगातार प्रश्न पूछने का यह सिलसिला उनकी रग-रग मे समा चुका था और उनकी आदत मे शामिल हो गया था। जो भी घर आता उसे इस प्रश्नोत्तरी के वीच से गुजरना ही पडता–

आपका शुभ नाम ?

वे सब को आप कहते थे। एक छोटे बच्चे को भी आप सम्बोधन करना उनकी आदत मे शुमार था। आगे फिर पूछते-

आपका घर कहा है ?

आपके माता-पिता का शुभ नाम ?

आपके परिवार मे कौन-कौन हैं ?

आपके बेटे-बेटी का सम्बन्ध कहा-कहा हुआ है ?

आपने कितनी शिक्षा प्राप्त की है ?

किस विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की है ?

आप क्या काम करते हैं ?

उत्तर देने वाले कभी तो निरुत्तर हो उठते, कभी झल्लाहट से कोई कह भी देते– क्या आपको हमारे घर मे शादी करनी है, या हमसे बेटे-बेटी का सम्बन्ध करना है? लेकिन वे उसी सहजता से हाथ जोडकर कहते– क्षमा करना भाई, मैं तो ऐसे ही पूछ रहा था। कभी-कभी बेटे भी कह उठते–

बाबूजी, आप हमारे मित्रो से इन्टरव्यू मत लिया कीजिये।

तब वे हाथ जोडकर बडी विनम्रता से कहते "अच्छा बेटेजी, अब कुछ नही पूछूंगा।"

दो-चार दिन गाल पर हाथ धरे कुर्सी पर कुहनी टिकाये चुपचाप बैठे रहते। फिर वही आने-जाने वालो से संवादो का अटूट सिलसिला आरम्भ हो जाता।

केवल यही नही, हर कार्य को योजनाबद्ध तरीके से करना उनकी आदत थी। उनका वर्ष–भर का कार्यक्रम पहले से ही तय हो जाया करता था। वे किसी स्थान पर जाते, वहा पहले से ही सूचना भेज देते कि मैं अमुक तारीख को आ रहा हूं, इतने दिन आपके यहां प्रवास करूंगा और अमुक तारीख को आपके यहां से वापस चल दूंगा। वे यह भी चाहते थे कि उनकी बेटी और बेटे भी उनकी तरह योजनाबद्ध तरीके से ही कार्य करे।

सुमि को अच्छी तरह याद है कि जब कभी वह और उसके पतिदेव सुकान्त गर्मी की छुट्टिया बिताने बाबूजी के पास जाते तो वे रिक्शे से उतरते ही पूछ बैठते-

कितने दिन का प्रोग्राम है ?

कब तक रुकिएगा ?

छुट्टिया कब तक हैं ?

रिजर्वेशन पहले ही करवा लीजिएगा।

रेलवे की समय सारणी लेकर उसी समय बैठ जाते और गाड़ियो के समय के बारे मे बताने लगते। उनकी यह बात सुनकर रसोईघर से निकलते-निकलते मॉ बडबडाने लगती– "कैसे पिता हैं आप। अपनी औलाद को भी टिकने नहीं देते। अभी आकर सामान उतारा है। इतनी दूर की यात्रा करके थके-हारे आये हैं, आते ही गोली–सी दाग दी, कब तक रहोगे। अरे यह भी कोई तरीका है। अपने बेटे-बेटी ही नही सुहावे तो गैर क्या भले लगेगे?" तब बाबूजी सहजता से हाथ जोडकर कहते– "अच्छा बाबा अब नही कहूगा। जाइए, हाथ मुंह धो लीजिए, कुछ खा-पी लीजिए विश्राम करिये।" हम सब उनकी बातो को हल्के-फुल्के रूप मे ही लेते क्योकि हम जानते थे कि यह सब प्रश्न पूछना उनकी आदत मे शामिल है।

नौ

यह कथन शाश्वत सत्य है कि इतिहास अपने–आप को दोहराता है। शायद यह बात बिल्कुल सच ही है और किसी के लिए भले ही यह सत्य न हो पर गगा किनारे स्थित विनू के बाबूजी के घर में जो घटना घटित हुई, उसे इतिहास की पुनरावृत्ति ही कहना ही पर्याप्त होगा।

बीस वर्ष पूर्व बाबूजी जब परिमल का विवाह करने बारात लेकर गाव की बेटी ब्याहने के लिये गये, उस समय न तो उन्होंने निमंत्रण पत्र छपवाने की आवश्यकता समझी और न किसी प्रकार का तामझाम करने की। न कोई शहनाई की धुन, न बाजा। पांच आदमियो को लेकर बडे सादे ढग से वे बेटे की शादी करने बिहार के उस छोटे–से गाव मे चले गये थे, जहा से वे गौरी–चिट्टी सुन्दर सी दुल्हन बेटे के लिए ब्याह कर लाये थे। मुह दिखाई की रस्म मे प्रीतिभोज का आयोजन कर सबको आमत्रित कर लिया था। यह सब बाबूजी की प्रकृति के अनुकूल ही था। वे आडम्बरवादी नही थे। यह घटना इस तथ्य को भी प्रकट करती है कि किस प्रकार उन्होने सहज तरीके से बिना किसी औपचारिकता का निर्वाह किये परिमल बेटे की गृहस्थी बसा दी थी। यह लोगो के लिए भले ही आश्चर्य की बात हो, पर उनके लिये यह स्वाभाविक स्थिति थी। लोगो ने यह विवाह सम्बन्ध करने पर उन्हे अक्खड और अव्यावहारिक तक कह डाला था, पर वे अपनी उसी धुन मे मस्त समस्त कार्यो को सम्पादित करते रहे थे।

उन्हें ससार का सही अनुभव था। उन्हें यह ज्ञात था कि परिमल का ध्यान पढाई-लिखाई की ओर कम और फोटोग्राफी की ओर ज्यादा है। किसी तरह बडे भइया बिजू के साथ दुकान मे कार्य करके वह अपनी जीवन नइया को पार लगा ही लेगा।

सुमि के मानस में परिमल के जन्म की वह घडी आज भी स्मृति पट मे जडी पडी है। उस समय घर मे जलाभाव था। माँ को कुए से पानी लाने मीलो तक घडा कमर पर रखकर जाना पडता था। तब दस घडे पानी लाकर वह सारे भाई-वहनो के लिए व्यवस्था करती थी। जिस समय परिमल माँ के गर्भ मे पल रहा था उस समय माँ के दिन के दो-चार घण्टे कुए से पानी लाने मे ही वीत जाया करते थे। अक्सर आस-पास की ओरते माँ को मना करती– अरे वहन अव तेरे दिन नजदीक हैं, इतना भार मत उठाया कर। कल को कुछ उल्टा-सीधा हो जायेगा तो लेने के देने पड जायेगे। माँ मुस्कराकर सिर नीचे कर इन वातो को तरजीह नहीं देती और आश्चर्य की वात तो यह रही कि माँ की जो मशक्कत लोगो की बातों का विषय रही, वही माँ के लिए वरदान बन गई। उनका कठोर परिश्रम उन्हे गर्भवती की पीडा से मुक्ति दिलाने मे समर्थ सिद्ध हुआ। माँ ने परिमल के जन्म के एक घण्टा पूर्व ही घड़े को अपनी कमर से उतार कर जमीन पर रखा था। एकाएक उनके पेट मे जोरदार दर्द की लहर उठी, पहले लोग अस्पताल जाने से कतराते थे, वह तो आज के वैज्ञानिक युग ने सुविधाभोगी बना दिया है और कुछ प्रदूषणपूर्ण वायुमडल में रहने के कारण गर्भकाल मे ही अनेक विकृतिया उत्पन्न हो जाती हैं। बिना अस्पताल का सहारा लिए माता और शिशु का जीवन खतरे मे पड जाता है।

पर माँ अपने–आप मे चेतन थी, उन्होने नानी को पूरी शक्ति लगाकर आवाज दी– ओ माँ जल्दी से दाई को बुला दो, मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। भगवान अब सहन नही होता, इस कष्ट से मुक्ति दो।

शायद ईश्वर ने माँ की वह पीडाभरी आवाज सुन ली थी, तभी दाई के आने से पहले ही परिमल का जन्म हो गया था। सारा घर वच्चे के प्रथम रुदन से गूज उठा था।

दोनो वडे भइया और सुमि विस्मित होकर कमरे की झिरी मे से झाक कर उस शिशु को देखना चाह रहे थे। कैसा होता है नवजात शिशु वड़ी ललक थी उसको देखने की। एकाएक उन्होने दरवाजे की झिरियो से झांककर देखा। गोलमटोल लाल-लाल गाल, छोटे-छोटे हाथ पैर वाला शिशु माँ के पास ही पडा था। वो पूरा उसे देख भी नहीं पाये थे कि दाई ने अन्दर प्रवेश कर उसे तौलिये मे लपेट लिया। शायद उसे इस वात का एहसास हो गया था कि कुछ लोग चोरी–छिपे उस बच्चे को देख रहे हैं। वे वहां से हट तो गये पर उस दिन वे तीनो जहां भी बैठे, जहां भी गये, जिससे भी मिले,

उनकी वातचीत का केन्द्रविन्दु वह गोल–मटोल नवजात शिशु ही रहा।

सीढियो पर वैठे-वैठे विनू भइया कहने लगे-कितना प्यारा लग रहा था वह वच्चा। विजू भइया वोले– और उसकी उंगलियां, हाथ और पैर कैसे कोमल-कोमल गद्देदार दूर से लग रहे थे। सुमि कहने लगी- काश एक वार उसको गोदी मे उठाकर देखते तो कितना मजा आता, क्यो भइया है ना! दोनो भाइयो ने स्वीकारोक्ति मे गर्दन हिला दी थी। दिन–भर की उनकी वातचीत का परिणाम यह रहा कि संध्या तक उस वच्चे का नामकरण कर दिया गया-'गुल्लू'।

पंडितजी तो जव नामकरण करेंगे तव करेगे, उसमें तो अभी वहुत देर लगेगी, पर उन भाई-वहनो ने अपनी सहज स्वाभाविक वुद्धि से उस वच्चे का जो नाम रख दिया था वही उसका घर मे पुकारने वाला नाम पड़ गया। सारे दिन घर मे गुल्लू-गुल्लू की ही ध्वनि गूंजती रहती। वह जैसे सबके लिए एक गुलगुला खिलौना बन गया।

गगा किनारे स्थित उस घर मे गुल्लू के जन्म के वाद जैसे एक नया चमत्कार हो गया था। उस घर के सारे लोग, चाहे वे भाई-वहिन हों या अम्मा-वावूजी सव उसके आगे-पीछे दौडते रहते थे। उसकी जरा सी भी रोने की आवाज उन्हे व्याकुल कर देती थी, सारे सदस्य आतुर होकर पूछते–

क्या हुआ गुल्लू को ? क्यो रो रहा है ? कही पेट में दर्द तो नही है ? भूखा तो नही है ?

सब वारी-वारी से उसे गोद मे लेकर खिलाने लगते। उनके लिये जैसे वह कौतुकपूर्ण खिलौना था। जिसकी सावली सूरत सबके मन मोहने के लिए पर्याप्त थी। सबसे वडा आश्चर्य तो यह रहा कि जिस समय गुल्लू को गोद मे लेकर उसकी माँ ने सत्यनारायणजी की कथा करवाई उस समय वह बिना रोये-चीखे चिल्लाये–चुपचाप पडा रहा। ऐसा लगता था जैसे वह भी कथा सुन रहा है। कथा के बाद पडित के हाथ से बधा कलावा और गुल्लू के माथे पर लगा टीका उसे सबके आकर्षण का केन्द्र बना रहे थे। सुमि के मानस पटल मे गुल्लू की वह प्यारी छवि आज भी जीवित है क्योकि वह गुल्लू के लिए केवल वडी बहन ही नहीं, अपितु उस माँ के समान थी जो उसे अपनी गोद मे भींचकर जबरदस्ती दूध पिलाती थी।

सत्यनारायणजी की कथा की परम्परा उत्तरप्रदेश के सभी अचलो की एक कुशल पुरातन परम्परा रही है। जब भी घर मे कोई भी शुभ कार्य,

चाहे बेटे का विवाह हो या बेटी का या बच्चे का जन्म हो अथवा गृह प्रवेश हो, सत्यनारायणजी की कथा कराये बगैर हर कार्य अपूर्ण समझा जाता था।

इसलिए परम्परावादी बाबूजी ने इस कार्य को भी निष्ठापूर्वक सम्पादित किया था।

ससार मे सब कार्य चलते रहते हैं तथा समय का चक्र भी अनवरत गति से चलता रहता है। इसलिए गुल्लू भी जब बडा होकर स्कूल जाने लगा तो सब उसे परिमल के नाम से सबोधित करने लगे क्योकि माँ ने एडमिशन के समय उसका यही नाम लिखवाया था। तब परिमल अपने गुल्लू नाम से चिढने लगा था। उसे लगता था जैसे वह बडा होता जा रहा है, पर ये लोग अभी भी उसे बच्चा समझते हैं। पढने-लिखने मे परिमल का रचमात्र भी ध्यान नहीं था। वह तो जहां भी कोई नया दृश्य देखता,उसकी तस्वीर बनाने लगता। हर समय उसके हाथो मे ड्राइग की कापी और पेंसिल रहती। कभी वह भिखारी का चित्र बनाता, कभी पनघट पर पानी भरती स्त्रियो का, स्कूल मे जब जाता तो बोर्ड पर मास्टरजी का चित्र बनाता। कभी लडकियो का चित्र बनाता जिसमें एक लडकी दूसरी लडकी की चोटी खीचती दिखाई पडती। इसी बात को लेकर एक बार परिमल को भयकर रूप से मार खानी पडी थी जब उसने कक्षा का वह चित्र बनाया था जिसमे मास्टरजी छडी से छात्रो को मार रहे हैं और सारी कक्षा के छात्र मुर्गा बने हुए हैं। उस दिन परिमल को इतनी मार पडी थी कि वह सारी रात कराहता रहा। और माँ उसके पास बैठी थी, उसे सहलाती रही पर तब भी परिमल का ड्राइग के प्रति झुकाव कम नहीं हुआ था।

माँ ने परिमल को हर प्रकार से समझाया कि वह कला-वला का चक्कर छोड दे और अपने खाने–कमाने योग्य हो जाए, जबकि परिमल की माँ स्वयं कलाप्रिय थी, कविताये लिखने का शौक उन्हे बचपन से ही था, पर जब बेटे के भविष्य के बारे मे सोचती तो आशंकित हो उठती थी, वे हर समय परिमल को एक ही बात समझाती–

किसी तरह मैट्रिक तो पास कर ले, कुछ तो काम लायक हो जायेगा, दिन भर आडी-तिरछी रेखाये खीचता रहता है, ऐसा तू कौन-सा महान् कलाकार बन जायेगा, और कभी कला-वला के चक्कर मे किसी की रोजी-रोटी चली है, क्या जो तेरी चल जायेगी? अरे कुछ पढ-लिख ले तो जिन्दगी बन जायेगी।

पर पढने मे परिमल का रुझान न के बराबर था, सो वह मैट्रिक भी बडी मुश्किल से उत्तीर्ण कर सका। वह तो अच्छा रहा कि बडे भइया ने अपना खुद का स्टूडियो खोल लिया तो उसी मे परिमल का हिसाब बैठ गया और उसने पूरी कर्तव्यनिष्ठा से स्टूडियो का काम संभाल लिया।

प्रात.काल घर मे कोई उठे न उठे, वह भोर–सवेरे ही घर से निकल पडता। स्टूडियो को अपने हाथो से साफ करता, धूपबत्ती कर ईश्वर को स्मरण करता और स्टूडियो खोल कर बैठ जाता। रात्रि को जब सब दुकाने बन्द हो जातीं तो वह अन्त मे स्टूडियो बन्द करता और देर रात गये घर आता। वह अपने खाने-पीने की सुध-बुध तक खो बैठता था। कभी दोपहर मे घर खाना खाने आता, कभी खाना स्टूडियो पहुचा दिया जाता। बडे भइया उसके ऊपर स्टूडियो का भार छोडकर चिन्तारहित थे।

परिमल बहुत ही आस्थावादी एव आस्तिक था। शहर मे कौनसा मन्दिर कहां पर है, वह चमत्कारी क्यों है, इन सबका ज्ञान उसे भली प्रकार था। घर के लोगो से बाते करने का समय उसके पास कहां था! वह तो रात्रि को, जिस समय सब लोग नीद के हिडोले मे झूलते, वह द्वार खटखटाता। मॉ की आकुल आंखे उसकी प्रतीक्षा में नीद नही ले पाती, उनके कान उसी चिर-परिचित आहट को सुनने मे लगे रहते और एक ही आवाज मे माँ द्वार खोल देती, कुछ दिनो बाद नवोढा पत्नी की प्रतीक्षा भी इसमे सम्मिलित हो गई, पर उसे इन सब बातो से अनुरक्ति कहां रही। न रुपये-पैसे का मोह उसे बाध सका और न रूपसी पत्नी का प्रेमपाश उसके पैरो मे बेडियां डालकर घर की दीवारो मे आबद्ध कर सका।

परिमल का बाहरी संसार का घेरा विशालतम होता चला गया और वह उसमे रमता गया। किसी को हास्पिटल ले जाना हो तो वह पहले तैयार रहता, किसी को ब्लड बैक से ब्लड नही मिल रहा हो तो वह उस समय अपना रक्तदान करने के लिए समर्पित भाव से प्रस्तुत रहता।

अतिम स्थल एक ऐसा स्थान है जहां जाने से लोग कतराते हैं लेकिन सामाजिक रीति-रिवाजो का पालन करने के लिए वहा जाना ही पडता है क्योकि वहा जाने से मन मे वैराग्य उत्पन्न होता है। लगता है कि मनुष्य जीवन का यही आखिरी पडाव है और एक–न–एक दिन सबको यही पर आना पडेगा, परन्तु परिमल का व्यक्तित्व इसका अपवाद था। अनन्त पथ पर जाने वाले हर यात्री को, चाहे वह किसी वर्ण-समुदाय का हो, कन्धा

देना और उसकी अन्तिम यात्रा मे शामिल होना उसकी नियति बन चुकी थी। जो लोग अन्तिम यात्रा का फोटो खिंचवाना चाहते, वो भोर सवेरे ही घर से उठाकर ले जाते। प्रात.काल जब माँ को वह बिस्तर पर दिखाई नहीं पड़ता और वापिस लौटकर स्नान करता तो माँ बिना बताये ही सब-कुछ जान जाती, अक्सर माँ मना करती।

अरे परम इन सब कामो मे आगे मत रहा कर। तू कोई बहुत बूढ़ा-बडेरा हो गया है क्या ? जो किसी के बुलाने पर सब काम छोड कर चल देता है। देख, कही शमशानिया वैराग न हो जाये, कोई छूत की बीमारी तुझे न लग जाये, मुझे तो डर लगता है, पर तू तो मानता ही नही है।

परिमल माँ की बातो को सुना-अनसुना कर देता और सात्वना देते हुए कहता- कुछ नही होगा माँ, तुम बेकार चिन्ता करती हो, सकटमोचन भगवान मेरी रक्षा करेगे।

और वास्तव मे संकटमोचन का यह भव्य मन्दिर केवल परिमल ही नहीं, अपितु वाराणसी के जन-जन की आस्था का केन्द्रबिन्दु था। जहां दर्शन करके उनके व्याकुल हृदय को असीम शान्ति का अनुभव होता था। लंका एवं दुर्गाजी के बीच के मार्ग मे स्थित उस मन्दिर मे भोर-सवेरे से ही शख -घडियाल बजने लगते और हनुमानजी की स्तुति आरभ हो जाती-

"शान्तम् शाश्वतम् प्रमेय अनघम् निर्वाण शान्तिप्रदम"

समवेत स्वरो मे आरंभ यह स्तुति हनुमान चालीसा और हनुमानजी की आरती में परिवर्तित हो जाती। मगलवार और शनिवार को तो मदिर प्रांगण में इतनी अधिक भीड उमड पडती कि पैर रखने के लिए तिल-भर भी जगह बाकी नही रहती। विश्वविद्यालय के निकटतम स्थित होने के कारण परीक्षा के समय युवक-युवतियो का सैलाब-सा उमड पडता। सब इस तरह उस मन्दिर मे दर्शन हेतु खिंचे चले आते, मानो कोई अज्ञात शक्ति उन्हे अपनी ओर खींच रही है। परिसर मे लगे वृक्षो पर वन्दरिया अपने बच्चो को चिपकाये बैठी रहती और उन्हे पेट से चिपकाये हुए ही एक डाली से दूसरी डाली पर कूद पड़ती। बडे कौतुक का विषय था यह, खासकर बालक-बालिकाओ के लिए। हनुमानजी के गण वानरो की सेना दर्शनार्थियो पर इस प्रकार से दृष्टिपात करती कि उन्हे अपना प्रसाद छिपा कर ले जाना पडता। कुछ लोगो की तो दिनचर्या का यह आवश्यक अंग बन गया था कि वे बिना सकटमोचन का दर्शन किये अन्न जल भी ग्रहण नही करते थे। उन्हीं में से एक परिमल की

मॉ भी थी, जो हर मंगलवार और शनिवार को नियमित दर्शन करती थी। परिमल को ये संस्कार, ये आस्थाए मा की कोख से ही प्राप्त हुई थी जो उसके रक्त मे घुलमिल गई थी और ईश्वर के प्रति इस आस्था ने सदैव उसका साथ दिया था। अगर ऐसा न होता तो शायद वह रात्रि उसके तथा उसके इष्ट मित्रो के लिए भयानक कालरात्रि बन जाती।

दस

31 अक्टूबर, 1984 न जाने कैसा भूचाल अपने साथ लेकर आया था। भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी का अपने ही रक्षको की गोली का शिकार होना भारत के लोकतंत्र पर एक गहरा कलक था जिसे समय की स्याही भी न धो सकी। उनके शहीद होने का समाचार घोषित होते ही सम्पूर्ण देश हिसा की लपटो से धू-धू करके जल उठा। प्रत्येक शहर के गली-मौहल्ले 'मारो-मारो' 'जला दो', 'सब कुछ खाक कर दो' के कर्णभेदी नारो के साथ रक्तरजित होने लगे। लोग आतकित होकर दुकाने बन्द करने लगे। सभी शहरो में कर्फ्यू लागू कर दिया गया। लोग दुपहिया वाहन लेकर द्रुतगति से सडको पर दौडने लगे ताकि जल्दी से जल्दी अपने घर पहुंच जायें, क्योकि लोग वाहनो से पैट्रोल निकालकर दुकाने जलाने पर आमादा हो गये थे। इन सबके पीछे किसका हाथ था, किसकी साजिश थी, यह तो ईश्वर ही जाने, पर यह सत्य था कि अनगिनत स्त्री, पुरुष और बच्चे उस रात मौत के घाट उतारे जा चुके थे। परिमल ने स्थिति के खतरे एवं भयावहपन के मद्देनजर स्टूडियो मे ताला लगा दिया था, पर जैसे ही उसने घर जाने के लिए अपना वाहन निकाला तो देखा कि पास वाली दवाइयो की दुकान पर लोग पैट्रोल छिडककर आग लगाने की कोशिश मे थे। वह दवा की दुकान दिन-रात खुली रहती थी। उसका मालिक आपात स्थिति मे बिना पैसे लिए भी गरीबो को दवाए सप्लाई कर दिया करता था। बायां हाथ था। वह परिमल का। परिमल बिना अपने प्राणो की परवाह किए अपने साथियो को लेकर झटपट दुकान के अंदर घुस गया और जरा-सी देर मे ही सारी दवाइयाँ वहां से हटा दी। उसके बाद पाच मिनट के अंदर ही वह दुकान धू-धू करके जल उठी थी। केवल उसी की नहीं अपितु उस रात परिमल ने न जाने कितनों के जान-माल की रक्षा की थी। माँ सारी रात उसकी राह देखती रही थी। उसके घर की

छत से आग की लपटे साफ दिखाई पड रही थी। पत्नी इस बात से अच्छी तरह परिचित थी कि उसका पति आग की लपटो से घिरा लोगो की रक्षा मे संलग्न होगा। वह चाहे कितनी ही सौगन्ध दे, चाहे किसी को भी लेने उसे भेजे पर आज की रात वह घर वापिस नहीं लौटेगा इसलिए वह मन ही मन ईश्वर की स्तुति कर रही थी-

दीन दयाल विरद संभारी
हरहु नाथ मम संकट भारी

उसके व्याकुल मन को यही पक्तिया आश्वस्त कर रही थीं इसके अतिरिक्त उसे कोई दूसरा रास्ता नही दिखाई दे रहा था और जब प्रात. परिमल घर लौटा तो उषा की पहली किरण फूट चुकी थी। फटे कपड़े, जगह-जगह से जला हुआ हाथ, बदहवास और उनीदी आंखें पर चेहरे पर एक अपूर्व शान्ति का साम्राज्य। कुल मिलाकर वह एक मसीहा की तरह लग रहा था। माँ बार-बार उसे चिन्तित–सी देख रही थी। वह इन सबसे बेखबर अपने बिस्तर पर जाकर इस तरह नीद के आगोश मे समा गया, जैसे उसने कोई बहुत बडा ऋण आज उतार दिया हो।

मधुर मनोहर अतीव सुन्दर यह सर्व विद्या की राजधानी
बसी है गंगा के रम्य तट पर यह सर्व विद्या की राजधानी
यह मालवीयजी की देश भक्ति यह उनका साहस, यह उनकी शक्ति
प्रगट हुई है नवीन हो कर यह सर्व विद्या की राजधानी

और इस गीत के साथ गंगा की लहरे भी नृत्य कर रही थी।

बालिका शिक्षा की अपूर्व ज्योति जगाना चाहते थे महामनाजी। इसलिए सबसे पहले युनिवर्सिटी के परिसर मे प्रवेश करने पर महिला कॉलेज के ही दर्शन होते थे। वह केवल महिला महाविद्यालय ही नही, अपितु छात्रावास भी था जहां देश-विदेश से अध्ययन करने के लिए छात्राए आती थी। कालेज के प्रवेश द्वार पर खड़ी छात्राओ को देखकर छात्र समुदाय चुहलबाजी करने से नही चूकता- "सवेरे-सवेरे इन देवियों का मुखडा देखो तो कालेज मे पढाई जीरो और घर पर भूखे मरो।"

पर यह युवावस्था की शोखभरी बाते ही थी, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।

दिसबर मास के ठिठुरनभरे दिवसो मे कालेज मे अक्सर एन सी.सी परेड चलती रहती थी, शिविर भी इसी समय लगते थे। सध्या और सवेरे महाविद्यालय परिसर मे आदेशपूर्ण आवाज गूजने लगते– सावधान, विश्राम। आगे देख, पीछे मुड, सामने देखोगे, दाये बाये चल। एन.सी.सी यूनिफार्म पहने छात्राए परेड करती रहती और उनको परेड कराने वाली थी एक स्वस्थ और सुन्दर आकृति वाली नारी जो एन सी.सी आफिसर के यूनिफार्म मे पुरुषो से कम नही लगती थी। किसी भी छात्रा के जरा–सी शिथिलता बरतने पर जोरदार डांट सुननी पडती थी। लेकिन अगर किसी छात्रा को मैदान मे चक्कर आ जाय तो भी वही दौडकर सभालती थी। अनुशासन एवं कोमलता का मिश्रण सौम्या के व्यक्तित्व मे निहित था। छात्राएं उसे देखकर सोचती, काश हम भी इनकी तरह आफिसर बने, खाकी वर्दी पहने और तन कर चलें। उनकी रौबीली आवाज सुनते ही वे सब सावधान की मुद्रा मे खडी हो जाती थी। मातृविहीन सौम्या, जिसने कभी डाक्टर बनने का स्वप्न सजोया था, उसे तो वह पूरा न कर सकी, पर उसके मनोबल और लगन ने उसे एन सी सी. आफिसर अवश्य बना दिया था।

बाल्यावस्था मे ही माता के प्यार से वचित, पिता के स्नेह की छाया

ग्यारह

गगा नदी के तट पर स्थित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय भारत का एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय, जहा पर देश के कोने-कोने से जिज्ञासु उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये आते है। दस मील के परिसर मे फैली है यह विश्वविद्यालय। मुख्य द्वार पर लगी महामना मदनमोहन मालवीय की आदमकद मूर्ति विश्वविद्यालय मे प्रवेश करने वाले का ध्यान स्वत: ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। यह बात सर्वविदित है कि इस विश्वविद्यालय को महामनाजी ने सबसे चन्दा एकत्र करके बनवाया था। इसके लिये उन्होने अपने सारे मान-अपमान को तिलाजलि देकर नि:स्पृह भाव से सबके आगे झोली पसारी थी। जिनकी एक ही कामना थी कि ऐसे विश्वविद्यालय का निर्माण हो जो विश्व मे बेजोड हो। इसके लिए उन्हे जूतियो के प्रहार भी सहने पडे। स्वयं उन्होने सस्मरण मे लिखा है कि एक बार जब वे हैदराबाद के निजाम के पास विश्वविद्यालय के लिए चन्दा माँगने गये तो उन्होने क्रोध मे उनके ऊपर जूतिया उछाल दी। उन्होने उनके प्रहार को सभालते हुए बडी नम्रता से कहा– बस, बस बहुत हो गया अब इससे ही मेरा काम चल जायेगा। इस बात में कोई सदेह नही कि उन जूतियो मे हीरे-मोती जडे हुए थे जिसने उनके कार्य को सम्पादित करने में सहायता ही दी थी। क्रोधित होने पर भी अप्रत्यक्ष रूप मे निजाम ने उन्हे बहुत–कुछ दे दिया था और उनके स्वप्न को साकार रूप धारण करने मे इससे सहायता मिली थी।

सन् 1916 मे बसत पचमी के पावन पर्व पर महामनाजी ने इस विश्वविद्यालय की नीवं डाल दी थी। पीत परिधान मे सजी–संवरी सुन्दर छात्राओ के सुमधुर कण्ठो से समवेत स्वरो मे महाविद्यालय का प्रांगण गुजायमान हो रहा था।

मधुर मनोहर अतीव सुन्दर यह सर्व विद्या की राजधानी
बसी है गंगा के रम्य तट पर यह सर्व विद्या की राजधानी
यह मालवीयजी की देश भक्ति यह उनका साहस, यह उनकी शक्ति
प्रगट हुई है नवीन हो कर यह सर्व विद्या की राजधानी

और इस गीत के साथ गंगा की लहरे भी नृत्य कर रही थी।

बालिका शिक्षा की अपूर्व ज्योति जगाना चाहते थे महामनाजी। इसलिए सबसे पहले युनिवर्सिटी के परिसर मे प्रवेश करने पर महिला कॉलेज के ही दर्शन होते थे। यह केवल महिला महाविद्यालय ही नही, अपितु छात्रावास भी था जहां देश-विदेश से अध्ययन करने के लिए छात्राएं आती थी। कालेज के प्रवेश द्वार पर खडी छात्राओ को देखकर छात्र समुदाय चुहलबाजी करने से नही चूकता. "सवेरे-सवेरे इन देवियों का मुखडा देखो तो कालेज में पढाई जीरो और घर पर भूखे मरो।"

पर यह युवावस्था की शोखभरी बाते ही थी, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।

दिसबर मास के ठिठुरनभरे दिवसो मे कालेज में अक्सर एन सी सी परेड चलती रहती थी, शिविर भी इसी समय लगते थे। सध्या और सवेरे महाविद्यालय परिसर में आदेशपूर्ण आवाज गूजने लगते– सावधान, विश्राम। आगे देख, पीछे मुड, सामने देखोगे, दायें बाये चल। एन.सी.सी यूनिफार्म पहने छात्राए परेड करती रहती और उनको परेड कराने वाली थी एक स्वस्थ और सुन्दर आकृति वाली नारी जो एन.सी.सी. आफिसर के यूनिफार्म में पुरुषों से कम नही लगती थी। किसी भी छात्रा के जरा–सी शिथिलता बरतने पर जोरदार डाट सुननी पडती थी। लेकिन अगर किसी छात्रा को मैदान में चक्कर आ जाय तो भी वही दौडकर सभालती थी। अनुशासन एव कोमलता का मिश्रण सौम्या के व्यक्तित्व मे निहित था। छात्राएं उसे देखकर सोचती, काश हम भी इनकी तरह आफिसर बने, खाकी वर्दी पहने और तन कर चलें। उनकी रौबीली आवाज सुनते ही वे सब सावधान की मुद्रा में खडी हो जाती थी। मातृविहीन सौम्या, जिसने कभी डाक्टर बनने का स्वप्न सजोया था, उसे तो वह पूरा न कर सकी, पर उसके मनोबल और लगन ने उसे एन.सी.सी. आफिसर अवश्य बना दिया था।

बाल्यावस्था मे ही माता के प्यार से वंचित, पिता के स्नेह की छाया

मे पालित सौम्या के व्यक्तित्व मे लडकों जैसी निडरता थी। यूनिवर्सिटी के मार्ग पर स्थित बडे भइया की किताबो की दुकान मे सौम्या अक्सर स्टूल पर बैठी दिखाई देती। घर से दुकान तक दस चक्कर लगाने पर भी सौम्या के मुखमडल पर परेशानी या थकान का भाव नहीं दिखाई पडता था। स्कूल जाते समय रास्ते–भर पत्थर–दर–पत्थर मार कर पनचोटा खेलना, मुल्ला बाबा की पूजा करना, सहेलियो को रास्ते–भर बातो मे उलझाये रखना, जगल जलेबी, कच्ची अमिया के पेडो पर पत्थर मारकर उन्हे तोडना, फिर पुलिया पर बैठकर सबके बराबर हिस्से करना उसकी दिनचर्या मे शामिल था। इन सबके बीच भी वह पढने के लिये कैसे समय निकाल लेती थी, एक सुखद आश्चर्य का विषय था। जिस पेड पर पत्थर मारने से भी फलो की उपलब्धि नही होती वह उन पेडो पर बन्दर की तरह सरपट चढ जाया करती थी और ऊपर जाकर कच्ची अमियां एव अमरूद तोड-तोड कर फेकती जिसे उसकी सहेलियां अपनी फ्रॉक के घेरे मे एवं बस्तो मे भर लिया करती थी। स्कूल में भी वह लडको के साथ मारपीट करने से नही हिचकती थी। सुमि की स्मृति मे वह क्षण आज भी जीवत है जब सौम्या ने अपने सहपाठी जोगेन्द्र के सिर पर प्रहार किया था और चूडी टूट कर उसके सिर में घुस गई थी तथा रक्त की धार से उसका मस्तक रग गया था। पर तब भी वह जरा भी भयभीत नहीं हुई थी। जब जोगेन्द्र ने टीचर से उसकी शिकायत की थी और टीचर ने बडी कडक आवाज मे उससे पूछा था–

'सौम्या तुमने जोगेन्द्र को क्यो मारा? मैं देख रही हू तुम दिन प्रतिदिन शरारती होती जा रही हो। बोलो मेरी बात का उत्तर दो। क्या हुआ था जोगेन्द्र के साथ जो तुमने उसे इतनी बुरी तरह से मारा?

सौम्या ने बडी निर्भीकता से उत्तर दिया था–

'हां, हा, मैंने मारा है उसे। वह मुझे हर समय परेशान करता रहता है। बिना किसी बात के हमेशा लडाई का बहाना खोजता रहता है। शायद वह सोचता है कि यह तो बेचारी लडकी है, मेरी आदत सहकर चुप लगा जायेगी, क्या कर सकती है मेरा। पर अब बच्चूजी को पता चला कि किस आफत की परकाला से पाला पडा है।'

आज सौम्या बडी हो गई है। उनके दुकान के पास ही स्थित जोगेन्द्र की स्टेशनरी की दुकान मे भी जब वह कोई सामान लेने जाती तो

जोगेन्द्र उसे देखकर सिर झुका लेता एव अपने सिर के घाव पर हाथ फेरने लगता। जो घाव भर तो गया है पर जिसकी चोट अभी भी उसके मन के अन्दर कहीं गहरे तक है।

मातृ-पितृ विहीन सौम्या जैसे-जैसे बडी होती गई, घर की सारी जिम्मेदारियों को अपने ऊपर ओढती गई। दिन में चार-पांच बार तो वह साइकिल से दुकान और घर का चक्कर लगाती। कभी बडे भइया को टिफिन पहुंचाना है, कभी बाजार से सब्जी लानी है, भतीजे-भतीजियों के स्कूल जाना है, सारे कार्यभार का वहन सौम्या को ही करना पडता। वह धीरे-धीरे घरवालों की आवश्यकता बनती गई। यहां तक कि भइया उसे अपना बायां हाथ समझने लगे। पढाई पूरी करते ही सौम्या ने एन.सी.सी. की ट्रेनिंग लेकर एन.सी.सी. ऑफिसर का पद ग्रहण कर लिया।

सौम्या वही एन.सी.सी. ऑफिसर थी, जिसको देखते ही बनारस यूनिवर्सिटी की छात्राओ के सिर गर्व से तन जाया करते थे। जिस समय वह यूनिफार्म पहन कर कालेज में प्रवेश करती, हजारो छात्राओ की निगाहे उसे हसरतभरी नजरों से देखा करती थी। उसका रौबीला व्यक्तित्व, सौम्य व्यवहार प्रत्येक को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त था। पर रूप–गुण से सम्पन्न सौम्या का ध्यान अपनी आशा–आकांक्षाओ की ओर कहा था। उसके दोनो बडे भाई अपनी घर–गृहस्थी में मग्न थे और सौम्या इस चिन्ता में कि उससे बडी दोनो बहनो के हाथ वह किस तरह पीले करे। उससे बडी बहन यौवन की दहलीज पार कर रही थी और दूसरी बडी बहन विवाह होते ही दो मास के अन्दर वैधव्य को प्राप्त हो गई थी। सौम्या जब भी अपनी उस विधवा बहन सरू को देखती, उसका कलेजा मुह को आता। देखने मे वह इतनी सुन्दर थी कि लगता जैसे समस्त ससार का सौन्दर्य उसमे समा गया हो। उसके दोनो पैरो की रक्तिम लालिमा जैसे उषा की लाली के समान थी। कभी-कभी सौम्या सोचती–

ससार के इस मायाजाल से अपनी रूप राशि को कैसे बचा कर रख पायेगी सरू बहन। माता-पिता न हो तो भाई–भाभी कौन–सा पूछते है। इसका भविष्य क्या होगा? अगर इनकी घर–गृहस्थी बस जाये तो मेरे सिर से बोझ उतर जाये।

सौम्या की इस मानसिक उद्विग्नता से उसकी सहेली सुमि भली-भाति

परिचित थीं। दोनो बचपन से साथ खेलती-खाती आई थी और छाया और काया की तरह एक–दूसरे के साथ रहती आई थी तभी तो सुमि के ब्याह में सौम्या ने ही उसे मेहदी लगाई थी और रतजगा करके सारे वातावरण में उल्लास-सा बिखेर दिया था। सौम्या का परिश्रम रग लाया था और जो कार्य उसके दोनो बडे भाई नहीं कर सके थे, उसे सौम्या ने कर दिखाया था। अपनी दोनो बडी बहनो की शादी उसने बड़ी धूम-धाम से की थी और फिर उन्हे ससुराल विदा करके ही चैन की सांस ली थी।

जिस समय वह बहनो के विवाह की तैयारी मे लगी थी उस समय उसकी सक्रियता एवं कर्मठता देखने योग्य थी। उसकी कार्यकुशलता देखकर जो लोग उसकी ओर आकर्षित हुए थे उनमे विनू भी एक था। पर सौम्या को इसका आभास कहां था।

विनू गगा किनारे स्थित उस परिवार का सबसे बडा बेटा, जहां वेदों के स्वर गूजते थे। सस्कारी पिता का संस्कारी पुत्र विनू। जिसने सौम्या के व्यक्तित्व को देखते ही यह बात मन मे बैठा ली थी कि मेरे इतने बडे परिवार को सभालने का कार्य सौम्या जैसे युवती ही कर सकती है। मुझे ऐसी ही जीवनसगिनी चाहिए जो परिस्थितियो से सघर्ष कर सकें और तब विनू ने मन ही मन एक सकल्प ले लिया था।

विनू भइया की इस सकल्प सिद्धि में सहभागी बनी थी उसकी छोटी बहन सुमि। जब एक दिन विनू भइया ने बडे शान्त–सौम्य स्वर मे सुमि के समक्ष कहा था–

सुमि कैसा रहेगा, अगर तेरी सहेली सौम्या इस घर मे तेरी भाभी बन कर आ जाये तो? सुमि एकाएक हतप्रभ रह गई– भइया आप यह क्या कर रहे है! ऐसे धीर गंभीर स्वभाव के भइया कोई बचकानापन करने या भावावेश मे तो आने से रहे। जरूर भइया ने यह निर्णय कुछ सोच-समझ कर ही किया होगा। मन ही मन सोचने लगी सुमि फिर धीरे से बोली– ठीक है भइया, आपने जो निश्चय किया है वह अपनी बुद्धिमानी से ही किया होगा, पर बाबूजी की सिद्धांतवादिता एव संस्कारित विचार से तो आप परिचित है ही। क्या बाबूजी सौम्या को अपने घर की वधू के रूप मे स्वीकार कर लेगे? क्या जाति–बधन इसमे आडे नही आयेगा ?

विनू भइया के मुखमडल पर दृढ निश्चयी रेखाये उभरी हुई थी– अब तो सुमि

चाहे जो कुछ भी हो मेरा निश्चय अडिग है, बाबूजी नहीं मानेगे तो क्या हुआ, मैं कोर्ट मैरिज कर लूगा।

और विनू भइया ने सौम्या से कोर्ट मैरिज कर ली थी।

शिव स्तुति करते समय मॉ के चरणों को जिन हाथो ने स्पर्श किया था वे सौम्या के ही हाथ थे। घर की सबसे वडी बहू के रूप मे सौम्या ने ही उस घर में प्रवेश किया था। बाबूजी को इस बात का ज्ञान हुआ था तो परिवार में एक तूफान–सा उमड़ आया था। ऐसा लगा था जैसे गृहस्थी की दीवारे चकनाचूर हो जायेगी, पर विनू की माँ ने अपने शान्त, सहनशील, संयमित स्वभाव से परिस्थिति को नया मोड दे दिया था।

बारह

गंगा किनारे स्थित उस घर की गृह स्वामिनी, इतिहास पुरुष की अर्द्धांगिनी, विनू की मॉ बचपन से ही शान्त स्वभाव की थी। बचपन से ही उसकी रुचि पढाई की ओर थी पर वह स्वयं अधिक पढ-लिख नही सकी। यह वह समय था जब लडकियो की शिक्षा इतनी अनिवार्य नही समझी जाती थी। जब वह छोटी थी तो अक्सर अपने बाबूजी से स्कूल जाने के लिए जिद करती थी, पर उसकी बाते सुनकर उसके बाबूजी हमेशा यही उत्तर देते– "अरे मुनिया तू हर समय पढाई की रट क्यो लगाये रहती है ?" तुम्हे कोई डिप्टी कलेक्टर बनना है क्या ? क्या तुझे दफ्तर मे कलम घिसनी है ? अरे तेरे को घर–गृहस्थी ही तो चलानी है, उसके लिए पढाई की क्या जरूरत है ? और इस तरह केवल मिडिल तक पढाकर उसका विवाह छोटी उम्र मे ही कर दिया गया। अपने दायित्व की पूर्ति के लिए घर वालो ने बिन्दा का विवाह भले ही अल्पायु मे कर दिया था, लेकिन पति के रूप मे उसे सुशिक्षित वर प्राप्त हुआ था, इसलिये उसके मन मे जो पढने की ललक थी उसे सप्तपदी का बधन भी नही मिटा सका।

बिन्दा के स्मृति पटल पर अभी वह दृश्य अकित है जब विनू और विजू के जन्म के बाद वह अत्यन्त व्यस्त हो उठी थी, पर यह व्यस्तता उसके मन से पढाई के प्रति उत्साह को कम नही कर सकी थी और इसी ज्ञान–पिपासा ने बिन्दा को हाई स्कूल की परीक्षा देने को विवश कर दिया

था। परिस्थितियो का प्रवाह विन्दा के लिए विल्कुल विपरीत दिशा में था, फिर भी वह परीक्षा देने के लिए सन्नद्ध थी।

वह भूली नहीं है उस दु सह व्यथा को जव सुमि गर्भ मे थी और वह मैट्रिक की परीक्षा दे रही थी। उसका मुह पीला पड़ गया था, आंखों के नीचे काले धब्बे–से नजर आते। पास-पडोस के लोग, यहा तक कि उसके भइया जब भी देखते चिन्तातुर होकर पूछ बैठते– अरी विन्दा तेरा मुंह इतना उतरा हुआ क्यो है ? क्या तू रात-रात भर जागकर पढाई करती है ? क्या विना कुछ खाये-पीये परीक्षा देने चली जाती है ? अरे विन्दा ज्यादा नहीं तो थोडा दूध ही पी लिया कर भइया प्रश्नो की झडी लगाते रहते और वह सोचती, यदि मैंने सत्य बोल दिया तो परीक्षा देने से वंचित होना पडेगा और उस समय उसके लिए सवसे बडा सत्य था मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करना जिसका उसने स्वप्न देखा था और अपने अथक प्रयत्नो से विन्दा उस स्वप्न को साकार रूप देने मे सफल हुई थी।

लेकिन उसके पश्चात् विन्दा घर-गृहस्थी के चक्कर मे ऐसी उलझी कि उलझती ही चली गई। एक के बाद एक सन्तानो को जन्म देने के कारण शारीरिक दृष्टि से बिन्दा इतनी कमजोर हो गई कि एक बार तो उसके प्राणो पर ही बन आई थी। उस समय उसकी सवसे बडी वेटी सुमि छाया की तरह उसके साथ लगी रहती। भाई-बहनों को संभालना, माँ को अस्पताल भर्ती कराना, घर की व्यवस्था देखना, सव--कुछ उसे ही तो करना था। वह सबसे बडी जो थी। विनू के बाबूजी तो हर मास वेतन मिलने पर रुपये भेज कर सब दायित्वो से मुक्ति पा लेते थे पर बिन्दा को दो-दो वर्ष के अन्तराल पर जो प्रसव पीडा सहन करनी पडती थी उसे देख-सुन कर सुमि अन्दर तक काप उठती थी। कभी-कभी तो उसे ऐसा लगता कि कहीं माँ इसी तरह प्रसव पीडा सहन करने के दौरान समाप्त तो नही हो जायेगी आखिर वह थी तो किशोर वय की बच्ची ही।

जब-जब वह मॉ के प्रसव के लिए अस्पताल मे भर्ती कराने जाती उसके हृदय की गति तीव्रतर हो उठती। माँ डिलीवरी रूम में पीडा से कराहती रहती और वह कमरे के वाहर खडी माँ की पीडा पूर्ण कराहे सुनती रहती। उस समय सुमि के दोनो हाथ ईश्वर से प्रार्थना करते हुए स्वतः ही जुड जाते और वह अस्फुट स्वर मे बुदबुदाने लगती– हे भगवानजी मेरी मॉ को बचा लीजिये। जो भी डाक्टरनी या नर्स कमरे से बाहर निकलती, सुमि उसके पास बदहवास–सी दौड पडती। एक बार जब माँ की हालत बहुत

बिगड गई और स्थिति नियत्रण के बाहर हो गई तब डाक्टरनी साहब ने बाहर आकर उससे कहा था– क्या तुम्हारे घर मे कोई बडा आदमी नहीं है? तुम्हारी मॉ की जान खतरे मे है। जल्दी जाकर यह इजेक्शन और दवाइया ले आवो तो कुछ उपाय हो सकता है।

उस समय सुमि दौडती–हाफती बाजार जाकर दवाइया लेकर उल्टे पैरों वापिस लौटी थी और उसने डाक्टरनी के पैर पकड कर बडे आर्द्र स्वर में कहा था– प्लीज डा. मेरी मॉ को बचा लीजिएगा। नहीं तो हम सब भाई-बहिन अनाथ हो जायेगे।

भोली बच्ची सुमि का आर्तनाद डाक्टर की सवेदना को भी झकझोर गया था उन्होने उसे सांत्वना देते हुए कहा– घबराओ मत मेरी बच्ची, हम पूरी कोशिश कर रहे हैं, तुम्हारी माँ को हम जरूर बचा लेगे। हम अपनी पूरी कोशिश कर रहे हैं, तुम्हारी प्रार्थना खाली नही जायेगी।

डा. साहब के सांत्वनाभरे शब्दो को सुनकर सुमि आश्वस्त हो उठी थी। अपने मन को सब तरह से वश में करने पर भी वह यह सोचने को बाध्य हो उठी थी कि अगर माँ न बची तो उसके सारे भाई-बहिनो का क्या होगा ? क्या वे भी उन बच्चो की तरह हो जायेगे जिनकी मॉ सौतेली है। क्या उसके भी भाई–बहन दिन–भर घर के कामों मे नौकर की तरह जुटे रहेगे और उन्हें स्कूल का मुंह देखना भी नसीब नही होगा? उसकी आखो के समक्ष सौतेली माँ की आकृतियां विभिन्न रूपो मे घूमने लगी। उसे ऐसा लगा जैसे अपने भाई-बहनो के ऊपर पडने वाले प्रहारों को वह अकेले सहन कर रही है और वह घुटनों मे मुंह छिपाकर सिसक-सिसक कर रो पडी। उसी समय लेबर रूम से नवजात शिशु के रोने की आवाज सुनाई दी और नर्स ने आकर उसके घुटनो मे रखे सिर को उठाकर कहा– सुनो मुन्नी तुम्हारी बहन हुई है, और तुम्हारी मॉ अब खतरे से बाहर है।

यह सुनते ही सुमि को जैसे पंख–से लग गये थे। उसने उस नवजात बालिका, को जो गुडिया की तरह लग रही थी, एक नजर देखा और फिर नंगे पैरों दौडती-भागती घर जाकर बूढी नानी को यह खुशखबरी दे आई थी और खुशी के आवेग मे उसने अपने सभी भाई-बहिनो को इकट्‌ठा करके गले से लगा लिया था।

सुमि जब वापिस अस्पताल लौट कर माँ के पास गई तो बार-बार उस नन्ही-मुन्नी काया को ही निहारती रहती। वह सोचती, कब वह इसे गोद मे उठाकर घर ले जायगी।

तेरह

आज मकर सक्रांति का पुनीत पर्व है। सुमि अपने मानस को चाहे कितना ही बांध कर रखे, पर पवन वेग की तरह उडने वाला अवचेतन मन बार-बार काशी गगा तट की ओर तीव्र गति से भागने लगता है। वहां लाखों की सख्या मे गंगाजल में लोग डुबकी लगा रहे हैं। सूर्य को अर्ध्य दे रहे हैं। छतरियों के नीचे बैठे पंडो से माथो पर त्रिपुण्ड लगवा रहे हैं। दोनो तरफ बैठी हुई कृशकाय नर-नारियो की पक्तिबद्ध टोली को खिचडी और तिल बांटकर जैसे दान का पुण्य लूट रहे हैं। गंगा में स्नान उनका धर्म के प्रति निष्ठा का परिचायक है। वास्तव मे गंगा नदी कोत्यानुकोटि लोगो की धर्म-निष्ठा का मूर्त रूप है मानो सनातन धर्म की धारा ही गंगा के रूप मे भूतल पर बह रही है। गावो और नगरों मे पास रहने वाली साधारण जनता के लिए गंगा ही धर्म है।

तभी तो मरुधरा को अपनी कार्यभूमि मानने वाली सुमि का मन भी अचेतन मे ही गगा मे अवगाहन करने लगता है। कभी बूढी नानी और कभी मॉ का हाथ पकड़ कर घर से गगा तट तक जाने के सारे रास्ते जैसे चलचित्र से उसके सम्मुख घूमने लगते हैं।

सक्राति के दिन सूर्योदय होने से पूर्व ही सुमि अपने सब भाई-बहनो के कपडे बटोरने लगती, कौन नहा कर क्या पहन कर आयेगा। इन सबका ध्यान सुमि को ही रखना पडता, वह सबसे बडी जो थी। उस दिन उन्हे कुछ भी खाना-पीना दिखाई नही पडता, केवल गगा मे नहाना दिखाई पडता। फिर सारे भाई-बहन बूढी नानी और मॉ का हाथ पकडकर गंगा किनारे जाकर तब तक डुबकी लगाते रहते जब तक एकाध थप्पड मार कर

मॉ उन्हे बाहर नही निकालती। सबसे छोटी गुडिया के समान वह बालिका, जो माँ की सबसे अन्तिम सन्तान थी और सुमि की सबसे छोटी लाडली बहन, जिसके जन्म के समय मॉ के प्राण संकट में पड गये थे और दो दिन तक उसके कोई भी सहज क्रिया न करने पर मॉ आशंकित हो उठी थी, वही गुडिया सी बहन माधवी हर क्षण उसके साथ रहती। सुमि ही अपनी गोद में उसे बंदरिया के बच्चे की तरह चिपकाये गंगा तट पर लेकर आती उसके सग न जाने कितनी स्मृतियां जुड़ी हैं सुमि की।

एक बार जब सुमि उसे किनारे बैठाकर स्वयं गंगा मे डुबकी लगाने लगी तो वह घुटनो के बल रेंगते-रेंगते गंगा जल मे डुबकी लगाने लगी थी। जब एकत्रित भीड ने शोर मचाया कि अरे दौडो, बच्ची डूब रही है। बचाओ, बचाओ। तब सुमि ने किनारे की ओर मुडकर देखा तो वह उसकी लाडली माधवी ही थी जो नदी में डुबकी लगा रही थी। वह गीले कपडों मे ही पीछे पलटी और उसने उसे उठाकर अपने सीने से चिपका लिया था। तमाम लोग उसके आस–पास इकट्ठे हो गये थे और वह उसे छाती से चिपकाये रोती जा रही थी और कहती जा रही थी- मेरी नन्ही गुडिया, भगवान का लाख-लाख शुक्र है कि तुम आज बच गई। अगर तुम्हे कुछ हो जाता तो हम सब का क्या हाल होता!

आस पास खडे लोग उसे सांत्वना दे रहे थे। माँ बार-बार उसे ही डाट रही थी और कह रही थी– तेरे को हजार बार कहा है उसे चिपकाये मत घूमा कर। जहां जायेगी, उसे साथ लेकर मरेगी। अगर उसे कुछ हो जाता तो तेरे बाबूजी हम दोनों को जिन्दा नहीं छोडते। तुझे मालूम हैं न माधवी उनकी कितनी लाडली है!

वास्तव में गंगा तट पर स्थित उस घर के मुखिया विनू के बाबूजी की माधवी सबसे छोटी बेटी थी जो सम्पूर्ण परिवार के स्नेह का केन्द्रबिन्दु थी। घर का कोना-कोना उसकी तोतली बातों से गूंजता रहता था। जो घर मे प्रवेश करता, उसे एक बार गोद मे अवश्य उठाता। जैसे-जैसे माधवी बडी होती गई, अपने शैशव की क्रीडाओ से घर मे आनन्द बिखेरती रही। जब-जब मॉ पूजा करती और देवी-देवताओ को भोग लगाती तो माधवी उस प्रसाद को सबसे पहले खाती, वह तोतली वाणी मे कहती- माँ, मुझे प्रसाद दो ना ! भगवानजी प्रसाद थायेगे, क्या मैं नहीं थाऊँगी। पहले माँ मैं थांऊँगी, बाद मे

भदवान जी थायेंगे।

माँ प्रसाद के दो भाग करती। एक भगवान के भोग के लिये, दूसरा माधवी के खाने के लिए। क्योकि अगर माधवी को पहले नहीं देती तो वह भगवान को लगाया भोग उठाकर खा जाती। घर मे कोई भी वस्तु आती, पहले माधवी का ध्यान रखा जाता। त्योहार पर सबके लिए नये वस्त्र आते पर सबसे पहले सब यही पूछते- "माधवी के नये कपडे आ गये क्या ? पहले उसे सजवावो, बाद मे हम नये कपडे पहनेगे।" जिस दिन वह पहली बार स्कूल मे प्रवेश लेने गई तो आठो भाई-बहन उसके साथ हो लिये थे। बाबूजी ने कितना मना किया था कि वह कोई घूमने थोडे ही जा रही है जो तुम सब लोग साथ जावोगे पर किसी ने भी उनकी बात को नहीं माना था और सब स्कूल के बाहर खडे रहे थे।

जैसे-जैसे माधवी बडी होती गई, सबके प्यार और स्नेह का केन्द्र-बिन्दु बनती गई। बाबूजी घर में प्रवेश करते, सबसे पहले उसे सम्बोधित करते—माधवी बिटिया क्या कर रही है ? कैसी है, उसकी पढाई का ध्यान करो। जब भी कोई त्यौहार होता सबसे पहले उसकी पसद का ध्यान रखा जाता।

माँ पूछती—आज मेरी बिटिया क्या खायेगी ?

और माधवी व्यजनो की लम्बी सूची गिना देती, जो—कुछ उसे पसंद होता। सभी व्यजन माँ रच-रच के बनाती। जब वह स्कूल मे किसी प्रतियोगिता मे भाग लेती तो उसके सभी भाई-बहिन उसकी तैयारी मे जुट जाते।

सुमि को अभी भी अच्छी तरह याद है कि जब एक बार गणतंत्र दिवस पर विद्यालय मे होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रम मे उसने भाग लिया था तो सभी भाई-बहन उसे बार-बार अभ्यास कराते। उसमे मधुकर और मनसिज उसके दोनो भाई तो उसे अभ्यास कराते थकते ही नही थे। क्योकि मधुकर परिवार मे सबसे छोटा था और मनसिज उससे बडा। उनमे उम्र का अतराल विशेष नही था। और वे दोनो कक्षा के मेधावी छात्र के रूप मे गिने जाते थे। सुमि से छोटी माधवी की दो बहनें कुन्ता और कालिंदी भी माधवी के लिए नई-नई ड्रेस बनाने में व्यस्त रहती। अब माँ जहा भी जाती, माधवी ही उनके साथ जाने की जिद करती। सुमि का स्थान अब माधवी ने ले लिया था। उसे कहीं न ले जाने पर वह सारे घर को हिला कर रख देती। सब उसकी भावना को स्थान भी देते। कहने का तात्पर्य यह है कि उस घर की

सारी व्यवस्थाओ तथा कार्यकलाप के केन्द्र मे माधवी ही थी, लेकिन समय को व्यतीत होते क्या समय लगता है। माधवी जब यौवन मे पदार्पण कर रही थी, तो उसके अम्माँ-बाबूजी बुढापे की ओर अग्रसर हो रहे थे। वह समय का ही चक्र है जो निरन्तर गतिमान रहता है और इसकी गति को कोई टाल नहीं सकता। जो इस संसार मे आया है उसे समय की सारी सीमाओ को पार कर आखिर में अनन्त यात्रा पर जाना ही पडेगा। जब माधवी के बाबूजी और माँ ने बुढापे की प्रतिच्छाया को अपनी ओर बढते देखा तो वे इस बात को सोचने को विवश हो गये कि जिस तरह हमने अपने सभी उत्तरदायित्वो को पूर्ण कर लिया है, उसी तरह माधवी, जो हमारी आखिरी जिम्मेदारी है, उससे भी मुक्त हो जाये और फिर माधवी के लिए उपयुक्त वर तलाश करने में घर के समस्त लोग जुट पडे।

और उनका प्रयास रंग लाया। मात्र 19 वर्ष की आयु मे ही माधवी का विवाह ऐसे व्यक्ति से कर दिया गया जो मुखर न होकर चुप्पा किस्म का था। इतनी जल्दी कौन किसके स्वभाव को समझ सकता है। माधवी के वर के चुप्पेपन को सिधाई की संज्ञा देकर परिभाषित किया गया था।

माधवी का विवाह सभी ने शामिल होकर बडी धूम-धाम से किया। लेकिन जैसे ही माधवी उस घर से विदा हुई उस घर पर मानो वज्रपात–सा हो गया। माँ ने सिसकी भरते हुए कहा- आज मेरी सारी जिम्मेदारी पूरी हो गई, अब तो मैं गंगा नहाऊगी।

लेकिन माँ के वाक्य पूरे भी न हो सके थे कि उनका मुंह टेढा हो गया, हाथ पैर सुन्न हो गये और माँ अचेत होकर धरती पर गिर पडी। पूरे घर मे कुहराम-सा मच गया। आनन-फानन मे डाक्टर को बुलाया गया, डाक्टर ने घोषित किया कि माँ को पक्षाघात का हल्का-सा दौरा पडा है। शायद माँ अपनी छोटी बिटिया से बिछुडने का अभाव सहन नही कर सकी थी या यह भविष्य मे माधवी के साथ घटने वाली किसी दुर्घटना का सकेत था, इसे तो ईश्वर ही जान सकता है।

गंगा किनारे स्थित उस घर से माधवी जिस दिन विदा हुई, उस घर को मानो ग्रहण–सा लग गया। शायद अपने साथ घर की सारी हँसी-खुशी भी माधवी बटोर कर ले गई थी। माँ तो उसके विदा होने के पश्चात् जो खटिया पर पडी तो हमेशा के लिए ही पड गई। पक्षाघात के उस हल्के दौरे ने माँ की सारी

जैविक क्रियाओ को जैसे नष्ट-सा कर दिया था। चूकि वह हल्का दौरा था, और वह भी प्रथम वार पडा था इसलिये माँ का जीवन शेष रह गया था, नहीं तो शायद मृत्यु उन्हे अपने आचल में समेट लेती। पर जिस हालत मे माँ जी रही थी वह जीना भी कोई जीना था! शरीर की सव इन्द्रियाँ जव काम करना वन्द कर दें तो जीवन स्वय भारस्वरूप हो जाता है।

चौदह

दिन–भर चारपाई पर पडे रहना विनू की माँ की नियति बन चुकी है। खटिया पर लेटे-लेटे रुग्ण अवस्था में वह कभी छत की कड़ियां गिनती है, कभी चारो ओर लगे मकडी के जालों को देखती हैं, ज्यादा ऊव होने पर कैलेण्डर की तारीख गिनने लगती है। सवसे पूछती है– "अव अवकाश कव पडेगा ?" "दीवाली की छुट्टियां कव से हो रही है ?" "वच्चे छुट्टियों में घर कव तक आयेगे ?"

इन सबका हिसाब चाहे कोई उसे वताये या न बताये, वह अपनी ऊंगलियो पर सदा हिसाब जोडती रहती हैं। विस्तर पर पडे-पडे और कोई काम भी तो नहीं है, समय गुजारे भी तो कैसे ?

विनू की माँ जिस कमरे मे लेटी रहती है, उसे कमरे से बाहर के दृश्य स्पष्ट दिखाई देते है। सामने सडक पर दौडती कारें, स्कूटर, मोटर साइकिल के हार्न की आवाजे कानों में हर समय गूंजती रहती हैं। कभी-कभी जी बहलाने के लिए सडक पर आने-जाने वाले व्यक्तियो को देखती रहती है। इनमे से कुछ बच्चों से वह भली-भाति परिचित है, जो बस्ते लटकाये बसो की प्रतीक्षा मे खडे रहते है या रिक्शो पर चढकर स्कूल जाते हैं। उनकी बस या रिक्शा लौटने मे अगर जरा भी शाम पड जाती है तो वह लेटे-लेटे ही व्याकुल हो उठती है। जैसे ही बच्चो की स्कूल ड्रेस दूर से दिखाई पडती है, वह पुलक उठती है। सिर पर सब्जी की खंचिया उठाये दो-तीन औरते उसके दरवाजे पर भी हॉक लगा जाती हैं, इन सबने उसकी दिनचर्या मे अपना स्थान बना रखा है। पडे-पडे करे भी तो क्या ? ज्यादा ऊव होने पर पास पडे टी वी. का वटन उमेठने लगती है।

विनू की यही माँ मीलो दूर कुएं से पानी भर कर लाती थी। स्वयं कष्ट सहन कर नौ-नौ बच्चो का पालन करती थी। पिताजी के अक्सर बाहर सरकारी दौरे पर रहने के कारण स्कूल मे उनकी अभिभावक, घर में उनकी माँ और बीमार पडने पर डाक्टर की भूमिका भी उसे ही अदा करनी पडती थी। किस तरह वह चक्करघिन्नी की तरह घर अस्पताल और स्कूल के चार चक्कर लगाती थी और कभी एक क्षण के लिये ट्यूटर नही रखा, केवल उस बूढे मास्टरजी को छोडकर, क्योंकि वे उसके लिये पितृवत थे। वह स्वयं बच्चो को होमवर्क करवाती, स्कूल के अध्यापक उनके बच्चो को कहते-तुम्हारी माँ स्वयं इतना अच्छा पढाती हैं, तुम्हे किसी कोच की क्या आवश्यकता है। उसके सभी बच्चे पढाई मे उच्च स्तर तक शिक्षा प्राप्त कर चुके थे। सभी अपने काम-धन्धे और घर-गृहस्थी मे रम गये थे पर यही बच्चे जब छोटे थे तो कभी-कभी एक साथ सबके सब बीमार पड जाते। उस समय वह दिन-रात एक कर देती। उसे अभी भी याद है जब एक बार तीनो बच्चो को एक साथ चेचक का टीका लगा था तब सब बुखार से तपने लगे थे। उस समय वह सारे समय हलकान होती रही थी। घर मे न कोई बडा आदमी था और न कोई नौकर-चाकर, सब व्यवस्था उसे ही देखनी पडती थी। उसकी सक्रियता देखकर डाक्टर भी कहते- आप तो बच्चों को सम्हालते-सम्हालते स्वयं डाक्टर बन बैठी हैं। सारी दवाओं के नाम आपको रटे पडे हैं।

बच्चों के लिए माँ एवं डाक्टर दोनों की ही भूमिका अदा करने वाली विनू की माँ आज इस अवस्था मे पड़ी है। जब सुविधाओं और सुखो को भोगने की अवस्था थी तब सारी उम्र बच्चो को बडा करने, पालने-पोसने मे और उन्हे योग्य बनाने मे व्यतीत हो गई और जब आराम करने का, सुख भोगने का समय आया तो शरीर ने ही साथ देना बन्द कर दिया। इसे विधि की विडम्बना नही तो और क्या कहा जा सकता है।

पर माँ की अन्तरात्मा ने अभी भी दुर्बलता को स्वीकार नही किया था। शरीर से अशक्त होने पर माँ के अन्तर में यह इच्छा तीव्र रूप धारण कर रही थी कि मुझे उठना है, चलना है और अपने पैरो पर खडा होकर चलना है। कब तक मैं इस प्रकार बिस्तर पर पडी रहूंगी और परिवार के लोग मेरे कारण परेशान होते रहेगे और बडी बेटी सुमि छुट्टियो मे माँ के पास मिलने आई तो उन्होने सुमि के समक्ष अपनी इच्छा व्यक्त कर दी- सुमि एक बार मुझे खडा कर दो, मैं फिर से

थी पर आज वह माँ हो गई है और माँ उस नन्ही बालिका के समान हो गई है।

वास्तव में माँ का व्यवहार नन्ही बालिका के समान ही हो गया था। उनको जैसे ही यह आभास हो गया कि उनके पैरो मे अब चलने की शक्ति आ गई है, वे हर समय घूमना ही चाहती थी। बाहर चाहे धूप निकली रहती, या बादल छाये रहते या वर्षा होती रहती पर वे चलने और घूमने के लिए आतुर रहती। बार-बार कमरे से मुह बाहर निकाल कर खिडकी से देखने का प्रयास करती कि बाहर चलने के लिए मौसम ठीक है कि नही। अगर उनके मनोनुकूल कार्य नहीं होता तो वे रोने बैठ जाती। वे वाकर के सहारे आधा मील तक का चक्कर लगा आती थी। माँ की दृढ सकल्पशक्ति और आत्मबल ने उनकी शारीरिक दुर्बलता पर विजय प्राप्त कर ली थी। मेरी स्मृति मे वह क्षण भी जीवित है जब माँ विराम देते-देते शिव मन्दिर में शिवरात्रि पर दर्शन करने चली गई थी और अपने हाथो से शिवजी को अर्घ्य एव पुष्प अर्पण किया था।

काशी मे जन्मी माँ के मानस मे बालपन से ही शकर भगवान के प्रति जो आस्था थी उसे समय की धूल भी धूमिल नही कर सकी थी। इसलिये स्वस्थ होते ही माँ ने सबसे पहले शिव की ही उपासना की थी क्योकि जो शिव है वही कल्याणकारी है।

पर जैसे-जैसे माँ स्वस्थ होती गई उनके मानस मे अपने परिवार के प्रति फिर से मोह की भावना जागने लगी। वे वापिस अपने उसी घर मे लौटने की जिद करने लगी जहा उनके अंश पुत्र एव पोते-पोतियो के स्वर गूंजते थे। वे बार-बार विनू के बाबूजी के पास जाने की जिद करने लगी। उन्हे मना करने पर वे रोने बैठ जाती, वे बार-बार यही वाक्य दोहराती- मैं विनू के बाबूजी के पास जाऊंगी उनकी सेवा करूगी। मै अपने पति और बच्चो के पास जाऊंगी, मुझे वापिस अपने घर–ससार मे लौट जाने दो।

उनके इस आग्रह को सुमि और उसके पति टाल न सके, भला उन्हे माँ को भेजने मे क्या आपत्ति थी। वे जिस उद्देश्य को लेकर माँ को लेकर आये थे, उसमे सफलता मिल चुकी थी। माँ स्वस्थ हो गई थी, तन से भी, मन से भी। उन्हें अब और क्या चाहिये था? इसलिये उन्होने माँ को वापिस अपने घर–संसार मे भेज दिया था। सुमि को याद है, अभी भी वह क्षण जब विनू के बाबूजी माँ को देखकर खुश हुए थे और खुशी के आवेग मे आकर बोले थे अरे– यह तो चमत्कार हो गया। सुमि तेरी माँ तो दौडने लगी है। वास्तव

चल–फिर सकू, आत्मनिर्भर बन सकू, मुझे हमेशा सबकी दया का पात्र बनकर न जीना पडे। एक बार सुमि केवल एक बार मैं अपने इन पैरो से फिर से चल-फिर सकू।

सुमि को भला क्या आपत्ति थी। वह तो स्वयं चाहती थी कि माँ एक बार उसका घर–बार देख ले, उनकी आत्मा तृप्त हो जाये। कही माँ के मन के किसी कोने मे यह दुख तो नही समा गया है कि मेरी बेटी सुदूर मरु प्रात मे अपने जीवन के ताने-बाने किस प्रकार बुनती होगी। साथ ही मन मे यह आशा भी थी कि शायद माँ वहां जाकर ठीक हो जाये और माँ को वह और उसके पति सुशान्त गंगा किनारे स्थित उस मकान से उठाकर मरुधरा के सुदूर प्रांत मे ले आये थे। इन सबमे सुशान्त की भूमिका ही जीवटता की थी क्योंकि सुमि माँ को अकेली लाने मे सक्षम नही थी। अगर सुशान्त उसका साथ नहीं देते तो शायद मॉ के मन मे जो स्वस्थ होने की आशा थी, वह अपूर्ण ही रह जाती।

और वास्तव में मॉ की अदम्य इच्छाशक्ति और आत्मबल ने उनका पूर्ण साथ दिया था। तभी तो डॉक्टर की सलाह पर वें अक्षरश: चलती गई। माँ शरीर से दुर्बल होने पर भी जी कडा करके पैरो की कसरत करती, उनके पैरो को गर्म बालू से ढक दिया जाता और मॉ घण्टो उसमे बैठी रहती। एक दिन भी अगर कम्पाउण्डर पैरो की कसरत न कराता तो मॉ अपने ही आप पैर उठाने का उपक्रम करती, कोलकाता मे बैठे विनू के बाबूजी अपने पत्रों के द्वारा मॉ का उत्साहवर्धन करते।

"विनू की मॉ आप जरूर ठीक हो जाओगी। मरुधरा की जलवायु आपके स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होगी। ईश्वर पर भरोसा करिये, आप अवश्य वहा से ठीक होकर लौटेगी।"

पन्द्रह

सुमि और उसके पति सुशान्त मॉ की सेवा मे अपने को तल्लीन रखते। वे दोनों एक क्षण के लिये भी मॉ को अकेला नही छोडते थे। कभी-कभी सुमि को ऐसा आभास होता कि उसकी और उसकी मॉ की काया का स्थानातरण हो गया है। चालीस वर्ष पूर्व वह माँ की नन्ही–सी गुडिया थी जिसे मॉ नहलाती-धुलाती, सजाती-सवारती और पैरो से चलना सिखाती

थी पर आज वह माँ हो गई है और माँ उस नन्ही बालिका के समान हो गई है।

वास्तव मे माँ का व्यवहार नन्ही बालिका के समान ही हो गया था। उनको जैसे ही यह आभास हो गया कि उनके पैरो मे अब चलने की शक्ति आ गई है, वे हर समय घूमना ही चाहती थी। बाहर चाहे धूप निकली रहती, या बादल छाये रहते या वर्षा होती रहती पर वे चलने और घूमने के लिए आतुर रहती। बार-बार कमरे से मुह बाहर निकाल कर खिडकी से देखने का प्रयास करती कि बाहर चलने के लिए मौसम ठीक है कि नहीं। अगर उनके मनोनुकूल कार्य नही होता तो वे रोने बैठ जाती। वे वाकर के सहारे आधा मील तक का चक्कर लगा आती थी। माँ की दृढ सकल्पशक्ति और आत्मबल ने उनकी शारीरिक दुर्बलता पर विजय प्राप्त कर ली थी। मेरी स्मृति में वह क्षण भी जीवित है जब माँ विराम देते-देते शिव मन्दिर मे शिवरात्रि पर दर्शन करने चली गई थी और अपने हाथो से शिवजी को अर्ध्य एव पुष्प अर्पण किया था।

काशी में जन्मी माँ के मानस मे बालपन से ही शकर भगवान के प्रति जो आस्था थी उसे समय की धूल भी धूमिल नही कर सकी थी। इसलिये स्वस्थ होते ही माँ ने सबसे पहले शिव की ही उपासना की थी क्योकि जो शिव है वही कल्याणकारी है।

पर जैसे-जैसे माँ स्वस्थ होती गई उनके मानस मे अपने परिवार के प्रति फिर से मोह की भावना जागने लगी। वे वापिस अपने उसी घर में लौटने की जिद करने लगी जहा उनके अंश पुत्र एव पोते-पोतियो के स्वर गूजते थे। वे बार-बार विनू के बाबूजी के पास जाने की जिद करने लगी। उन्हे मना करने पर वे रोने बैठ जाती, वे बार-बार यही वाक्य दोहराती- मैं विनू के बाबूजी के पास जाऊगी उनकी सेवा करूगी। मै अपने पति और बच्चो के पास जाऊंगी, मुझे वापिस अपने घर–ससार मे लौट जाने दो।

उनके इस आग्रह को सुमि और उसके पति टाल न सके, भला उन्हे माँ को भेजने मे क्या आपत्ति थी। वे जिस उद्देश्य को लेकर माँ को लेकर आये थे, उसमे सफलता मिल चुकी थी। माँ स्वस्थ हो गई थी, तन से भी, मन से भी। उन्हे अब और क्या चाहिये था? इसलिये उन्होने माँ को वापिस अपने घर–संसार मे भेज दिया था। सुमि को याद है, अभी भी वह क्षण जब विनू के बाबूजी माँ को देखकर खुश हुए थे और खुशी के आवेग मे आकर बोले थे अरे– यह तो चमत्कार हो गया। सुमि तेरी माँ तो दौडने लगी है। वास्तव

मे बेटी और दामाद हो तो ऐसे, जिन्होने इतनी अशक्त माँ को भी स्वस्थ कर दिया। वास्तव मे सुमि तू बेटी नही बेटा है, हमे तुम्हारे पर गर्व है।

कहने वाले कहते– अरे बेटी के यहा रहकर ठीक होकर आई है। तो बाबूजी कहते– क्या अन्तर है बेटी और बेटे मे? क्यों तुम लोग इतने संकीर्ण सोच को हवा दे रहे हो। मेरे लिये बेटी और बेटे मे कोई फर्क नहीं।

और बाबूजी की ये दलीलें सुनकर सुमि खुशी के आवेग से रोमाचित हो उठती। वैसे तो बडे भइया विनू की माँ को महानगर कोलकाता ले जाने मे सक्षम थे क्योकि बाबूजी अब अशक्त हो चले थे और ज्यादा समय बडे भइया के पास ही गुजारते थे। भइया सोचते, दोनों पास ही रहे तो कितना अच्छा है। पर माँ काशी छोडना नहीं चाहती थी। उसके एक-एक कण से उनका स्नेह सूत्र जो जुडा हुआ था।

वैसे विनू भइया की पत्नी सौम्या भाभी ने आते ही सारे घर-गृहस्थी को अपने स्नेह की छाया मे समेट लिया था। अपने डाक्टर बनने की अभिलाषा को उन्होने भीतर ही भीतर जज्ब कर लिया था और समय ने उन्हे एन सी सी. ऑफिसर बना दिया था। उस अभिलाषा को उन्होने पूरा किया था अपनी बेटी को डॉक्टर बना कर। वाराणसी, जहा सौम्या का नइहर एव ससुर गृह दोनो ही थे, वही नमिता का जन्म हुआ था। नमिता, उनकी सबसे बडी बेटी, जिसे दो वर्ष की उम्र मे गोद मे लेकर उन्होने नई आशा और स्वर्णिम भविष्य की आकांक्षाओ को पूर्ण करने के लिए कोलकाता शहर मे प्रवेश किया था।

सोलह

कोलकाता महानगर हर एक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के अपने मे समाहित करने वाला शहर। जहां सबको रोजी-रोटी मिलती है और कोई भी भूखे पेट नहीं सोता। ऐसे महानगर में जब सौम्या भाभी और विनू भइया ने आश्रय लिया तो, उस शहर ने उन्हे भी [illegible] दिया। [illegible]
मान-सम्मान और फूल–से प्यारे दो बच्चे। न[illegible]
उसे खेलने और रौब जताने के लिए भाई [illegible]
विनू भइया की गृहस्थी की गाडी [illegible]

है, इसीलिए तो किनू जैसी उस परिवार की बेटी को माता मइया ने अपने आचल मे समा लिया था। शायद किनू के बारे मे बिना कुछ लिखे यह उपन्यास अपूर्ण–सा लगे क्योकि किनू एक दुखती हुई रग थी। चेचक के भयंकर प्रकोप ने किनू को इस तरह झकझोर कर रख दिया था कि वह हर समय बचकानी हरकते करती। चुपचाप अपने काम में लगी रहती। सात-आठ वर्ष की किनू को केवल घर के कामो मे मतलब रहता, बर्तन किस तरह चमका-चमका कर, रगडकर साफ करने हैं, उसका ज्ञान यहां तक सीमित था। पर अगर कोई उसके साथ जरा–सा भी वार्तालाप करने की चेष्टा करता तो वह मारने दौडती। जो बर्तन उसके हाथो में होता, उसी को फेक कर मारती। उसको जो भी देखता, एक दुखभरी आह उसके होठो से निकल पड़ती– बेचारी दिन भर काम मे लगी रहती है। अपने खाने-पीने की भी सुध नही है इसे।

विनू के बाबूजी ने तथा सभी भाई-बहनो ने मिलकर बहुत प्रयास किया कि किनू स्कूल पढने जाये, चिट्ठी–पत्री लिखना सीख जाये, लडकी की जात है, कल को शादी–ब्याह होगा, ससुराल जायेगी तो अपने सुख-दुख का समाचार तो दे सकेगी। वैसे इस बात से वे भी अनभिज्ञ नही थे कि जिसका मस्तिष्क इस प्रकार से अर्द्धविक्षिप्त हो गया है उससे शादी कौन करेगा, और अगर शादी हो भी गई तो क्या वह सुखी रह सकेगी। पर दो-चार दिन स्कूल भेजने के बाद टीचर ने स्पष्ट शब्दो में कह दिया था- पडित जी, इस लडकी का दिमाग बिलकुल शून्य है, यह कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकती। यह सुनकर विनू के बाबूजी को जैसे काठ–सा मार गया था।

समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता, उसका चक्र तो अनवरत गति से चलता ही रहता है। किनू के चेचक के दाग से भरे चेहरे पर और सांवली काया पर यौवन के हरसिगार फूलने लगे थे। वह बडी हो रही थी पर उसे अपने बडे होने का बोध ही नहीं था।

यह कैसी विडम्बना थी कि जिसके शरीर मे बसत अपने सम्पूर्ण वैभव को लेकर प्रवेश कर रहा हो उसे ही इसका आभास न हो, शायद वह कस्तूरी मृग थी जिसे अपनी सुगन्ध का ही आभास न हो। उसके शरीर मे हो रहे शारीरिक परिवर्तन से माँ ही उसे अवगत कराती और जैसे उसे रहने को कहती, वैसे ही वह रहने लगती।

विनू के वावूजी की चिन्ता का वोझ वढता ही जा रहा था। वे जहां भी जाते उसी के रिश्ते की वात चलाते। लेकिन एक वात अवश्य थी कि किनू की शादी की वात चलाते समय वर पक्ष के समक्ष उसकी मानसिक, शारीरिक कमजोरी की चर्चा करना नही भूलते, इसके पीछे वह एक ही दलील देते– मैं किसी के साथ धोखा नही करना चाहता, आज तो मैं वात छिपाकर किनू का व्याह कर दू , कल को सारी जिन्दगी उसे यह सुनना पडे कि तुम्हारे वावूजी ने धोखे से तुम्हे हमारे गले वाध दिया। नही, नहीं, ऐसा कदापि नही होगा। इसे जो भी स्वीकार करेगा उसे समझ-वूझकर परिस्थितियों से समझौता करके आत्मनिर्णय लेकर इसे स्वीकार करना पडेगा।

इधर वावूजी किनू के व्याह के लिये भागदौड कर रहे थे, क्योकि विवाह कन्या की नियति है, नहीं करने पर क्या समाज के लोग जीने देते हैं? रोज इधर-उधर से तानाकशी सुनाई पडती- जवान लड़की को कव तक घर मे बैठाये रखोगे पण्डितजी? आखिर को तो उसके हाथ पीले करने ही पडेगे। पर वावूजी का मन हर समय आशकाओं के भवरजाल मे उलझा रहता– क्या किनू विवाह करके सुखी हो सकेगी ? पता नहीं, यह अवोध लडकी किसके पल्ले पडेगी ? यह वात सत्य है कि मनुष्य कुछ और सोचता है और विधाता का विधान कुछ और ही चक्र चलाता रहता है। कहते हैं, हमारे मन कुछ और है और विधाता के कुछ और। वह भयकर वरसात की काली रात, पता नहीं उस दिन किनू ने क्या खा लिया कि रात–भर उल्टी करती रही। शरीर मे पानी की कमी हो गई। अस्पताल मे एडमिट किया गया पर किनू की वेहोशी नहीं टूटी। वह अचेतन अवस्था में विस्तर पर पडी रही। उसके शरीर पर वही लाल काली धारी की साडी मौजूद थी जिसका एक कोना जला हुआ था और जिसे माँ के हजार वार टोकने के वावजूद भी उसने अपने शरीर से अलग नहीं किया था।

वह बीच-बीच मे अस्फुट शब्दो का उच्चारण करती अपने हाथो की चूडियां उतारने लगती। अन्त मे उसकी आखो से दो वूद आंसू ढुलक पडे और किनू ने सबकी ओर से, मुह फेरकर इस ससार से अन्तिम विदा ले ली। वह इस संसार की समस्त कथाओ-व्यथाओ से वाधा--वधनो से मुक्त हो गई थी। केवल वही मुक्त नहीं हुई थी, अपितु सम्पूर्ण परिवार को भी चिन्ता मुक्त कर गई थी।

यही सही है कि सन्तान माता-पिता की आत्मा का अंश होती है,

सत्रह

कोलकाता महानगर मे दुर्गा पूजा की तैयारिया जोरों पर थी। कुम्हार टोली की गली–गली मे कलाकार लोग मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उसे सजीव आकार देने मे लगे हुए थे। दुर्गा पूजा बगाल की सस्कृति का एक ऐसा प्रतीक पर्व है जहां भारतीय सभ्यता मुखर हो उठती है। महिषासुरमर्दिनी मॉ दुर्गाजी साकार रूप धारण कर इस पर्व मे जनमानस का शक्तिस्रोत बन जाती है। सर्वत्र इतनी भीड उमडती है कि पैर रखने की तिल भर भी जगह नहीं बचती है। गरीब से गरीब वर्ग का व्यक्ति भी इस त्यौहार पर नूतन कपड़े, नूतन जूते पहनने की आकांक्षा रखता है। ऐसे समय, जबकि चारो ओर त्यौहार का धूम–धडाका फैला हुआ था, रेलवे क्वार्टर के कमरे मे निस्तब्धता पसरी हुई थी। वह पितृ–विसर्जन की अमावस्या थी जब सौम्या ने अस्पताल जाकर एडमिट होने का मानस बना लिया था।

सौम्या गगा किनारे स्थित परिवार की सस्कारी बडी बहू विनू भइया की पत्नी, जिसके एक सकेत पर कवायद करने वाली एन.सी.सी. परेड थम जाया करती थी, अनेक रोगों से आक्रांत हो गई थी। रोग यहां तक बढ गया कि सीधे अस्पताल जाने की नौवत आ पहुंची थी। डायबिटीज एव पथरी जैसे अनेक रोग शरीर मे घर कर चुके थे, दर्द का वेग इतना तीव्र था कि उसे सम्हालना मुश्किल था। तो भी घर के सस्कारी व्यक्ति नही चाहते थे कि सौम्या अस्पताल मे अमावस्या को एडमिट हो, पर दुराग्रहों को तोडने वाली सौम्या इन सब बातो को कहा मानने वाली थी।

सौम्या प्राइवेट अस्पताल के सिंगल वार्ड मे बिस्तर पर प्रसन्न मुद्रा मे बैठी सबसे इतनी सहजता से बात कर रही थी जैसे होने वाला आपरेशन उसके लिए बच्चो का खेल है। वैसे भी जिसने जीवन मे पग-पग पर सघर्ष किया था, उसके लिए यह कौनसी बडी बात थी। चारो ओर नाते-रिश्तेदारो,

और यह कहते-कहते बाबूजी खुशी के आवेग मे अस्पताल जाने की तैयारी करने लगे तब भइया ने कहा- "बाबूजी, आप स्वय बीमार हैं। क्यो भीडभाड मे परेशान होते हैं?" तब जाकर बाबूजी शान्त चित्त होकर बैठ गये थे। उस दिन कुम्हार टोली से दुर्गा प्रतिमा निकाल कर पण्डालो में प्रतिष्ठित की गई थी और हमारी सौम्या मृत्यु से साक्षात् संघर्ष करके मुख पर मधुर मुस्कान लिये हमारे समक्ष बिस्तर पर लेटी हुई थी। उस दिन हमें पहली बार लगा था कि माँ दुर्गा की प्रतिमा के पंडाल मे प्रतिष्ठित होते ही जन-जन के मुख पर प्रसन्नता की लहर क्यो थिरकने लगती हैं।

अठारह

सुमि और सुशान्त ने समर्पित भाव से प्रतिबद्ध होकर माधवी का कन्यादान किया था। दस-दस वर्ष का लम्बा अंतराल सुखपूर्वक व्यतीत हो जाने के बाद आगन में फूलो के खिलने के बाद मानो चन्द्रमा को राहू ने ग्रस लिया। पता नहीं वह कौनसी घड़ी या क्षण था, जब अमावस की कालिमा ने उनके जीवन को अन्धकार से आच्छादित कर दिया था। विस्मृत नहीं कर सकी है सुमि उन दिनो को, जब घर में निर्माण कार्य चल रहा था और अचानक पोस्टमैन के मुख से टेलीग्राम की आवाज सुनकर उसका हृदय एकबारगी कांप-सा गया था। तार मे लिखा था-माधवी समाप्त हो गई, विश्वास नही हो रहा था उसे। बार-बार तार पढती, आंखो को मलती, ऐसा कैसे हो सकता है। वह कोमल कलिका माधवी, परिवार की सबसे छोटी, बेटी। हरेक बात पर जिद करने वाली माधवी भला सबसे पहले कैसे जा सकती है? गंगा किनारे स्थित उस घर में आते ही अपनी दुबली पतली काया और सुघड हाथो से घर को सजाती-सवारती, लकवाग्रस्त माँ को नहलाती, चोटी करती, पाउडर लगाती उनकी सबसे प्रिय लाडली माधवी भला इस तरह सबको छोडकर कैसे जा सकती है?

पर यह सच था कि माधवी को काल के क्रूर पंजो ने दबोच लिया था। फोन करने पर जब सम्पूर्ण घटनाक्रम के बारे मे जानकारी मिली तो आत्मा रो पडी थी। वास्तव में जो-कुछ माधवी के साथ हुआ था उस विष वृक्ष का वपन बहुत पहले ही हो चुका था। सयुक्त परिवार मे रहने वाली माधवी घर मे बडे जेठ, जेठानी, अक्सर किचकिच चलती ही रहती थी। यह

दुल्हन को लाने! क्षति तो उनकी हुई है जिनके घर की वह बेटी थी, संतप्त तो वह हुए हैं जिन्होने अपने हाथो से उसका कन्यादान किया था। ज्वाला तो उन भाई-बहनो के हृदय में जल रही है, जो एक ही माँ के पेट से जन्मे थे और एक ही आंगन में खेलकर बडे हुए थे। अनाथ तो वे दोनो बच्चे हो गए हैं जिनकी माँ ने असमय ही इस संसार से विदा ले ली थी। वे अब किसे माँ कहेगे? उनके सिर पर ममताभरे हाथ अब कौन फेरेगा ? उनकी सूनी उदास आंखें हर समय अपनी माँ को खोजती रहेगी, जो अब कभी लौटकर नहीं आएगी।

वह माधवी, जिसे मकर संक्रान्ति के समय गगा की लहरो मे डूबने से सुमि ने बचा लिया था, अग्नि की भेट चढा दी गई थी। पोस्टमार्टम रिपोर्ट यह सिद्ध कर रही थी कि माधवी का जलाकर अन्त किया गया था। बौखला–से उठे थे भइया। सारे परिवार को कोस डाला था।

"अरे एक-एक को जेल में बन्द करवा दूंगा। क्या इसीलिये अपनी बहन को आपके हाथों में सौंपा था। कुछ तो अपने ऊपर शर्म करिये पशुओं जैसा आचरण किया है आप लोगों ने"

पागल की तरह प्रलाप करने लगे थे भइया, पर क्या होना था इन सबसे ? वह तो सदा के लिए सबसे दूर चली गई थी, कभी लौटकर न आने के लिए। परिवार वालो के विरुद्ध मुकदमा दायर करने पर भी वे खुले आम घूमते रहे, जमानत हो गई थी उनकी। पर वे दरिन्दे, जिन्हे कानून कोई सजा न दे सका, क्या ईश्वर उनको क्षमा कर देगा? शायद कभी नहीं। भगवान के घर देर है, अंधेर नही। उनको अपने पापो की सजा इसी जन्म मे अवश्य मिलेगी।

माधवी के पीहर वालों के दिल–दिमाग मे भयंकर भूचाल उठ रहा था। क्रोध का ज्वार इतना तीव्र था कि आसू भी सूख जाते थे। बाबूजी की सबसे लाडली बिटिया, अपने सब भाई-बहनो मे सबसे छोटी माधवी, जो इस ससार मे सबसे बाद जन्मी थी, सबसे पहले ही इस असार संसार को छोड शून्य मे तिरोहित हो गई थी। केवल शेष रह गई हैं उसकी स्मृतिया। पारिवारिक अत्याचारो के दश से वह उबर नही सकी थी और उस दंश का विष इतना गहरा था कि उसने माधवी की जान ही ले ली थी।

सबसे बडी बात तो यह है कि हम नवरात्रि पर अपने घरो मे माँ दुर्गा की प्राण प्रतिष्ठा करते हैं, दीपावली पर लक्ष्मी की उपासना करते हैं, विद्या प्राप्ति के लिए माँ सरस्वती की आराधना करते हैं, पर हमारे–आपके घरो मे

उन्नीस

शक्ति पूजा का पर्व फिर आरम्भ हो गया है आज षष्ठी पूजा है पण्डाल मे। देवी दुर्गा की प्रतिष्ठा का दिवस। पिछले वर्ष षष्ठी पूजा को जब दुर्गा की प्रतिमा पंडाल मे प्रतिष्ठित की गई थी उसी दिन सौम्या भी अस्पताल से पुनर्जीवन धारण कर घर लौट आई थी। दुर्गा तो कालजयी है, उसकी तो प्राण प्रतिष्ठा हर वर्ष होनी ही है, पर सौम्या के शरीर मे तो जैसे सब बीमारियो ने मिलकर अपना घर बना लिया था। अनुशासन से पूर्ण फौजी गणवेश से दीप्त वह सौम्या, जिसकी आवाज मे इतनी कडक थी कि उसके आदेश से एनसीसी की परेड शुरू होती एव विश्राम लेती थी। जिसने इतनी सूक्ष्म विश्लेषण एव पहचान की शक्ति पाई थी कि किसी चेहरे को एक बार देखने के पश्चात् वह लाखो की भीड मे भी उस चेहरे को पहचान लिया करती थी। एक बार जब छात्राओ को लेकर वह नैनीताल एनसीसी कैम्प में गई थी, उस समय उसे एक ऐसा चेहरा मिला जिसे उसने तीस वर्ष पूर्व देखा था पर जिसे देखते ही एकबारगी पहचान कर कह उठी थी कि– "देखो देखो, यह वह व्यक्ति है जिसे मैंने स्कूल मे पढाया था। यह मेरा स्टूडेण्ट रह चुका है।"

और उस व्यक्ति ने इस बात को स्वीकार लिया था। वास्तव मे उनकी पैनी दृष्टि से कुछ भी छिप नही सकता था। बिस्तर पर लेटे रहने पर भी उनकी निगाहे घर के किस स्थान पर क्या हो रहा है, किस कोने मे मैल की परत चढ रही है, कौनसी चीज नष्ट हो रही है, नौकरानी किस प्रकार काम कर रही है। अवांछित तत्त्व तो घर के अंदर प्रवेश नहीं कर रहे हैं? चतुर्दिक उसकी निगाहे चक्कर काटती रहती। रुग्ण अवस्था मे भी सौम्या के मन मे बार-बार एक ही आकाक्षा बलवती हो उठती- किसी तरह मेरी बिटिया नमिता का विवाह हो जाये, उसका कन्यादान अपने हाथो से कर दूं, तो मुझे शान्ति एवं सतोष प्राप्त होगा।

सौम्या इस यथार्थ से भली-भाति परिचित थी कि उसकी साँसो की डोर कभी भी टूट सकती है, क्योकि उसके नाखून और होंठ धीरे-धीरे नीले पडने लगे थे। उसे अक्सर घुटन--सी महसूस होती। ज्यादा घुटन होने पर उसे आक्सीजन का सहारा लेना पडता, लेकिन जब वह सही स्थिति में होती तो हास-परिहास तथा हर तरह की परिचर्या मे भाग लेती। कभी-कभी सौम्या ऐसा विचित्र आचरण करने लगती जो सबको आश्चर्य मे डाल देता।

श्रावण मास की हरियाली तीज सुहागनो का प्रिय पर्व, सौभाग्य का सूचक पर्व। उस दिन सौम्या ने अस्वस्थता के बावजूद भी नयी साडी तथा गहने पहन कर तीज की पूजा की थी और पूजा के पश्चात् संकेत से विनू भइया के पूछने पर कि सौम्या ने उन्हे क्यो बुलाया ? सौम्या ने मद्धिम स्वर मे कहा- 'जरा अपने पैरों को आगे लावो, मैं तुम्हें प्रणाम कर लूं।'

फिर जिस प्रकार सौम्या ने 'गले में आचल लपेटकर एवं सिर पर पल्लू रखकर विनू भइया के पैरों को असीम श्रद्धा से स्पर्श किया था और वह भी सबके समक्ष, ऐसा पहले कभी किया हो याद नहीं पडता। इस दृश्य को देखकर सभी भाव--विह्वल हो उठे थे।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पावन पर्व। ससार को निष्काम कर्मयोग का सदेश देने वाले भगवान श्रीकृष्ण के जन्मदिवस का पुण्य पर्व। स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध सभी के मानस मे भक्ति की सरिता बहाने वाला पर्व। उन योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के जन्मदिवस का पर्व जिनकी बाल क्रीडाओ के सौन्दर्य वर्णन ने कवि सूरदास को हिन्दी साहित्याकाश के प्रदीप्त सूर्य की सज्ञा दी। जिनके भक्तिरस की सुरसरि मे निमग्न होकर सैयद इब्राहीम जैसे महान कवि रसखान उपनाम से विभूषित हुये।

बचपन से ही सौम्या जन्माष्टमी का व्रत करती आई थी। श्रीकृष्ण जन्मोत्सव की सुन्दर झांकी भी सदा वह अपने हाथो से सजाती आई थी। लेकिन इधर जब से अपनी बीमारी के कारण सौम्या ने बिस्तर पकड लिया था, तब वह ठाकुरजी की पूजा मे रखे लड्डूगोपाल को न तो स्नान करा पाती थी और न भोग लगा पाती थी, जब अपना शरीर ही अपने वश मे न हो तब भला देव--पूजा किस प्रकार संभव हो सकती थी। सौम्या बिस्तर पर लेटे-लेटे इसका विकल्प तलाशती रहती थी।

कैसे होगी मेरे गोपाल की आराधना क्या मेरी पूजा बासी ही

रहेगी मेरे भगवान को स्नान और भोग कैसे लगेगा हे ईश्वर आप ही कोई रास्ता निकालिये।

और जहां सच्ची श्रद्धा होती है वहां रास्ता अवश्य मिलता है। उस दिन जन्माष्टमी को प्रात काल की वेला में अपनी पूजा मे रखे लड्डूगोपाल को सौम्या ने छोटी देवरानी पूर्णा की गोद मे डाल दिया था और कह उठी थी– अब से इनकी सेवा–पूजा तू ही करना। मैं तो नहा-धो भी नही पाती हूं। किस प्रकार ठाकुरजी की पूजा करूं और उन्हें भोग लगाऊ? अक्सर मेरे लड्डूगोपाल बिना नहाये धोये एवं भूखे ही रह जाते हैं। अब इनकी सेवा तुम्हारे हवाले है।

छोटी पूर्णा ने बडे आदर के साथ उनके आदेश को शिरोधार्य कर लिया था। भला कैसे न करती, जब इसके पूर्व उन्होने अपने जीते–जागते पुत्र के पालन का दायित्व का भार भी उसे ही सौंप दिया था। जीवित पुत्रिका व्रत हो या अष्टमी का त्योहार, जिस व्रत को करने मे सौम्या असक्षम रही थीं, तब अपने एकमात्र पुत्र के लिए होई अष्टमी का व्रत भी उन्होने पूर्णा को सौंप दिया था। और पूर्णा बेटियो की मॉ होते हुए भी सौम्या के बैटे के लिए होई अष्टमी का व्रत करने लगी उसी श्रद्धा एवं विश्वास के साथ, जिस प्रकार सौम्या करती थी। किसी के भी वरजने पर वह एक ही उतर देती–

मुझे बडी भाभी ने अपने बेटे एव लड्डूगोपाल दोनो की सेवा सौपी है। उनकी आज्ञा का पालन करना मेरा पहला कर्तव्य है।

वह सौम्या, जिसने कभी किसी को पराया नही समझा, जिस दिन से वह विनू के घर मे वधू के रूप मे आई थी तब से सदा अपनी करुणा एवं स्नेह का अक्षय स्रोत भुक्तभाव से प्रवाहित करती आई थी, जिसके ममता सागर मे अवगाहन करके परिवार के सभी लोग उसे मॉ से कम स्थान नही देते थे।

सौम्या ने जब से विनू के संग विवाह करके इस घर मे प्रवेश किया था तब से आज तक वर्षों व्यतीत हो गये, उसने घर के किसी भी सदस्य को पराया नही समझा था। जब उसने नववधू के रूप मे प्रथम बार इस घर मे प्रवेश किया था, उस समय उसके देवर-ननद सब छोटी अवस्था मे ही थे। वह परिवार की सबसे बडी बहू जो थी, वह उन पर अपने भाई-बहिनो जैसा ही असीम दुलार और ममत्व का अक्षय स्रोत मुक्तहस्त से लुटाती रहती। सबके विवाह उसने और उससे छोटी ने अपने हाथो से ही किये थे। विवाह

सौम्या इस यथार्थ से भली-भाति परिचित थी कि उसकी साँसों की डोर कभी भी टूट सकती है, क्योंकि उसके नाखून और होंठ धीरे-धीरे नीले पडने लगे थे। उसे अक्सर घुटन–सी महसूस होती। ज्यादा घुटन होने पर उसे आक्सीजन का सहारा लेना पडता, लेकिन जब वह सही स्थिति में होती तो हास-परिहास तथा हर तरह की परिचर्चा मे भाग लेती। कभी-कभी सौम्या ऐसा विचित्र आचरण करने लगती जो सबको आश्चर्य मे डाल देता।

श्रावण मास की हरियाली तीज सुहागनो का प्रिय पर्व, सौभाग्य का सूचक पर्व। उस दिन सौम्या ने अस्वस्थता के बावजूद भी नयी साडी तथा गहने पहन कर तीज की पूजा की थी और पूजा के पश्चात् संकेत से विनू भइया के पूछने पर कि सौम्या ने उन्हे क्यों बुलाया ? सौम्या ने मद्धिम स्वर मे कहा- 'जरा अपने पैरो को आगे लावो, मैं तुम्हें प्रणाम कर लूं।'

फिर जिस प्रकार सौम्या ने गले में आचल लपेटकर एवं सिर पर पल्लू रखकर विनू भइया के पैरो को असीम श्रद्धा से स्पर्श किया था और वह भी सबके समक्ष, ऐसा पहले कभी किया हो याद नहीं पडता। इस दृश्य को देखकर सभी भाव–विह्वल हो उठे थे।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पावन पर्व। ससार को निष्काम कर्मयोग का सदेश देने वाले भगवान श्रीकृष्ण के जन्मदिवस का पुण्य पर्व। स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध सभी के मानस में भक्ति की सरिता बहाने वाला पर्व। उन योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के जन्मदिवस का पर्व जिनकी बाल क्रीडाओ के सौन्दर्य वर्णन ने कवि सूरदास को हिन्दी साहित्याकाश के प्रदीप्त सूर्य की सज्ञा दी। जिनके भक्तिरस की सुरसरि मे निमग्न होकर सैयद इब्राहीम जैसे महान कवि रसखान उपनाम से विभूषित हुये।

बचपन से ही सोम्या जन्माष्टमी का व्रत करती आई थी। श्रीकृष्ण जन्मोत्सव की सुन्दर झाकी भी सदा वह अपने हाथों से सजाती आई थीं। लेकिन इधर जब से अपनी बीमारी के कारण सौम्या ने बिस्तर पकड लिया था, तब वह ठाकुरजी की पूजा मे रखे लड्डूगोपाल को न तो स्नान करा पाती थी और न भोग लगा पाती थी, जब अपना शरीर ही अपने वश मे न हो तब भला देव–पूजा किस प्रकार सभव हो सकती थी। सौम्या बिस्तर पर लेटे-लेटे इसका विकल्प तलाशती रहती थी।

कैसे होगी मेरे गोपाल की आराधना क्या मेरी पूजा बासी ही

रहेगी मेरे भगवान को स्नान और भोग कैसे लगेगा हे ईश्वर आप ही कोई रास्ता निकालिये।

और जहां सच्ची श्रद्धा होती है वहा रास्ता अवश्य मिलता है। उस दिन जन्माष्टमी को प्रात.काल की बेला में अपनी पूजा मे रखे लड्डूगोपाल को सौम्या ने छोटी देवरानी पूर्णा की गोद मे डाल दिया था और कह उठी थीं– अब से इनकी सेवा–पूजा तू हीं करना। मै तो नहा-धो भी नही पाती हूं। किस प्रकार ठाकुरजी की पूजा करू और उन्हे भोग लगाऊ? अक्सर मेरे लड्डूगोपाल बिना नहाये धोये एवं भूखे ही रह जाते हैं। अब इनकी सेवा तुम्हारे हवाले है।

छोटी पूर्णा ने बडे आदर के साथ उनके आदेश को शिरोधार्य कर लिया था। भला कैसे न करती, जब इसके पूर्व उन्होंने अपने जीते–जागते पुत्र के पालन का दायित्व का भार भी उसे ही सौंप दिया था। जीवित पुत्रिका व्रत हो या अष्टमी का त्योहार, जिस व्रत को करने मे सौम्या असक्षम रही थी, तब अपने एकमात्र पुत्र के लिए होई अष्टमी का व्रत भी उन्होने पूर्णा को सौंप दिया था। और पूर्णा बेटियो की मॉ होते हुए भी सौम्या के बैटे के लिए होई अष्टमी का व्रत करने लगीं उसी श्रद्धा एव विश्वास के साथ, जिस प्रकार सौम्या करती थी। किसी के भी बरजने पर वह एक ही उतर देती–

मुझे बडी भाभी ने अपने बेटे एव लड्डूगोपाल दोनो की सेवा सौपी है। उनकी आज्ञा का पालन करना मेरा पहला कर्तव्य है।

वह सौम्या, जिसने कभी किसी को पराया नहीं समझा, जिस दिन से वह विनू के घर में वधू के रूप मे आई थी तब से सदा अपनी करुणा एवं स्नेह का अक्षय स्रोत मुक्तभाव से प्रवाहित करती आई थी, जिसके ममता सागर मे अवगाहन करके परिवार के सभी लोग उसे माँ से कम स्थान नही देते थे।

सौम्या ने जब से विनू के संग विवाह करके इस घर मे प्रवेश किया था तब से आज तक वर्षों व्यतीत हो गये, उसने घर के किसी भी सदस्य को पराया नही समझा था। जब उसने नववधू के रूप मे प्रथम बार इस घर मे प्रवेश किया था, उस समय उसके देवर-ननद सब छोटी अवस्था मे ही थे। वह परिवार की सबसे बडी बहू जो थी, वह उन पर अपने भाई-बहिनो जैसा ही असीम दुलार और ममत्व का अक्षय स्रोत मुक्तहस्त से लुटाती रहती। सबके विवाह उसने और उससे छोटी ने अपने हाथो से ही किये थे। विवाह

के एक सप्ताह पहले से ही घर मे ढोलक की थाप देने वाले हाथो मे सबसे पहले सौम्या के ही हाथ होते थे।

अस्सी दे दुर जाना। मैं नहीं जाना नहीं जाना।

आदि पजाबी टप्पों का समाँ वे दोनो बहुए ऐसा मिलकर बाधती थी कि सारा घर रगमय हो उठता था। नाचते-नाचते वे दोनों थिरकने लगती और फिर एक-एक को उठा-उठा कर नचाती थी। जब बारात विदा होती और बाद मे गगा पुजइया होती उस समय वे देवी के भक्तिमय गीतो से आकाश को गुजित कर डालती।

आवो मेरी अम्बे आवो महारानी भक्तों के संकट मिटाओ महारानी।

ठेठ पुरबिया भाषा उनके गीतो मे साकार हो उठती --

निबुआ के तरे होके निकली भवानी
हाय निबुआ शीतल करे महारानी

ननदो को वे उसी तरह ससुराल विदा करती, जैसे माँ-बाप अपनी बेटी को विदा करते हैं। कोई भी देवर जरा सा बीमार होता या परेशान होता तो वे उसकी तीमारदारी मे जुट जाती। इसलिये जब उनको यह आभास हुआ कि हमेशा आडी–तिरछी रेखाए खींचने वालाख पोर्ट्रेट बनाने वाला परिमल अपना स्वय का व्यक्तित्व–विकास करने के लिए बाहर की दुनिया को अपने कैमरे मे कैद करने के लिये आतुर है, तो उन्होने झट से उसे कैमरा खरीद कर दे दिया था। हालाकि परिमल बडे भइया विजू के साथ स्टूडियो मे कार्य मे लगा हुआ था और वहा भी पूरी निष्ठा एव लगन से काम करता था, पर उसके हाथो मे आउटडोर फोटोग्राफी के लिए कैमरा आते ही जैसे वह बेताज का बादशाह बन गया। पहले वह सवेरे से नौ बजे रात स्टूडियो मे रहता। दोपहर को खाना खाने घर आता। रात को भी समय पर घर आता, पर जब से उसके हाथो नया कैमरा लग गया था, वह अपनी राते भी स्याह करने लगा था। घर पर न खाकर उल्टा–सीधा बाहर ही ठूस लेता। केवल फोटोग्राफी ही नही, वरन् अपने व्यक्तिगत जीवन मे वह इतना उदारवादी तथा आस्तिक था कि शायद इस संसार मे उसके सामने ईश्वर ने किसी और को नही बनाया था। तभी तो प्रधानमत्री इन्दिरा गाधी की हत्या के दिन, जब देश मे हिसा का दौर फैला था, तब वह न जाने कितनों को मौत के मुह से निकाल लाया था। कितनी की दुकानो को, वाहनो को उसने जलने से बचाया था। उस दिन, जब वह रात अपनी जान पर खेलकर सवेरे घर लौट कर बिस्तर

पर लेटा था तो माँ ने उसके मुंह को देखकर ईश्वर से यही कहा था- हे भगवान मेरे इस परिमल की रक्षा करना, मेरी सम्पूर्ण आस्था का फल इसे देना।

परिमल ने कभी अपनी घर--गृहस्थी की परवाह नही की। उसे कुछ कहने पर वह लापरवाही से कहता कि "इतने वडे लोग वैठे है परिवार के, वे सार-सभाल करे। मेरे को इनका खयाल करने की क्या आवश्यकता है।" कभी उसने पैसो की सचय के ओर ध्यान नही दिया। न अपने लिवास की तरफ उसका ध्यान जाता, न अपने खान-पान की ओर। उसका ध्यान जाता केवल दीन, दुखी असहाय और पीडित लोगों की तरफ। कोई वीमार पडता, चाहे वह रिश्तेदार हो या दोस्त या फिर निकटतम, वह सवसे पहले अस्पताल पहुंचता। किसी को रक्त की आवश्यकता होती, वह सवसे पहले अपना व्लड ग्रुप मिलाकर दान करता। किसी घर से कोई यात्रा निकलती, वह सवसे पहले उसमे जाता। कभी गमगीनी माहौल के चित्र खीचता, कभी शादी--विवाह के चित्रो को अपने कैमरे मे कैद करता। इतना अधिक व्यस्त होने पर वह घर आये मेहमानो की आवभगत मे कोई कसर नही छोडता। उसके पास धन का भडार तो नही पर एक स्नेहशील हृदय अवश्य था, जिस कारण वह वाजार से अच्छी मिठाई खरीद कर लाता और घर आने पर आधी रात को जवरदस्ती उठाकर मेहमानो को खिलाता। दुकान मे वुलाकर विभिन्न कोणो से उनकी फोटो खीचता और उनकी यात्रा को चिरस्थाई बनाता। जव मेहमान घर से विदा होते तो उनको छोडने भी वही जाता, चाहे और कोई जाये या न जाये। वह अपने व्यस्त दिनचर्या के वीच भी समय निकाल कर उन्हे छोडने अवश्य जाता और हाथो से पान खिलाकर उन्हे विदा करता।

बीस

महाशिव रात्रि का पावन पर्व। भगवान शिव के प्रति आस्था की अभिव्यक्ति का पुण्य पर्व। शिव पार्वती के शुभ विवाहोत्सव का महान पर्व। स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध। सभी के मानस मे भक्ति की मंदाकिनी प्रवाहित करने वाला पर्व। कुमारियो की इच्छित वर प्राप्ति की कामना को पूर्ण करने वाला पर्व।

वर्षों से विनू की माँ शिवरात्रि का व्रत करती आई थी। जब छोटी थी तब से आज तक। विवाह भी हो चुका है और सन्ताने भी बडी हो चुकी हैं, पर वह बिना किसी व्यवधान के शिवलिग का पूजन शिवरात्रि पर करती आई थी। और करती भी क्यो नहीं, काशी उनकी जन्मभूमि जो थी वह काशी, जो शिव के त्रिशूल पर टिकी हुई है, जिसका एक-एक कण शंकर के समान पवित्र है। गंगा मे स्नान करके लौटते समय शिवजी पर जल चढाना उनका रोज का नियम था, जिसमे 50-60 वर्षो से कोई विघ्न बाधा नहीं पडी थी, शिव स्तुति का श्लोक भी बचपन से उन्हे कंठस्थ था। उठते बैठते, सोते-जागते वह अहर्निश यही जाप करती रही थी–

नमामि शमीशान निवार्ण रूपम,
विभुम व्यापकम ब्रह्म वेद स्वरूपम

परन्तु जब छोटी बेटी माधवी को श्वसुर गृह विदा करने के पश्चात् उन्हे लकवे का पहला दौरा पडा था तो उस समय उनके मन–मस्तिष्क पर लकवे का असर होने से उन्हे स्मृति–लोप हो गया था। उस समय उनके पैरो ने भी चलना–फिरना बंद कर दिया था। पर उनमे गजब की दृढ इच्छाशक्ति एव आत्मविश्वास था।

तीन मास पूर्व उन्होने सकल्प कर लिया था कि वे जिस शिव स्तोत्र

को विस्मृत कर चुकी हैं, उसे अवश्य पुन कठस्थ करेगी एव अपने पैरो से चलकर शिव मदिर जाकर शिवरात्रि पर जल–दूध का अर्घ्य अवश्य चढायेगी। विस्तर पर पडे उनका मन अकुलाता था। वे वार-वार शकर भगवान की तस्वीर की ओर देखती और एक ही पक्ति वार-वार दुहराती। वे वार-वार भूलती, पर पुनः–पुन वही पक्तियां दोहराती–इस कार्य मे सहयोगी बनी थी उनकी बेटी सुमि। जव वे निराश होकर कहती– 'क्या मुझे इस जीवन मे कभी शिव स्तुति कठस्थ नही हो सकेगी ? तव सुमि धीरज का मरहम लेप करते हुए कहती- "नही माँ, ऐसा कभी नहीं होगा। तुम निराश न हो। तुम्हारी स्मृति मे वह स्तुति फिर से कठस्थ हो जायेगी।'

जब वे निराशा के सागर मे डूब कर रोने लगती और कहती– "क्या मैं अव जीवन मे अपने इन पैरों से चलकर कभी शिव मंदिर तक नही जा सकूंगी ? क्या मेरी पूजा अपूर्ण रहेगी ? क्या मुझे शिव–उपासना से वचित ही रहना पडेगा ?"

उस समय सुमि के शब्द ही उनको आश्वस्त करते। कभी-कभी उन दोनों को देखकर ऐसा प्रतीत होता कि सुमि और उसकी मॉ की काया का रूपांतरण हो गया है। तीस वर्ष की सुमि माँ के लिये बेटी न रहकर माँ वन जाती और मॉ बन जाती एक नन्ही–सी वालिका। वचपन मे जव सुमि चलते समय बार-बार गिर पडती थी और रोने लगती थी तव मॉ ही उसे चलना सिखाती थी। उसके विखरे वालो को एकत्र करके उनकी चोटी गूंथ कर लाल रंग का रिवन लगा दिया करती थी। आज साठ वर्ष की माँ को सुमि चलना सिखा रही है और उनकी चोटी गूथ कर रिवन से सजा रही है। यह रूपांतरण नहीं तो और क्या है ?

परिवार मे सदस्यो की कोई कमी नही थी। लम्बा-चौडा परिवार था उनका। कोई भी वेटा उन्हे गोद मे उठाकर शिव मदिर के दर्शन करा सकता था। वे वाकर की सहायता से प्रात.काल एव संध्या को वाहर मैदान मे हल्का-सा घूम-फिर लेती थी क्योकि डाक्टर ने उन्हे ऐसा करने का परामर्श दिया था। इससे उनके पैरो की कसरत भी हो जाया करती थी। वे उसी साधन के द्वारा अपने दोनो पैरो से चलकर अपनी पूजा के पुष्प चढाने की इच्छुक थी।

और फरवरी 1992 का शिवरात्रि का महापर्व उनके लिये पुनर्जीवन

का संदेश लेकर आया था। उस दिन प्रात.काल उन्हे वह सम्पूर्ण शिव स्तोत्र जैसे ही पक्तिवद्ध सम्पूर्ण रूप मे याद हो आया, वे बार-बार उसी को दोहराती रही। जो आता उसके सामने वही पक्तियां दोहराने लगती। उस दिन उन्होने पूजा की थाली सजवा का मंदिर जाने का संकल्प साध ही लिया। वे वाकर के सहारे दस कदम चलती, फिर विश्राम करने वैठ जाती। फिर आठ-दस कदम चलती और फिर थक कर बैठ जाती। उनके साथ उनके प्रियजन भी चल रहे थे। कही वो रास्ते मे गिर न जाये, उन्हे ठोकर न लग जाये, कहीं उन्हे गाय न मार दे। वे चलते-चलते पसीने से भीग गई पर उन्होने हिम्मत नहीं हारी। पडौसी, राहगीर सब इस अद्‌भुत आस्था को देखकर विस्मित थे। एक घर के सामने सीढियों पर उन्हे बैठाकर लोटे से पानी पिलाया गया और वे फिर चलने को तैयार थी। किसी को भी विश्वास नहीं था कि वे शिव मंदिर तक पहुच सकेगी। कम-से-कम उनके और मंदिर के मध्य आधे मील का फासला तो था ही। पर उस दिन विनू की माँ की अदम्य इच्छाशक्ति और दृढ संकल्प ने उन्हे शिव के द्वार तक पहुचा दिया था। शायद ईश्वर ने ही उन्हे ईश्वरीय शक्ति से सम्पन्न कर दिया था, नहीं तो उन पैरो मे इतनी शक्ति कहां थी कि वे मन्दिर तक पहुच सकते। मॉ ने अपने हाथो से शिव पर अर्घ्य। पुष्प समर्पित करके दीप प्रज्वलित किया था और सम्पूर्ण मदिर की परिक्रमा की थी। शायद ऐसा जुझारू भक्त भगवान के लिये भी अलभ्य होगा। उनके इस कृत्य ने कितने अपग एवं लाचार बेबस लोगों के जीवन में आशा की ज्योति जागृत की थी, शब्दो मे व्यक्त नहीं किया जा सकता। वैसे यह विनू की माँ के द्वारा अर्पित किया गया पूजा का अन्तिम पुष्प था, क्योकि बाद के वर्षो मे विनू की माँ इतनी अक्षम हो गई कि पुन· मदिर नही जा सकी। पर उन्हे अन्तिम क्षण तक यह विश्वास रहा कि उस दिन उनकी पूजा के पुष्पो को आशुतोष शिव ने अवश्य स्वीकार कर लिया होगा।

शिवरात्रि पर भले ही मॉ अपने पैरो से चलकर शंकर भगवान को अपनी श्रद्धा का पुष्प समर्पित कर आई थी पर शायद यह विनू की मॉ के हाथो से की गई अन्तिम ही पूजा थी। उसके पश्चात् माँ ने भी ऐसी निर्विकल्प समाधि ले ली जिससे उबरना मुश्किल था। जिस दिन विनू के बाबूजी को गम्भीर बीमारी की अवस्था मे मॉ ने देखा था और वे अपने को सभाल नही पा रहे थे, केवल बार–बार एक ही बात की रट लगा रहे थे– 'मुझे बडे बेटे

विनू के पास ले चलो, मैं उसके पास जाऊंगा, मेरी तबीयत वहीं ठीक होगी।' उनको बहुत समझाया गया था कि काशी मुक्तिधाम है, अगर कल को कुछ हो भी गया तो आपको यहा शरीर छोड़ने पर मुक्ति अवश्य प्राप्त होगी।

पर शुरू से ही इन तर्कों में विश्वास न रखने वाले बाबूजी जाने की जिद कर ही बैठे थे वे ठीक से न कपडे पहन पा रहे थे और ने अपने रोगग्रस्त शरीर को संभाल पा रहे थे। पर प्रारभ से ही उनके हठ के आगे किसी का वश नही चलता था। किसी तरह वे बेटे के कधो को पकड कर एक-एक सीढी उतरे थे और प्लेटफार्म पहुँचकर सीढियों की रेलिंग पकडकर जिस प्रकार कराहते हुए ऊपर चढे थे, यह उनकी आत्मशक्ति या बडे के पास पहुंचने की ललक का परिचायक था। वे तो किसी तरह बेटे के पास पहुंच गये थे पर उनकी शोचनीय अवस्था और उनकी विवशता का दृश्य देखकर माँ अपने को नियत्रित नही कर सकी थी। और इसकी परिणति यह हुई कि माँ को लकवे का दूसरा दौरा पड गया जिसने उसके हाथो-पैरों को तो सुन्न कर ही दिया, सबसे अधिक उनकी जबान पर असर किया। उनकी बोली बन्द हो गई। वे बिलकुल मूक हो गई थी। उनको आवाज लगाने पर वे केवल चारो ओर ऑखे फाड कर देखती थी। ऐसे समय विनू की माँ की सेवा करना, सबके लिये चुनौती सिद्ध हो रहा था। डा का भी यह कहना था इसकी परिचर्या मे धैर्य और प्रेम तथा स्नेह की आवश्यकता है। इनका कोई इतना अधिक निकटतम है जो अपनत्व से इनके साथ पूर्ण निष्ठा से साथ रह सके तब इनकी स्थिति मे सुधार की सभावना हो सकती है।

कौन था ऐसा? क्या बेटे नही? बेटे तो अपनी गृहस्थी मे रमे हुए थे। उनके पास बाहरी दुनिया के दायित्व भी थे फिर औरत की सेवा औरत ही कर सकती है। बेटी, हां बेटी। बेटी माँ की आत्मा का वास्तविक अंश होती है। हरएक मॉ बेटी मे अपनी प्रतिछाया देखती है। इसलिये सुदूर प्रात मे स्थित बेटी को बुलाया गया। उस समय सुमि ने माँ को जिस अवस्था मे देखा था, वह दृश्य इतने वर्षों के बाद भी उसके स्मृति पटल पर अकित है। केवल शरीर पर ब्लाउज और पेटीकोट था। उस पर एक पतला-सा कपडा ओढ रखा था। चेहरा बहुत ही उदास और रूक्ष, केश मुह पर बिखरे हुए थे जिस खरहरी चौकी पर वे लेटी हुई थी, उस पर एक चादर भी नहीं बिछी हुई थी। पूछने पर पता लगा कि शरीर की समस्त क्रियाएं अनियत्रित होने के कारण

बार-बार बिस्तर खराब हो जाता है। वे कुछ देर अपनी बेटी सुमि और दामाद प्रशान्त को टुकुर-टुकुर देखती रही और फिर एकाएक रो पडी। रोने मे भी आवाज कम थी, मुह ज्यादा खुला हुआ था। रोने की ताकत भी उनमें बहुत कम थी, जबकि वही उनके पास आखिरी अस्त्र था।

मॉ अपने हाथो से खाना भी नहीं खा सकती थी। नित्यक्रिया की स्वच्छता तो अपने हाथो से करना दूर रहा। उनकी जो भी सेवा करता वह स्वय मे परेशान हो उठता। कभी वे दूध पीने से मना कर देती। गिलास उछाल देती। अगर भोजन खिलाने मे थोडी देर हो जाती तो मुंह फेर कर लेट जाती.। खाना उठाकर फेक देती। एक हाथ मे थोडी शक्ति थी, उसी का प्रयोग करती। थप्पड-मुक्का मारने लगती, दांत पीसने लगती। सारे कमरे मे दाल-चावल बिखर जाते, मगर जबरदस्ती उन्हें खाना खिलाया जाता तो वे मुह से ग्रास निकालने लगती। बात-बात में जोर-जोर से मुह फाड कर रोने लगती थी। जब भूख लगती, प्यास लगती या सहज क्रिया करके चुपचाप पडी रहती उस समय वे अपनी अभिव्यक्ति आसुओं के माध्यम से ही करती थी। मॉ की उस अवस्था को देखकर मुशी प्रेमचन्द की लिखी "बूढी काकी" कहानी अर्न्तमन मे बार-बार पुनरावृत्त होने लगती है जो आज भी एक कालजयी रचना है। जिसे सुमि की मॉ ने अपने बाल्यकाल मे पढा और वही कहानी सुमि किशोरवय की छात्राओ को सुना रही है जिसमे एक नारी की विवशता का मार्मिक चित्रण किया गया है।

कहने को तो विनू की माँ बेटी के साथ मरुधरा के उस सुदूर प्रात मे स्वास्थ्य लाभ के लिये जाने को तैयार हो गई थी, पर उनके तैयार होने का प्रश्न ही कहा उठता था, वे तो मौन-मूक निस्पन्द पत्थर की तरह हो गई थी। घरवालो की सभी की इच्छा थी कि वे पूर्व में वहा से स्वस्थ होकर लौटी थी, शायद मरुधरा की स्वास्थ्यप्रद जलवायु उन्हे फिर स्वस्थ कर दे। परिवार के समस्त लोग कटिबद्ध थे उन्हे भेजने के लिये।

केवल मन-मानस से तैयार नही था तो उनका मंझला बेटा परिमल। कभी घर मे एक क्षण के लिए भी न टिकने वाला, हमेशा अपने स्टूडियो और फोटोग्राफी मे व्यस्त रहने वाला परिमल, रात को 11-12 बजे जब स्टूडियो से घर लौटता तो मॉ की सजग आंखे, दुर्बल काया, थरथराते होठ उसकी प्रतीक्षा करते रहते। कुछ अस्फुट शब्दो मे वे बुदबुदाती थी पर अब तो माँ

बिलकुल ही मौन हो गई थी। रात को जब परिमल रोटी खाने बैठता तो माँ को सकेत से पूछता– माँ रोटी खाओगी? और माँ सकेत का उत्तर सकेत से देती हुई नकारात्मक रूप में गर्दन हिला देती। मौन रहते हुए भी माँ के अस्तित्व का एहसास परिमल को घेरे रहता क्योंकि उस समय माँ के सबसे निकट वही था। उसका कमरा ही माँ के कमरे के बिलकुल पास था। रात मे जब भी माँ को शंका निवृत्त होना पडता, उस समय परिमल और उसकी बहू ही माँ के निकट होते थे। इसीलिए दोनो को एक-दूसरे के नैकट्य की अनुभूति थी। माँ का सारा सामान, बिस्तर बंद बॉक्स, सब तैयार कर लिया गया था, पर परिमल बार-बार एक ही बात की पुनरावृत्ति किये जा रहा था– "क्यों माँ, ऐसी अवस्था में काशी छोड़कर जावोगी? अरे लोग तो जीवन के अन्तिम क्षण में मुक्ति पाने के लिये यहा आते है कि गगा के पावन तट पर उन्हे सदा के लिए मोक्ष प्राप्त हो सके और एक तुम हो कि ऐसी अवस्था मे बाहर जा रही हो। मत जावो माँ, मैं तुमसे हाथ जोड कर प्रार्थना करता हूं।" पर माँ तो इस तरह सज्ञाशून्य हो चुकी थी कि उनमें प्रतिवाद करने और अपनी इच्छा-अनिच्छा जाहिर करने की शक्ति ही कहां बची थी। माँ टैक्सी मे बैठ चुकी थी और परिमल की आखे बहुत दूर तक माँ का पीछा करती रही थी। उस समय शायद किसी को भी यह एहसास नही था कि निकट भविष्य मे भवितव्यता ऐसा चक्र रचेगी जिसके आगे सभी के स्वप्न चकनाचूर हो जायेंगे। कल्पनाओ के इन्द्रधनुष अपना रग खो कर निस्तेज हो जायेंगे और रह जावेगा केवल कठोर यथार्थ।

यह बात सत्य है कि मरुधरा के उस सुदूर प्रात की जलवायु माँ के अनुकूल थी। सवेरे की सतरगी किरणे माँ को कमरे से बाहर निकाल लाती, माँ दिनभर रेतीली धरती पर बैठी रहती, शाम को भी बाहर ही रहती केवल संध्या के पश्चात् ही कमरे मे प्रवेश करती।

यह निर्विवाद सत्य है कि माँ से बढकर शुभेच्छु इस ससार मे कोई नही है। जिस तरह ईश्वर अपनी सन्तानों की हित चिन्ता करता है, उसी प्रकार माँ की आत्मा सदा अपनी सन्तानो की हित चिन्ता मे सलग्न रहकर उन्हे आशीर्वाद दिया करती है। सम्भवत नेपोलियन बोनापार्ट ने सत्य ही कहा था–

ईश्वर सब जगह पैदा नहीं हो सकता,' इसलिये उसने माता

की रचना की

तभी कोसो दूर बैठी परिमल की माँ की आत्मा उसके लिए तडप रही थीं। मौन भाव से अशक्त अवस्था मे बिस्तर पर लेटी माँ बार-बार मुह फाड-फाड कर जोरदार स्वरो मे क्रन्दन करने लगती। चुप कराने पर भी चुप नहीं होती। ऐसा लगता जैसे उनके आंतरिक हृदय में दुख का आवेग फूट पडा है, जो आंसुओ की राह बाहर निकल रहा है।

वास्तव मे मॉ का यह रोना अकारण नही था। एक दिन जब दूरभाष पर यह समाचार मिला कि परिमल को कैंसर हो गया है और उनकी जिन्दगी केवल तीस दिन की मेहमान है उस दिन सुमि इस बात को समझ गई थी कि मॉ को अपनी सन्तान के ऊपर आनेवाली विपत्ति का पूर्वाभास हो गया था। मर्मभेदी समाचार सुनकर सुमि भी सन्न रह गई थी। परिमल का वही सूखा उदास मुख उसके नेत्र पटल से नही हटता, कानों में बार-बार उसकी ही आवाज गूजती–

मुझे छोड़कर मत जावो माँ, काशी छोड़कर मत जावो माँ, लोग तो मुक्ति पाने के लिये काशी आते हैं और तुम अपने जीवन के इस उत्तरार्द्ध में काशी छोडकर जा रही हो।

मॉ न उस समय बोल सकी थी और न आज बोल पा रही है। केवल आखो से अश्रु बह रहे हैं, कान उनके अभी भी हर आहट पर सावधान हो उठते है। अवश्य ही माँ के कानो मे भी यही शब्द गूजते होगे।

वह लापरवाह–सा परिमल खाने-पीने से अनजान परिमल, सदा दूसरो के काम के लिये भागने वाला परिमल, हर मगल-शनि को काशी के सकटमोचन मन्दिर की आस्था से परिक्रमा करने वाला परिमल, राखी के दिन सबसे पहले बहनो के घर पहुच कर राखी बंधवाने वाला परिमल, जो कुछ पास मे होता वही मुक्त भाव से दे डालता। एक बार तो रक्षाबधन पर अपने हाथ की नयी घडी ही खोलकर सुमि को दे डाली। मना करने पर कहने लगा– अरे दीदी यह घडी कोई ऐसी-वैसी घडी नहीं है, बिलकुल एक्सपोर्ट माल है। इसका एक भी पुर्जा यहां नहीं मिलेगा।

पर परिमल तेरा इसके बिना काम कैसे चलेगा? दीदी ने कहा।

"अरे दीदी आप बिलकुल ही चिन्ता मत करो, बहुत–से विदेशी फोटो खिंचवाने आते हैं कोई–न–कोई बन्दा फिर दे जायेगा।"

वास्तव मे परिमल को धन का मोह तो था ही नहीं। कभी उसके मन मे रचमात्र के लिये भी यह खयाल नहीं आया कि मैं अपना बैंक बैलेस बनाऊं, आडे वक्त के लिए दो पैसे बचा कर रखूं। वह तो निश्चिन्त था कि भइया-भाभी जाने। उसे क्यो घर की परवाह करनी चाहिये और जब एक मास पूर्व मृत्यु ने कैंसर के रूप मे उसके द्वार दस्तक दी तब भी वह विचलित नहीं हुआ था। एक बार केवल सबको देखने की इच्छा व्यक्त की थी। वह जिस प्रकार सारी उम्र निर्द्वन्द्व और निश्चिन्त होकर जीवंतता से जीया था, उसी जीवतता से मृत्यु की भी प्रतीक्षा कर रहा था। उसे इस पर विश्वास भी नहीं होता था कि किस तरह जरा-सा पेट दर्द होने पर डाक्टर उसे कैंसरग्रस्त घोषित कर देगे और उनकी भोजन नली इतनी विकृत हो जायेगी कि बचाव का कोई रास्ता भी सामने नहीं रहेगा।

परिमल बडी जीवन्तता से मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था। जो भी घर पर उससे मिलने के लिये आता, उसे नाश्ते और खाने के लिये मनुहार करता। जिसको जो पसद था, उसके लिये बाजार से वही चीज मगवाता। उसने कभी भी अपने जीवन मे पुत्र का अभाव अनुभव नही किया। वह सबको अपना परम आत्मीय समझता। परिवार मे सबके साथ मनोविनोदपूर्ण वातावरण बनाये रखता। अगर उसकी बीमारी को लेकर लोग तनिक भी चिन्ता करते तो वह अपने हलके-फुलके हँसी-मजाक से वातावरण सरस बना देता। लेकिन जब उसे दर्द का दौरा पडता तब वह अपने को सभाल नहीं पाता। पर यह कैसा आश्चर्यजनक चमत्कार था कि जब-जब भी उसे दर्द का दौरा पडता और वह जोरो से चीखने लगता, उसी समय कोसो दूर बैठी उसकी माँ अपना पेट और गला पकड कर चीखने लगती। उसे ऐसा लगता जैसे उसे कोई जिबह कर रहा है या उसके गले और पेट पर छुरी से वार कर रहा हो। डाक्टर को दिखाने पर डाक्टर भी रोग का निदान नहीं कर सके थे। कुछ समय पश्चात् वह यथास्थिति मे वापिस आ जाती। दूसरे दिन जब परिमल का हाल-चाल जानने के लिए फोन किया जाता तो भइया यही कहते "कल रात परिमल को भयानक दर्द का दौरा पड गया था। वह बुरी तरह से चीख रहा था।" भइया माँ का कुशल समाचार पूछते। उत्तर मे यही कहना पडता, "कल रात माँ की हालत बहुत खराब हो गई थी, वह जोरो से चीख रही थी। उन्हे शान्त करने के समस्त प्रयास निष्फल हो गये थे।" यह कैसा दुख का

सेतु था जिसने उन दोनो को जोड रखा था और यह घटना इस वास्तविकता को सिद्ध करती है कि वास्तव मे सन्तान माँ-बाप की आत्मा का अंश होती है।

कभी-कभी सोचती हू , काश! एक बार माँ-बेटे का मिलन हो जाता। पर माँ क्या बेटे को इस निरुपाय अवस्था में देख सकेगी ? क्या उसे तिल-तिल करके मौत के मुह मे जाते हुए देख सकेगी ? क्या उनकी छाती बेटे को इस अवस्था मे देखकर फट न जायेगी ? माँ इन सब स्थितियो से अनजान ही रहे तो ज्यादा अच्छा है।

सुमि के मन मे यह भी विचार उत्पन्न होता है कि आज विज्ञान कितना आगे बढ गया है। मनुष्य उसका उपभोग कर सुख-सुविधा के पालने मे झूल रहा है पर क्या वह कैंसर जैसे असाध्य रोगों पर विजय प्राप्त करने मे सफलता अर्जित कर सका है? काश! कोई ऐसी दवा ईजाद हो जाती जिसका प्रयोग करके वे परिमल भइया को मौत के मुंह मे जाने से बचा सकते। पर विधि के विधान के आगे किसका वश चलता है?

इक्कीस

आश्विन मास की नवरात्रि का प्रथम दिवस शक्ति की अधिष्ठात्री माँ दुर्गा की प्रतिमा का स्थापना दिवस। सुमि ने भी नवरात्रि स्थापना के लिए अपने घर–आगन को धोकर साफ कर डाला था। पूजाघर की एक-एक प्रतिमा को प्रक्षालित किया था उसने, यह सोचकर कि आज से नौ दिन तक माँ दुर्गा की आराधना मे रत रहेगी। बाल्यावस्था से ही दुर्गा माता की उपासना वह करती आई थी, पर मानव के सब सोचे हुए सकल्प क्या शत-प्रतिशत पूर्ण हो सकते हैं ? अभी वह कार्यों को समाप्त कर संकल्पित भाव से क्षण–भर के लिये विश्राम ले रही थी कि एकाएक द्वार पर पोस्टमेन का तीव्र स्वर सुनाई पडा– आपका टेलीग्राम है।

हडबडा कर सुमि मुख्य द्वार पर जा खडी हुई। हृदय की धड़कन वेग से चलने लगी थी। हालाकि सुमि तैयार थी इस स्थिति के लिये। अपने प्रियजनों को जिस अवस्था मे छोडकर आई थी, उनका विछोह कभी भी हो सकता था पर तब भी टेलीग्राम हाथ मे आते ही सुमि फफक पडी, ओह यह क्या ? "सौम्या का देहान्त हो गया।"

टेलीग्राम विनू भइया का था। सुमि की आंखो के आगे एकबारगी अंधेरा–सा छा गया। आठ मास से सौम्या भाभी जिस प्रकार दारुण पीडा को सहन कर रही थी। उनकी सांसो की डोर आक्सीजन सिलेण्डर के सहारे चल रही थी। नीले पडते नाखून और रक्तहीन होंठ और बार-बार सांसो का उखडना इस बात का सकेत था कि वह किसी भी क्षण असार संसार के बंधनों को तोड कर चल देगी। उस क्षण कोई भी बन्धन उसे बांध नहीं सकेगा। पति का प्रेम और पुत्र-पुत्रियों का मोह भी उसके पैरो मे बेडी न डाल सकेगा। यही हुआ था, सबको रोता-बिलखता छोडकर सौम्या भाभी अनन्त यात्रा पर चल पडी थी।

विस्मृत नही कर पा रही है सुमि सौम्या के उस रूप को जो केवल उसकी बाल सहेली नही, वरन् माँ सदृश उसे स्नेह से अभिभूत कर दिया करती थी। आखो के समक्ष आगन मे खडी खोईचे (आंचल) मे गुड और चावल भरती सौम्या, उसके पीछे अक्षत उछाल कर उसकी मंगल कामना करने वाली सौम्या, जो विदा करते समय एक ही संवाद दोहराती "छुट्टियो मे आ जाया करो। बुलावे की प्रतीक्षा क्यो करती हो, वह तो महज औपचारिकता है, तुम लोगो के आने से जी लगा रहता है।"

जब उसकी बेटी नमिता के ब्याह मे कार्याधिक्य के कारण सुमि पहुंच नही सकी थी, शगुन के रुपये भेजकर ही सन्तोष करना पडा था, तब पहले तो सौम्या ने शगुन लेने से इनकार कर दिया था, पर किसी के हृदय पर आघात न पहुंचे इसलिये बाद मे स्वीकार कर लिया था, पर वे बार-बार यही लिखती रही- कितना अच्छा होता तुम सब नमिता के ब्याह मे उपस्थित होते। रुपये का महत्व नही होता, उपस्थिति का महत्त्व होता है। मेरे जीवनकाल मे तो यह पहला और अतिम विवाह था। क्या पता इस शरीर का, आज है, कल न रहे।

जब से कोलकता से टेलीग्राम आया था, तब से सुमि के अन्तर्मन मे वेदना की ज्वाला धधक रही थी। इस कमरे से उस कमरे तक बरामदे मे चक्कर काट रही थी पर किसी भी तरह अपने व्याकुल हृदय को धैर्य बधाने में असमर्थ थी। एकात गृह मे उसके आसू पोछे भी कौन। सौम्या के न रहने का समाचार उसे सौम्या के और निकट ले आया था। उसके साथ व्यतीत किये हुए क्षण, उसके साथ गुजरा अतीत, चलचित्र की तरह उसकी ऑखो के समक्ष घूम रहा था। पर नेत्रो से प्रवाहित अश्रुधारा उन्हे धुधला कर जाती थी। वह यह भी जानती है कि दो बजे के पूर्व उसके पति भी घर नही लौटेगे। प्रात वेला मे सूर्यपूजा करके अपने कार्यो से निवृत्त होकर जब सुमि के पति बाहर निकलते हैं तो दो बजे के पूर्व घर नही लौटते थे। इस समय वे कहा उपलब्ध होगे, इसकी भी निश्चितता नही थी। पर यह निर्विवाद सत्य था कि दो बजते ही उनके रोम-रोम में, श्वास-श्वास मे एक ही शब्द गूजने लगता– घर चलो, चलो घर, घर चलो। वहा तुम्हारी प्रतीक्षा हो रही है। कितना ही आवश्यक कार्य क्यों न होता, वे घर अवश्य समय पर पहुचते। सुमि के कान भी उनके वाहन की आवाज सुनने के लिये सजग रहते। अगर कभी-कभार कोई अपरिहार्य स्थिति उत्पन्न हो जाती और वे उसमे उलझ जाते तो दो बजे

के पूर्व ही फोन पर उनकी धीर-गम्भीर वाणी गूज उठती– मुझे आने मे देर हो सकती है, चिन्ता मत करना। सारी व्यवस्था कर लेना।

लेकिन उस दिन सुमि के लिये दो वजे का समय जैसे पहाड वनकर रह गया था। उसके रोम-रोम जैसे कान बन गये थे। जैसे ही दूर से आते उनके वाहन की आवाज सुमि के कानो मे पडी, सुमि के अश्रु की धार और तेज होती गई। अपने–आपको सभालना मुश्किल हो गया था। पति के घर मे प्रवेश करते ही फूट-फूट कर रो पडी थी सुमि। हक्के-वक्के–से रह गये थे सुशान्त, झकझोर कर पूछने लगे सुमि से "क्या हुआ सुमि, क्या बात है।? इतनी बुरी तरह से क्यो रो रही हो? बिना बताये भला मैं क्या समझ सकूंगा" सुमि हिचकते-हिचकते रोये जा रही थी। मुंह से कुछ भी बोलना उसके लिये दूभर था। उसने रोते-रोते टेलीग्राम पति की ओर बढा दिया, पढते ही बोल पडे– ओह, तो इसीलिये रो रही हो कि सौम्या भाभी नही रही। पर यह तो एक–न–एक दिन होना था। कितना कष्ट पा रही थी वे। उनका जीना भी कोई जीना था? वो सुखी थी क्या नो महीने चली हैं वो ऑक्सीजन पर। कितनी मर्मान्तक पीडा सही है। जीवनमुक्त हो गई हैं वह शोक मत करो अपने–आपको शान्त रखो। हमे आज ही प्रस्थान करना पडेगा वहां कोई बडा आदमी नहीं है, जो सबको संभाल सके। रास्ता लम्बा है चलने की तैयारी करो।

बार-बार समझाने पर भी सुमि के आसू थम नही रहे थे। सुशांत ने उसके कधे पर हाथ रखते हुए कहा– सुमि, अगर इसी तरह रोती रहोगी तो तीन दिन का सफर कैसे कटेगा ? इस तरह तो तुम बीमार पड जावोगी। धैर्य से काम लो और अपने मन-मानस को मजबूत करो।

हृदय पर भारी बोझ लिये सुमि तैयारी मे जुट गई। जाने वाला तो चला जाता है, अपनी सारी व्यथाए, कथाएं साथ लेकर, पर उसके पीछे रहने वालो को अपना दैनिक कार्यक्रम उसी गति से सम्पूर्ण करना पडता है। शायद यही ससार की परिपाटी है।

ट्रेन मे रास्ते–भर सुमि और सुशांत केवल सौम्या और विनू की ही बाते करते रहे जैसे सब ओर से ध्यान हटकर केवल एक ही ओर ध्यान केन्द्रित हो गया हो। किस तरह सौम्या उत्साहित होकर शादी-विवाह में सबसे पहले ढोलक पर थाप लगाती थी। किस तरह एन.सी.सी. आफिसर बनी सौम्या के एक संकेत मात्र से पूरी की पूरी परेड रुक जाया करती थी। किस तरह

सौम्या बीमार अवस्था मे भी घर का ध्यान रखा करती थी। आपरेशन थियेटर मे होश आने के पश्चात् जिसका ध्यान सबसे पहले विनू की नई शर्ट, की ओर गया था जो छोटी-छोटी तकलीफो का ध्यान रखती और सदा दूसरो की तकलीफें दूर करने मे लगी रहती थी। परिवार में सबको ममत्व का अक्षय स्रोत मुक्तहस्त से लुटाने वाली सौम्या उनसे हमेशा के लिये दूर चली गई है। जहां सौम्या नही होगी वह घर कितना सुनसान होगा। सौम्या के बिना उस घर की कल्पना भी उन्हें दुश्वार लग रही थी। जब उनकी यह स्थिति है तो क्या स्थिति होगी उन लोगो की, जिनके समक्ष सौम्या ने अन्तिम श्वास ली होगी। उन्हे लगा, जैसे भरे सागर मे से पतवार उनके हाथो से छूट गई है।

लेकिन जैसे ही विनू भइया के घर मे प्रवेश किया, वैसे ही लगा कि सौम्या तो सामने बैठी है। बार-बार आंखों को मलती, पर सामने सौम्या ही दिखाई पडती। पर ऐसा कैसे हो सकता है? विनू भईया ने समाचार गलत दिया होगा। पर तुरन्त ही शका का निवारण हो गया। वह सौम्या की सहोदरा शैला थी जो बहन के न रहने का समाचार सुनकर आई थी और दोनो की आकृति हाव-भाव एक समान होने से शैला को देखकर सौम्या के अस्तित्व का भान होता था। तब एकाएक चीत्कार फूट पडा, जिसे सम्भालना मुश्किल था।

विनू भइया उसी काष्ठ शैया पर बैठे हुए थे जिस पर सौम्या अन्तिम क्षण तक पडी हुई थी। सुशात को देखकर विनू अपनी जगह से उठकर उनके गले लग गये और सुशांत ने उनके कधो को पकड लिया। वहां उपस्थित जनो ने कहा- तीन दिन से विनू भइया इसी चौकी पर बैठे है, आज पहली बार उठकर बाहर गये है।

और फिर सिलसिला चला बातो का, पूर्व स्मृतियो का। काम भी क्या था! जाने वाले तो चले गये थे। शेष रह गई थी केवल उसकी कथाए।

कहते हैं सौम्या जिस तरह जीवन-भर अनुशासित रही, उसी तरह उसने अन्तिम वेला मे भी अनुशासन को नहीं तोडा। शायद उसे पता था कि उसकी बीमारी मे विनू भइया की सारी छुट्टियां समाप्त हो चुकी हैं और उन्हे कोई भी छुट्टी नही मिल सकेगी इसलिये जिस दिन उसका देह विसर्जन हुआ उसी दिन से एक मास की पूजा की छुट्टियां शुरू हुई थी।

नवरात्रि का प्रथम स्थापना दिवस था वह, जब स्टाफ के समस्त लोग अपनी पुष्पाजलि अर्पित करने उसके गृह तक आ सके थे। जिस समय

बाईस

वास्तव में सच पूछा जाये तो विनू की माँ गंगा किनारे उस घर के लिये भाग्यवान अवश्य सिद्ध हुई थी। जब तक माँ उस घर में रही, कभी कोई अप्रिय घटना घटित नहीं हुई। विषाद की काली छाया उस घर की सीमा मे प्रवेश नहीं कर सकी थी। जितने भी काज, घर मे हुए वे सब सुखद और शुभकारी ही थे। विनू, विजू, परिमल, बिंदु, मनु पांचो बेटो का ब्याह, सुमि, कामिनी, अर्पिता, माधवी की शादिया, उनके बाल-बच्चो का होना, घर मे शहनाई की गूज, बधावे के गीत, बाल-बच्चो की किलकारिया गूजती रहती।

पडौसी भी उस घर के सुख से ईर्ष्या करते हुए कहते– 'कितना अच्छा भाग्य पाया है विनू की माँ ने। दामाद ऐसे मिले हैं जैसे साक्षात् विष्णु का अवतार। बहुए जैसे साक्षात् सरस्वती का स्वरूप हो। सारे घर के लोग कैसे सुखसागर मे हिलोरे ले रहे हैं। एक हम है जिनके जीवन मे एक क्षण के लिये भी सुख–शान्ति मयस्सर नही है।'

उनका यह कहना भी जायज था। जिस स्त्री का पति उसे अपशब्द और गालियो से विभूषित करता हो, उसके माँ-बाप तक को गाली देने से नहीं छोडता, शराब के नशे मे धुत होकर उसके ऊपर थप्पड, घूंसे की वर्षा करने लगता, आक्रोश मे आकर कपडो एवं नोटो को भी फाड डालता, उसकी पत्नी के मुह से ये बाते निकलना जायज ही था। जिसका घर हर समय युद्ध का मैदान बना रहे उसे दूसरो को फलते-फूलते देखकर ईर्ष्या होना स्वाभाविक है और यह स्त्रियो का सहज स्वभाव है कि पराई थाली में घी कुछ ज्यादा ही दिखाई पडता है।

पर जब माँ को माधवी की विदाई के बाद लकवे का पहला दौरा पडा था तो ऐसा लगा कि उस घर की सुख-शान्ति को किसी की नजर लग

ने अपनी जडे बहुत गहरी जमा रखी थी कि जीवन यात्रा के अन्तिम पडाव मे बेटो के कन्धो पर जाने से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है पर विनू के बाबूजी, जिनके व्यक्तित्व मे आधुनिक और प्राचीन दोनो का समन्वय था, माँ को पत्र मे सदा एक ही बात लिखते–

'यह बात गलत है कि मुनष्य को अन्त मे उसकी सन्तान ही मुक्त करे तो सद्गति मिलती है। मान्यताए इससे अलग भी हो सकती हैं। जिस धरती पर बीज अंकुरित होता है, उसी धरती पर उसके शरीर का अश मिल जाये तो जन्म सार्थक हो जाता है।

माँ को प्रतीक्षा रहती हर सप्ताह आने वाले बाबूजी के पत्र की, जो उनके लिये सजीवनी का काम करता। जिसे माँ बार-बार पढती, फिर तकिये के नीचे छिपाकर रख देती। समय मिलने पर चुपचाप बैठी रहने पर बार-बार उसे निकाल कर पढती। क्योकि वह केवल पत्र ही नही था, सबके बीच समाचारो को देने वाला एक सेतु था जिससे माँ हर बेटे-बेटी को अपने नजदीक अनुभव करती थी। जिस सप्ताह पोस्टमैन पत्र नहीं लाता, तब वह सकेतो से पोस्टमैन को पत्र के लिये भी पूछ लिया करती थी। लेकिन यह माँ–बेटे के रिश्ते का कैसा सेतु था कि जिस रात कैन्सर से संघर्ष करते-करते परिमल ने व्याकुल होकर पीडा से चीत्कार किया था उसके गले मे घबराहट–सी होने लगी थी। उसी रात माँ गले से कुछ भी चाय-पानी हलक से नीचे नही उतार पा रही थी। उनके गले से गो-गों-गो की आवाज निकल रही थी। माँ की नाजुक स्थिति का हवाला देते हुए जब भइया से फोन पर सम्पर्क किया गया तो यही विदित हुआ कि परिमल की हालत बहुत नाजुक है, वह जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहा है।

तेईस

वह फागुन मास के प्रारम्भ के दिन थे। न गरमी, न सर्दी, बल्कि गर्मी ही दस्तक दे रही थी। सब ओर फागुन की फगुनाहट छाई हुई थी। चग,ढोल–ढमाको की आवाज, गीत गाते हुए रसियो की टोली वातावरण को रसमय कर रही थी। मौसम तो अपनी मस्तानी चाल से आ ही रहा है। उसे क्या पता कि जिस समय चारो ओर मस्ती का आलम छाया हुआ है उस समय कुछ ऐसे भी घर हैं जहा के लोगो के दिलो मे वेदना और पीडा की होली

जल रही है। जहां रग की पिचकारिया उनके दिलो को रस से भिगोती नही हैं अपितु काल की क्रूर मार उनके अन्तर्मन को वीध रही है।

वही परिमल, जो होली के हफ्ते भर पहले से रंग की तैयारी करता, लोगो को हँसाने के, रगने के नये-नये तरीके ईजाद करता था, दर्दनाक अवस्था मे विस्तर पर पडा तडप रहा था कि उसकी दशा देखने योग्य नहीं थी। कलेजा मुह को आता था उसकी अवस्था देखकर। सुमि माँ को छोडकर अन्तिम समय मे परिमल भैया का दर्शन भी नही कर सकी थी। छोटी वेबी से ही सारा वृत्तात मालूम हुआ था। उस दिन प्रात. का सूरज शोक का सन्देश लेकर आया था जव सुमि को फोन पर ज्ञात हुआ कि परिमल नहीं रहा। कैसे समझाये वह अपने को और कैसे सात्वंना दे अपनी उस मौन, सुध-वुध खोती हुई ममतामयी को। वह तो इतनी वेसुध–सी है कि उसे यह भी ज्ञात नहीं कि आज उसकी ममता का पुष्प मुरझा कर धरती की मिट्टी मे विलीन हो गया है। शायद परिमल उसे इसीलिए वरज रहा था कि वह काशी छोड न जाये, पर उसे क्या पता था कि यह परिमल के आखिरी वचन थे जो उसकी माँ ने अपने कानों से सुने थे। अव कभी वो आवाज सुनाई नहीं देगी जो यह. कहेगी- माँ हमे छोडकर मत जाओ। माँ उसे छोडकर चली आई तो उसने इतना वडा दण्ड दिया कि वह उसे छोडकर चला गया और उसकी कोख को सूनी कर गया। जब तक वह जीवित रहेगी उसे यही दंश सालता रहेगा कि काश! वह परिमल का कहा मान लेती। काश! वह उसे छोडकर नही आती।

विनू के वावूजी कोलकाता महानगर में अपने वडे वेटे विनू के पास रह अवश्य रहे थे, पर उनका मन अपने विहार स्थित छोटे–से गाव मे रमा हुआ था। विनू की माँ दूरस्थ मरुस्थल मे अपनी सुमि के घर मे थी, पर हर समय अपने वेटे-वेटी की चिन्ता मे लीन रहती थी। हर सप्ताह वावूजी का जो पत्र आता वह जैसे उनकी अनुभूतियो का जीवित दस्तावेज था। कभी वे पत्र मे लिखते–

'मेरा वेटा वहुत सेवा करता है, नया कम्वल मेरे को लाकर दिया है। मुझको टॉनिक के रूप मे हमेशा कमप्लान पिलाते हैं, आप भी अपनी माताजी को यही टॉनिक पिलाया कीजिए।'

कभी पत्र मे लिखते– 'मुझको ज्योतिषी ने कहा है कि मैं अभी पाच वर्ष और जीवित रहूगा, आपकी माताजी का स्वस्थ होना मेरे लिये वहुत वडी

नियामत है। पर अगर मैं चलूगा-फिरूंगा नही, दिन–भर मैं घर मे बैठा रहूगा तो समय से पहले समाप्त हो जाऊगा।'

कभी वे लिखते- 'पहले मैं डेयरी से या ग्वाले के यहा से दूध ले आता था, बाजार से घूम-फिर कर सलकिया चौरस्ते से सब्जी ले आता था। लिलुआ तक टहलने चला जाता था, पर अब बेटेजी मुझको घर से बाहर नहीं निकलने देते हैं। कहते हैं, बाबूजी अगर सांड सींग मार देगा तो हाथ-पैर टूट जायेगे।'

पत्रो से लगता था कि बाबूजी अजीब मनःस्थिति मे जी रहे थे। उनके पास ज्ञान का अथाह भण्डार था, पर उसको ग्रहण करने वाला वहां कोई नही था। उनके पास अनुभवो की लम्बी शृखलायें थीं, पर उनसे लाभ उठाने वाला कोई नही था। अपनी दिन–भर की व्यस्त दिनचर्या से बोझिल विनू भइया उनके स्वास्थ्य के प्रति गभीर रहने के सिवा और कर ही क्या सकते थे। अपने रक्त से पोषित अपनी सन्तानों के शीश पर हाथ फेर उनका मन स्नेह से द्रवित हो उठता था। यही तो उनकी आकांक्षाओं को पूर्ण करेगे।

देश के चारो कोनो मे बसी अपनी सन्तानो के कुशलक्षेम का समाचार जानना और उन्हे समाचारो से अवगत कराना जैसे उनके जीवन का उद्देश्य था। उनके पत्र, पत्र न होकर सबके बीच मे एक सेतु थे। जिससे वे सब बधे हुए थे और वे इन सबके सम्बन्धो के बीच की एक महत्त्वपूर्ण कडी थे, जिनके पत्र उनको अपने अस्तित्व का, अपनी उपस्थिति का सुखद एहसास कराया करते थे।

चौबीस

उस दिन सुमि हतप्रभ–सी रह गई थी। आश्चर्य भी हुआ था, पर आक्रोश का ज्वर इतना तीव्र था कि अपने साथ सब कुछ बहाकर ले गया था। गनीमत यही थी कि आंखो मे ठहरे अश्रुबिन्दु कपोलो तक नही आ सके थे। शायद ऐसा होना उसकी दुर्बलता होती और दुर्बलता चाहे शारीरिक हो या मानसिक, उसमें रंचमात्र भी नही थी। बचपन से ही वह संघर्ष करती आई थी सामाजिक वर्जनाओ के विरुद्ध, प्रतिबद्धता के विरुद्ध। अध्यापिका थी वह। जब उसे अध्यापन व्यवसाय से जुड़े दो वर्ष भी नहीं हुए थे, उस समय भी उसने उन अश्लील व्यग्य बाणो के प्रति क्रान्तिकारी आवाज उठाई थी, जो विद्या मन्दिर के पवित्र प्रांगण मे गूजती रहती थी। सहकर्मी सुमि को सावधान करते–

क्यो आगे कदम बढा रही है? अपने पैरो पर कुल्हाडी मार रही है। अरे, जो कुछ भी गलत-सही हो रहा है, उसे चुपचाप देखती रह। नहीं तो किसी दिन नौकरी से कार्यमुक्त कर दी जाओगी।

लेकिन उसे तो केवल चिन्ता थी अध्ययन-अध्यापन की। वह विद्यालय को माँ वीणापाणि का पावन मन्दिर एवं शिक्षण व्यवसाय को एक पवित्र व्यवसाय मानती थी। जीवन के बीस बसन्त इस व्यवसाय मे व्यतीत कर चुकी थी। सुख-दुख, आशा-निराशा, उत्थान-पतन, सबके बीच से वह गुजरी थी। पर उसने अपनी आत्मा का हनन कभी नही किया था। जहा भी वह गलत होते देखती, उसकी धमनियो मे रक्त उबल पडता था। शायद उसके ऊपर अपने पिता[का सर्वाधिक प्रभाव था, जिन्होने इतिहास सेतु मे नये अध्याय जोड कर गलत मान्यताओं को सदा नकारा था या उसके पति की अदम्य प्रेरणा थी जो उसे सकल्पित होने के लिए आत्मबल प्रदान करती थी।

कभी-कभी एकान्त मे बैठी सुमि सोचती है, क्या त्रुटि हुई थी उससे, केवल यही कि वह एक सवेदनशील नारी थी। उसका कवि हृदय उन मासूम बालिकाओ को तेज धूप मे बैठा देखकर रो पडता था। वे रुमालो से अपनी फ्राक के कोनो से पसीने, पोंछती रहती, कक्षा-कार्य करते समय उनकी कापिया पसीने से भीग जाती, अक्षर धुधले पड जाते। बार-बार माथे पर आये पसीने को पोछती और पाठ पढती रहती। जब दोपहर को तेज धूप पडने लगती, उस समय वे बरामदे मे जाकर खडी हो जाती, वर्षा होती तब वे बरामदे मे आकर खडी हो जाती। कमरे मे बैठी कक्षाओ को उनके आने से व्यवधान होता, उनकी पढाई मे बाधा पडती, पर किसी को उनकी इस अवस्था पर तरस नही आता था। किसी को यह फुर्सत नहीं थी कि वह देखें कि बच्चे किस हाल मे बैठे पढाई कर रहे है। वे कन्याए, जिन्हे नवरात्रि में देवी मानकर पूजा करते हैं, उन्हें भोजन कराते हैं नये वस्त्र धारण करवाते हैं, वे तेज धूप मे बैठने को विवश थी। यह सही है कि अध्ययन श्रमसाध्य होता है। सुविधा पढाई का पर्याय नहीं हो सकती। अगर ऐसा न होता तो बडे-बडे राजपुत्र गुरुकुल मे पढने क्यो जाते और साधारण बालको की तरह श्रमजनित अध्ययन न करते, पर वहा तपोवन तो थे, जहा वृक्षो की शीतल छाया थी, जिनके नीचे उनकी कक्षायएं लगती थी। गुरु का सद्व्यवहार सदा उनका मार्ग प्रशस्त करता था।

वह जुलाई मास का सबसे गरम दिन था। उस दिन विद्यालय मे अकस्मात् उच्चाधिकारी द्वारा निरीक्षण किया गया था। अधिकारी ने तेज धूप में तप्त छात्राओं की व्याकुलता को देखा था और उसकी तपन का एहसास भी किया था। धूप मे झुलसती छात्राओ मे से एक छात्रा अधिकारी के समक्ष ही अचेतन हो गई थी। स्थिति की गम्भीरता को उन्होने समझ लिया था और जो आदेश जारी किये थे उनसे सभी छात्राओ को बैठने के कमरे उपलब्ध हो सकते थे, जिससे उनकी अध्ययनशीलता मे व्यवधान उत्पन्न न हो।

आदेशो की अनुपालना की गई थी पर उसमे भी कुछ विशेष लोगो की सुविधाओ एव हितो को समाहित कर लिया गया था। जिससे किशोर वय प्राप्त छात्राओ के अस्तित्व पर फिर सकट गहरा गया था। छात्राओ को बैठने के लिए कमरे अवश्य मिल गये थे पर सामूहिक हित की उपेक्षा करके व्यक्तिगत स्वार्थो को प्राथमिकता दी गई थी।

और इस पक्षपातपूर्ण रवैये से सुमि और भी आदोलित हो उठी थी। और इससे भी अधिक आघात सुमि को तब लगा था, जब सबने एकपक्षीय

होकर उसके ऊपर आरोपो की झडी लगा दी थी। समूचा तन्त्र जैसे पगु हो गया था। अपनी-अपनी सुविधाओ को प्राप्त करने की होड मे सब लोग उसी पर दोषारोपण कर रहे थे। प्रधान ने भी कोई प्रतिवाद नही किया था। कोई निष्कर्ष नहीं दिया था। केवल सिर हिलाकर, मौन साध कर लिखित आदेश–भर निकाल दिया था। सुमि की आन्तरिक भावनाओ को समझने का प्रयास किसी ने नही किया था। सहकर्मी उसके साथ वर्षो से काम करते आये थे। उन्होने भी उसे आरोपो के कटघरे मे खडा करने को मजबूर कर दिया था सुमि यह अच्छी तरह जानती है कि उसने कही कुछ भी गलत नहीं किया था। केवल उन मासूम कलियो को तेज धूप मे झुलसने से बचाना चाहा था। वह सत्य और न्याय के मार्ग पर चल रही है। जो व्यक्ति सत्य की राह पर चलता है, उसके मार्ग मे सदा काटे बोये जाते हैं। सुमि को भी चेतावनी दी गई थी कि उसे यह सब–कुछ बहुत महगा पडेगा, उसे नुकसान उठाना पडेगा।

सुमि के हृदय मे आक्रोश की ज्वाला फूट पडी थी। उसे आर्थिक क्षति पहुचाकर दण्डित करने का प्रयास किया गया था। इतने हादसों से घिरी उसकी मन स्थिति को काश किसी ने जानने का प्रयास किया होता। जिन लोगो के हृदय से मनुष्यता का लोप हो चुका है, उन्हे दूसरो के दुखों से क्या मतलब। सबसे बडा सच तो यह है कि अगर हम किसी को सुख नही पहुंचा सकते तो हमे किसी को दुख पहुचाने का अधिकार भी नही है, अगर हम किसी के घावो पर मरहम नही लगा सकते तो उसके घावो पर नमक छिडकने का हमे क्या अधिकार है? यह अधिकार तो उस परम पिता ईश्वर, को है वह चाहे जिस हाल मे मनुष्य को रखे।

इसके बाद शुरू हुआ था असहयोग का सिलसिला। उसको तथा उसके अधीनस्थ शिक्षिकाओ तथा बच्चों को इस तरह अलग-अलग करके फेक दिया गया था जैसे कोई अपने घाव से भरे अंगो को काट डालता है। एक अदना–सा कर्मचारी भी उसके आगे चाबियो का गुच्छा फेककर और स्कूल को छोडकर चला जाता, न कुर्सी, पर अधिकारी मिलते न कार्यालय मे लिपिक वर्ग। सारा विद्यालय साय-साय करता, गूजते केवल छात्राओ के स्वर। तब भी उसने विरोध का स्वर मन्द नही किया था। उसने भी निश्चय कर लिया था कि वह उनके द्वारा आयोजित समारोह मे भागीदारी नही निभायेगी और एक-एक दिन करते शासन तंत्र परिवर्तित हो गया था। उसे अब प्रतीक्षा थी एक नये सूरज की, जो अंधकार को हटाकर नव आलोक को विकीर्ण कर सके। जो अव्यवस्थित तन्त्र को एक व्यवस्थित रूप दे सके।

ऐसा नया सूरज, जो अन्याय, अत्याचार को भेद कर ज्ञान रश्मियों से हर दिशा को उजियारे का संदेश दे सके। और उसे विश्वास है कि एक–न–एक दिन उस नये सूरज का आगमन होगा, अवश्य होगा, क्योंकि उसे तलाश है एक नये सूरज की।

पच्चीस

शिव के त्रिशूल पर स्थित काशी और शिव का प्रसाद शिवप्रसादसिंह/ दोनो जैसे एक–दूसरे के पर्याय। एक–दूसरे से आत्मीयतापूर्ण अटूट सम्बन्ध। काशी की गलियों मे घूमते, उसे अपनी अनुभूतियों में उतारते, काशी की पतितपावनी गंगा को विभिन्न रूपो मे रूपायित करते, जिन्होंने काशी को जीया और पूरी निष्ठा के साथ उसे अपनी रचनाओ मे उतारा। गली आगे मुडती है, "शैलूष", नीला चॉद" जैसे उपन्यासो के प्रणेता डॉ. शिवप्रसादसिह नही रहे। सुमि ने समाचार जब 28 सितम्बर को प्रात. समाचार पत्रो मे पढा तो हृदय पर एक गहरा आघात लगा, इसके पीछे सबसे बड़ी भावना यह थी कि 24 सितम्बर को सुमि का वाराणसी के लिए ट्रेन मे आरक्षण था, पर विपरीत परिस्थिति के कारण उसे निरस्त करना पडा, अन्यथा 25 सितम्बर को उसका उनसे साक्षात्कार अवश्य होता।

सुमि काशी की जन्मी–जाई, वाराणसी से प्रकाशित दैनिक "आज" मे बाल कवयित्री के रूप स्थापित, परिवार की सबसे बड़ी कन्या। गंगा के तट पर स्थित उसका घर, जहां हर वर्ष बाढ अपनी सभी मर्यादाओ को तोडकर नदी उसके घर को द्वीप की सज्ञा दे जाती।

डा शिवप्रसादजी विजू भइया के परम मित्र। जब भी घर पर कोई आयोजन या समारोह होता, अवश्य उपस्थित होते और चिर परिचित सहजता एवं आत्मीयता से एक ही प्रश्न पूछते- "क्या चल रहा है? कुछ नया लिख रही हो क्या ?

जब सुमि ने 1989 मे प्रकाशित अपना प्रथम काव्य संग्रह "अनुभूति के स्वर" उनके हाथो मे दिया तो वे कहने लगे– "बहुत अच्छा प्रयास है सुमि, पर ऐसा है कि तुम गद्य में लिखो। गद्य मे अनुभूतियो को सघन विस्तार के अवसर मिलते है, क्योकि उसका कैनवास विस्तृत होता है।" विजय भइया के विजय स्टूडियो से उनका आवास कोई विशेष दूर नहीं था। वाराणसी मे

स्थित लका पर अक्सर विजय भइया के स्टूडियो मे साहित्यिक संवाद हुआ करते थे। सम्पूर्ण साहित्य जगत् इससे परिचित है कि पारिवारिक बोझ से बोझिल होकर कुछ समय के लिये उनके साहित्यकार हृदय ने मौन साध लिया था। सृजन के कार्य से लम्बे समय तक वे विमुख रहे, विजय भईया अनवरत उनसे यह अनुनय–विनय करते रहते– "डॉ. साहब लिखियेगा, लिखना ही धर्म और कर्म है। हम सब आपसे कुछ नये लेखन की अपेक्षा रखते हैं।" इस संवाद का उनके मौन जगत् पर गहरा प्रभाव पडा, और उन्होने उच्चकोटि के "नीला चाँद" उपन्यास की रचना की, जिसे व्यास सम्मान से विभूषित किया गया था। उनकी यह रचना कालजयी हो गई। पर रंचमात्र भी अहम् भाव उन्हें स्पर्श नहीं कर सका था।

सुमि पर असीम कृपा और स्नेह होने के कारण अनुजा मानकर हमेशा वे रचनाधर्मिता की ओर प्रेरित करते रहे। उनका स्नेह का प्रवाह उसके मानस तटो को सदा ही आप्लावित करता रहा। इधर वह अतीत की घटनाओ, संस्मरणो, शब्दचित्रो को कहानियो को आकार देती रही। सन् 1992 मे जब सुमि ने अपने कहानी संग्रह "माटी की गन्ध" की पाण्डुलिपि उन्हे आशीर्वचन लिखने के लिये दी तो वे प्रसन्नता के अतिरेक से भाव विह्वल हो उठे। उन्होने "शिवास्ते पंथा" शीर्षक से जो आशीर्वचन दिए हैं और पुस्तक के सन्दर्भ में लिखा, उसने उसे नित नई प्रेरणा दी।

इस कार्य में विजय भइया का योगदान भी कम नहीं था, उन्होने ही उन्हें आशीर्वचन लिखने के लिए प्रेरित किया। आज उनके द्वारा दिए हुए आशीष वचन का उल्लेख करना सुमि अपनी रचनाधर्मिता का महान् प्रसाद मानती हैं। इस समय तो उनका स्थूल शरीर नही है, केवल शब्द ही उनके सूक्ष्म शरीर के परिचायक और साक्षी हैं।

सुमि की अद्यतन कहानियो का सग्रह "माटी की गंध" पाठको के हाथो मे सौंपी जा रही है। एक सुदूर अचल मे, जो हिन्दी क्षेत्र से बहुत दूर हैं, बैठी हुई लेखिका जब अपनी अनुभूति से उभरे घर–आंगन की बात करती है, तो स्वय मे अपने–आप रचनाधर्मी बन जाती है, और उसे लोकार्पण के समय किसी चलते नारे की कोई जरूरत नही है। पारिवारिक तनाव और उसकी झेलने की क्षमता तथा उसे अभिव्यक्त करने की शक्ति कथा लेखिका मे स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि यह छोटा–सा कहानी संग्रह दुरूह राह चलने वालो के लिये पाथेय बन सकेगा।

–डॉ. शिव प्रसाद सिंह

उन्होने मुझे सम्वोधित करते हुए कुछ मार्गदर्शन भी दिया और कहा– तुम उपन्यास अवश्य लिखना, जो धरती की गंध से जुडा हो। जिसमे जन जन के सुख-दुख समाहित हो। और यह उनकी प्रेरणा का ही प्रतिफल हैं कि सुमि "दंश" उपन्यास लिखने मे जुट गई। अभी तक केवल उसके सौ पृष्ठ ही लिख सकी है। इसमे उसने सामाजिक, मानसिक, पारिवारिक दंश से पीडित अनेक पात्रो की अन्तर्वेदना को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। जब-जब यह उपन्यास लिखने बैठी, उसकी यही इच्छा रही हैं कि इसके सम्पूर्ण होने पर, प्रकाशित होने पर इसका लोकार्पण करने के लिए शिवप्रसादजी को बीकानेर अवश्य आमन्त्रित किया जाये, पर उसकी यह आकांक्षा अपूर्ण रह गई जब यह सुना कि वे नहीं रहे। काश! उसकी आकांक्षा फलवती हो जाती। जीवनपर्यन्त अपनी रचनाओ में काशी को जीने वाले शिवप्रसादजी अन्त मे काशी की मिट्टी मे ही विलीन हो गए, और गगा मइया ने उनकी भस्म को अपनी गोद मे समेट लिया।

छब्बीस

सांवला रग, बडी-बडी सतेज आखें, जो भी उसे देखता, उसकी निगाहे उसकी आंखो पर ही ठहर जाती। रग भले ही सावला था, पर चेहरा ऐसा कि एक बार उसे देखने को विवश होना ही पडता था। बडे भइया विनू के बाद जब उस घर मे इस बालक का जन्म हुआ तो माँ के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। मॉ उन दोनो को प्यार से नहलाती-धुलाती, काजल का डिठौना लगाती और उन्हे लव-कुश की जोड़ी की सज्ञा दिया करती। छोटे का नाम रखा गया बिजू और विनू और बिजू जहा भी जाते, साथ–साथ जाते। जब प्रेम करते तो लगता, इनके समान किसी ने प्रेम नहीं किया गया होगा और जब लडते तो एक–दूसरे के जानी दुश्मन बन जाते। उस समय कहते, "माँ, या तो इस घर मे विनू रहेगा या बिजू।" पर मॉ जानती थी कि यह क्षणिक गुस्सा है। आवेश है, जैसे ही क्रोध का ज्वार उतरेगा, वे एक दूसरे की बांहो मे बांहे डालकर ऐसे चल देगे जैसे उनके बीच कभी कोई झगड़ा हुआ ही न हो।

दोनो भाइयो के स्वभाव मे अन्तर यह था कि विनू भइया पढाई के प्रति गभीर थे पर बिजू भइया के लिये पढाई गौण थी। बचपन से ही वे नाटक, पिक्चर, चित्रकला के शौकीन थे। रास्ते मे अगर नौटकी देखने को मिल जाती तो उनके लिये पढाई कुछ मायने नही रखती थी। अगर पिक्चर हाल मे नयी पिक्चर लगी है तो उन्हें उसका प्रथम दिन, पहला शो देखना ही था, पढाई इसमे किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नहीं कर सकती थी।

उन दोनो के पास बहुत–से सवालो से बचने के लिये एक धारदार अस्त्र और था और वह थी उनकी बहन सुमि। बडे भइया विनू जहां रात को कीर्तन मे जाते, वहीं बिजू भइया नाइट शो मे पिक्चर देखने चले जाते, पर अनुशासनप्रिय बाबूजी के पूछने पर कि वे दोनो भाई कहां गये हैं और इतनी रात गये भी अब तक घर क्यो नही लौटे है, सुमि यही उत्तर देती–

"दोनो भइया कीर्तन मे गये हैं, देर से घर लौटेगे।" वैसे बाबूजी को मन्दिर में कोई आस्था नहीं थी और सच पूछे तो वे मदिर कभी जाते भी नही थे। कीर्तन का भी उन्हे शौक नही था। पर पिक्चर का नाम सुनने पर उनके क्रोध का ठिकाना नहीं रहता था। इसलिये यही उत्तर रटा-रटाया दिया जाता था।

विजू भइया और सुमि कॉलेज मे एक ही कक्षा मे रहते भी विजू भइया की टीचर सुमि को ही बनना पडता था क्योंकि उन्हे कॉलेज जाने की फुर्सत ही कहां थी। बाबूजी कहा करते- "किसी तरह ग्रेज्युएशन कर ले, किसी काम–धंधे में लग जायेगा।" पर उनके लिये तो पढाई जैसे एक खानापूर्ति करना था। परीक्षा के समय विजू भइया सुमि से रात–भर पढायी करते और जितना आवश्यक समझते थे, उतना ही याद करते। अगर सुमि कुछ सीमा से अधिक व्याख्या करती तो विजू भइया तुरन्त डांट लगाते– क्या बक-बक कर रही है? इतनी पंडिताई क्यो छांट रही है? तुझसे कहा है न कि छोटे मे प्रश्नोत्तर समझा। पर तू तिल का ताड और राई का पहाड किये जा रही है।

कभी–कभी सुमि सोचती है कि क्या विजू भइया को इसका आभास था कि वे ऐसी लाइन पकडेगे कि जिसका पढाई से कोई संबंध न रहेगा और सुमि को वास्तव मे पंडिताई ही छाटनी ही पडेगी। पर कुछ घटनाएं भविष्य के गर्त मे छिपी रहती हैं। जिनका पता नही होता है, पर नियति का चक्र उसी के अनुसार चलता रहता है।

विजू भइया ने बी.ए. की पढाई किसी तरह पूरी करके जीवन मे कुछ करने का खयाल किया तो ध्यान मे आया कि एक बार महानगर कोलकाता मे जाकर भाग्य क्यो न आजमाया जाये। क्योकि वहां पर अपने लोग थे, घर था, भाई थे और उनकी लाडली सुमि। इसलिये किसी प्रकार का कोई व्यवधान नही था। कोलकोता मे उन्हे टीचर की नौकरी भी मिल गई पर पेट की बीमारी ने विजू भइया को ऐसा जकडा कि यह नौकरी उन्हे रास नही आई। नौकरी तो वे नही कर सके पर उनके जीवन मे एक ऐसी युवती का आगमन हो गया जिसने उनके जीवन की दिशा ही बदल दी थी।

गुडिया की तरह सजी–सवरी, गोरे रंग की, आकर्षक चेहरे, सुन्दर भाव–भगिमा वाली नीरा ने जैसे उनके सम्पूर्ण अस्तित्व को सम्मोहित–सा कर दिया था। वे एक–दूसरे के निकट आते गये। इसमे भी उनके बीच कडी बहन सुमि ही थी। जिसके घर पर वे दोनो मिलते थे। इस मिलन की शुभ

परिणति यह हुई कि नीरा दीदी सुमि की दीदी न रहकर नीरा भाभी बन वैठी। उनके जीवन की डोर विजू भइया के संग बंध गई। आर्यसमाज रीति से दोनों का विवाह संस्कार सम्पन्न हो गया था। वैसे उन दोनों के मन इतने अविछिन्न रूप मे एकाकार हो गये थे कि उनके विवाह संस्कार के सिवा कोई रास्ता नहीं था।

पर विजू भइया को कभी भी अपने निर्णय पर पश्चात्ताप नहीं करना पडा क्योकि नीरा भाभी ने परिवार की सभी जिम्मेवारी सभाल ली थी।

परिवार में सुख का अवसर आता तो भाभी ठप्पे लगाकर ढोलक वजाकर नाचने लगती। दुख का अवसर आता तो घर से अस्पताल तक उनके कदमी चकरी की तरह चलते रहते। केवल एक सुमि वहन का ही व्याह तो उनके आने के पहले हुआ था, बाकी छः भाई-बहनो के शादी विवाह तो सौम्या एवं नीरा भाभी ने ही मिलकर सम्पन्न करवाये थे।

किस रिश्तेदार को क्या देना है, मंडप कहां वनेगा, शादी मे क्या पकवान वनेगा, क्या-क्या तैयारी करनी है, गहने बनवाने हैं, कपडे खरीदने हैं, इन वातो की चिन्ता अगर किसी को थी, तो उन दो भाभियो को। जब तक शादी-ब्याह का काम पूरा नहीं होता ननदों की विदाई नहीं होती, देवरानी बहू वन कर घर नहीं आ जाती, उनका एक पैर घर मे और एक वाहर रहता। जहां देखो, हर कोई उनके मुंह से निकले आदेश की ही प्रतीक्षा करता।

जब से विनू भइया कोलकाता महानगर चले गये थे, तब से नीरा भाभी की जिम्मेदारियो मे और भी इजाफा हो गया था। विजू भइया सव कामो से वेखबर पैन्ट की जेव में हाथ डाले, टाई लगाये हुए घर के वाहर वरामदे मे चहल–कदमी करते रहते और पूछते, "सब इन्तजाम हो गया?अगर कोई कमी रह गई हो तो आप समझियेगा।"

कोई कमी-बेसी रहने पर जिम्मेदार नीरा भाभी ही ठहराई जाती। विजू भइया के लिये तो नाटक और फिल्म जगत् उनके जीवन का अविभाज्य अंग न चुका था। वाराणसी मे भोजपुरी सिनेमा को नूतन आयाम देने का कार्य भी विजू भइया बडी एकाग्रता से कर रहे थे। "नैहर की चुनरी", "अंचरा की लाज" जैसी भोजपुरी फिल्मो मे विजू भइया के सफल निर्देशन ने पूरविया समाज की छवि को जीवन्त करके रख दिया था। याद है सुमि को वह दिन भी, स्थानीय सिनेमा हॉल मे जब "अंचरा की लाज" पिक्चर लगी हुई थी, विजू भइया परिवार के सभी सदस्यो को उसे दिखाने ले गये थे और फिर खूव खुश होकर सबको भरपेट नाश्ता कराया था। कितने खुश थे विजू भइया

उस दिन! उनके रोम-रोम से प्रसन्नता फूटी पड रही थी। माँ बीमार थी, इसलिये वे सबके साथ न आ सकीं थीं, तो विजू भइया उनसे हँसकर बोले थे– "अब आप घर में बैठ कर चौधराहट करिये।"

इतनी कार्य व्यस्तता के बीच, कला जगत् मे डूबे रहने पर भी भइया स्टूडियो आते-जाते माँ की कुशलक्षेम पूछना नहीं भूलते। "क्यो कैसी तबीयत है। अरे भाई चलिये घूमिये? क्या चौधरानी की तरह पालथी मारे बैठी रहती हैं। अगर माँ जरा–सी भी बैचेनी अनुभव करती तो वे होमियोपैथिक दवा का डिब्बा लाते और उसे खोलकर माँ के सामने बैठ जाते तथा अपने हाथो से माँ को दवा देते। क्योंकि विजू भइया होमियोपैथिक की किताबों का सूक्ष्म अध्ययन करके इस क्षेत्र मे भी सफलता हासिल कर चुके थे।

दूसरों की छोटी से छोटी गतिविधियों का वे सूक्ष्म अध्ययन करते थे। जब छोटी बहन माधवी के हाथ पर उसकी जेठानी ने काट लिया था तब उन्होने यही कहा था- "अलग हो परिवार से। नही तो इसका बुरा परिणाम होगा।" तो माधवी ने कहा था- "वह सीर का घर है। कैसे अलग हो जाये, उसका भी हिस्सा है, उस घर में। और वास्तव में माधवी सदा के लिये सबसे दूर चली गई थी। विजू भइया बहुत आक्रोश में थे उस समय और अपने आक्रोश को उन्होने चिल्ला–चिल्ला कर व्यक्त किया था। "एक-एक को जेल मे भिजवा दूंगा आखिर समझ क्या रखा है।"

पर सबसे बडी आश्चर्य की बात तो यह है कि जो विजू भइया दूसरो के लिये इतने समर्पित थे! वे स्वयं अपने स्वास्थ्य के प्रति इतने लापरवाह क्यो हो गये थे! भइया आवश्यकता से अधिक काम करते। स्टूडियो मे फोटो कॉपी निकालना, पिक्चर का निर्देशन करना, रात्रि को घर मे देर रात तक नाटक का रिहर्सल करना। डॉक्टर अगर उन्हे विश्राम की सलाह देता तो वे यही कहते– आराम के लिये समय कहा है, डाक्टर। नाटक अधूरा पडा है। इसे पूरा करना है। तारीख लेनी है, हॉल बुक कराना है। पर क्या समय किसी की प्रतीक्षा करता है। वह तो पंख लगाकर उडता है। कितना मनहूस था वह दिन जब सुमि स्कूल से घर लौटी थी और दिन के चार बजे ही फोन की घटी घनघना उठी थी, सुमि कंपित हो उठी थी। दिन के समय फोन! एक अनजानी आशका–सी व्याप्त हो गई थी नस-नस में। कांपते हाथो से फोन उठाया, संदेश मिला– "विजू भइया नहीं रहे।" ओह! यह क्या हो गया?, कैसे हो गया?, पूछने पर समाचार ज्ञात हुआ कि हृदयाघात ही विजू भइया को लील गया। दूसरो के लिये जीवन–भर दौडने वाले, दवा बाटने वाले उस

भइया को अस्पताल की सुविधाए तक मुहैया न हो सकी। हॉस्पिटल के गेट मे घुसने के पूर्व ही उनका प्राणान्त हो गया था। कितनी विडम्बना थी कि भाईदूज के दिन भी भइया का माथा सूना ही रहा था और जब बहन उनको टीका लगाने पहुंची थी तो वे इस संसार से सूने माथे ही सदा के लिये विदा हो गये थे। पर अपने पीछे जो यश की अमर गाथा वे छोड गये हैं, उसे कौन धूमिल कर सकता है। समय की रेत भी उसे धूलि–धूसरित नहीं कर सकेगी। अखबारो के मुखपृष्ठ पर बडे–बडे अक्षरों मे उनके प्रति श्रद्धाजलि व्यक्त की गई थी।' काशी की कला को आघात''। तुम्हारे जाने से सभी की आंखे नम थीं, सबके दिल उदास थे। तुम एक स्तम्भ के रूप में थे जिसने काशी के कला जगत को नया आयाम दिया था। हर छोटे-बडे को जिस तरह तुमने अपने सर-आंखों पर बैठाया था, वह तुम्हारे न रहने का समाचार सुनकर भागता चला आया था। स्थान-स्थान पर फूलमालाएं लिये तुम्हारे अंतिम दर्शन के लिए लोग खडे थे। सबसे बडा आघात तो यही था कि तुम्हारी जिन्दगी का नाटक अभी पूरा ही नहीं हुआ था कि उसके पहले ही नियति ने पर्दा गिरा दिया था। यह पटाक्षेप समय से पहले हो गया था। काश! तुम कुछ और वर्ष जी जाते तो कला की चरम उपलब्धियो को अवश्य हासिल करते।

सत्ताईस

आज एक मास होने को आया, विनू के बाबूजी का कोई पत्र नही आया। माँ सवालिया निगाहों से सुमि को देखती, पोस्टमैन को पुकारने लगती पर उनकी कल्पना के अनुरूप उत्तर नहीं मिलने पर उनकी भावुकता चरम सीमा पर पहुच जाती। माँ की इस अशक्त अवस्था मे जो घटित घटना घट चुकी थी उसके सत्य से भइया ने दूरभाष द्वारा हमे परिचित करा दिया था। भैया–भाभी माँ को लेने भी आये थे ताकि वे दृश्य का पटाक्षेप अपनी आंखो से देख सके और सत्य से उनका साक्षात्कार हो जाये पर डाक्टर के कथनानुसार माँ को किसी प्रकार का भी मानसिक आघात नही पहुंचना चाहिये। इनके समक्ष आप किसी भी घटना का उल्लेख न करे तो ज्यादा अच्छा है, ये जिस अर्द्धचेतन अवस्था मे हैं, उनको ऐसे ही रहने दे, वे जो इच्छा व्यक्त करती हैं उनको पूरा करे।

हम सबने हृदय पर पत्थर रख लिया था। अन्दर हम घर के कोने मे जाकर मुंह छिपाकर रो लेते थे। किसी में इतनी हिम्मत नहीं थी कि माँ को सत्य का ज्ञान करा सके और अगर माँ के सामने यथार्थ का उद्‌घाटन होते ही माँ ने प्राण त्याग दिये तो फिर माँ की मृत्यु के लिए उत्तरदायी कौन होगा?

पर उन परम्पराओ का क्या करे, जिनका माँ पचास वर्षों से पालन करती आई हैं? वे परम्पराए उनकी दिनचर्या का अश बन चुकी है। माँ अपने मस्तक पर बार-बार हाथ लगाती हैं, माग मे सिन्दूर लगाने का संकेत करती हैं। जीवन–भर माँ ने बिना माग भरे कभी खाने की थाली को छुआ भी नही था। पाच वर्ष से बिस्तर पर पडी माँ हाथ–मुंह साफ कर चुकने के बाद माँग मे सिदूर लगवा कर ही थाली छूती थी। जब माँ बिलकुल चैतन्य अवस्था मे थी, तब सब भाई-बहिन माँ से बार-बार पूछते– 'माँ तुम बिना माँग भरे रोटी क्यो नही खाती हो ?'

पहले तो माँ इस बात को टाल जाती, पर जब हम पीछे पड जाते तो माँ कहती- 'माँग में सिन्दूर लगाने से सुहाग बना रहता है और पति की आयु लम्बी होती है।'

और वास्तव मे माँ मृत्युपर्यन्त सौभाग्यवती ही बनी रही। उनके रोने, जिद करने पर बार-बार माँग भरने के आग्रह पर हमें उनकी माँग में सिन्दूर भरना ही पडता था भले ही इसके लिए हमे अपने उमडते आसुओ को रोकना पडा था। न जाने कितनी बार ऐसा करते समय हमारे हाथ कांपे होगे, पर माँ अपने अर्द्धचेतन जगत् में सुहागिन के रूप मे ही जीवित रही। माँ के पैर से बिछुवा बाहर निकल पडता, माँ अपने पैरो की अगुली की ओर सकेत करती। रो-रो अपनी सूनी अंगुली दिखाती और हम कम्पित, वेदनापूर्ण हृदय से नई बिछुवों की जोडी माँ को पहना देते।

सुमि को अभी भी याद है माँ, हमेशा हाथो में कांच की चूडियां पहनती थी। जब तक तक वे सारी मौल न जाये, तबतकवे चूडी बदलती नही थी। पर अब हमने माँ के हाथो से चूडी निकालकर प्लास्टिक के कगन पहनाये तो माँ बार-बार हाथ झटकती रही। रो-रो कर सबको अपना हाथ दिखाती रही, तब हमने माँ को यही समझाया।

माँ तुम बार-बार हाथ को झटका देती है। इसलिए काच की चूडी चल नहीं पाती है, टूट जाती है, यह कगन बार-बार नहीं टूटेंगे।

वास्तव मे वे माँ को जीवन के अन्तिम क्षण तक वास्तविक सत्य का ज्ञान नहीं करा सके थे इसलिये जब माँ को इन घटनाओं से अनभिज्ञ रखना ही है तो क्यों न इस घटनाक्रम को उपन्यास के अन्त में ही रखा जाये। जिसको लेकर इस उपन्यास की रचना की गई है और जो केन्द्र-बिन्दु है क्यों न इसकी सम्पूर्ति भी वही करे, इसलिये बिना सत्य का उद्घाटन किये माँ को वापस अपनी उसी जन्मभूमि पर ले आते हैं जहां की वह लडकी थी, जहा की धूल में वह रमी हुई थी, जहां वह बहू बनकर आई थी और जहां उसने वटवृक्ष की तरह अपनी जडो को फैलाया था।

शिव के त्रिशूल पर स्थित मोक्षदायिनी काशी, जहां माँ का सम्पूर्ण जीवन व्यतीत हुआ। विधाता फिर उन्हे उसी स्थान पर ले आया था क्योकि डाक्टर का भी यही कहना था।

माँ को अपने बेटो के बीच रहना चाहिये। अन्त समय वहीं पर सबके बीच रहकर उनकी अन्तरात्मा शान्त रहेगी और वही उनको मोक्ष की प्राप्ति होगी।

लेकिन जब माँ ने काशी स्थित गंगा किनारे बसे अपने उस घर मे प्रवेश किया तो सबसे पहले उनकी नजरे बरामदे में पडी खाली चौकी की ओर गई। फिर पास वाले कमरे मे खाली पडी खटिया पर उनकी निगाह पडी। वे बार-बार संकेत से उन पर सोने वालों के बारे मे पूछती पर उन्हें हर बार यही उत्तर मिलता- 'वे दोनों बाहर गये हैं। रात को घर देर से लौटेंगे।'

पर माँ हर रोज उस खाली चौकी और खाली खाट की ओर संकेत कर उनके बारे मे पूछती तो घर के लोग कहते-

'कोलकाता गये हैं वहीं पर विनू भइया ने रोक लिया होगा।'

माँ दिन भर जागती रहती। वे आ जायेंगे और माँ का हाल-चाल पूछेगे। उस घर मे वर्षो से प्रत्येक के सोने का स्थान निश्चित था, इसलिए दिन-रात खाली पडे स्थानों को देखकर माँ प्रश्नवाचक निगाहो से सबकी ओर बारी-बारी से देखती। घर के सारे सदस्य चोर निगाहों से एक-दूसरे को देखते हुए गर्दन नीचे झुका लेते।

माँ परिमल की उस फोटो की ओर बार-बार संकेत करती जिसमे उसकी दाढी बढी हुई थी। घर के हर सदस्य से सांकेतिक भाषा मे उसके बारे मे पूछती, पर सब निरुत्तर हो जाते।

सुमि मरुधरा के उस दूरस्थ प्रात मे बैठी अवश्य थी पर उसके मन–प्राण मे हर समय माँ की आकुल आकृति ही बसी रहती। चाहे वह किसी भी काम में क्यो न लगी रहती, पर उसके समक्ष समस्त घटनाए चलचित्र के दृश्य की तरह घूमती रहती।

वह सोचती, जब माँ काशी पहुंची होगी और वहां पर कुछ लोग उसे कभी नहीं मिलेंगे तो वह कितनी दुखी हुई होगी। उन्हें सब बातो से अनभिज्ञ रखा गया है पर वह उनकी प्रतीक्षा करती होगी क्योकि वह ऐसे स्थान पर चले गये हैं जहा से कभी कोई लौटकर नही आता है। उसकी कल्पना मे अनेक चित्र उभरते। कभी माँ भइया की फोटो की ओर देखकर संकेत करती है, कभी माँ मंझली भाभी के गले मे मगलसूत्र न देखकर रोने लगती, उसका गला टटोलने लगती, विनू की माँ कभी अपनी मॉग मे सिदूर लगाने का संकेत करती, कभी मझली के मंगलसूत्रविहीन गले की ओर इशारा करती लेकिन प्रत्युतर में घर के लोगो की आखो से बहते हुए आसुओ को देखकर आश्चर्य से मुंह बाये सबकी ओर देखने लगती।

सुमि सोचती, कब छुट्टियां हो और वह मॉ के पास पहुचे। आखिर मे जब दशहरा अवकाश पडा तो सुमि दो दिन का रास्ता तय कर मॉ के पास

पहुची तो उसको देखते ही माँ मुंह फाडकर रो पडी। केवल आजा-आजा शब्द उनके मुंह से निकल रहा था। माँ के शरीर पर केवल पेटीकोट और ब्लाऊज था। एक तौलिये से अपने सिर को ढकने का असफल प्रयास करते हुए भी वे उसे ढक नहीं पा रही थी, सिर बार-बार उघड जाता था और वह बार-बार उसे ढकने का असफल प्रयास कर रही थी। शायद वह अपने केशविहींन सिर को छिपाना चाहती थी। माँ लगातार रोये जा रही थी, उस केशरहित चेहरे को देखकर सुमि का रोम-रोम चीत्कार कर उठा था। कहा गयी माँ की वह सिन्दूर से दपदपाती माँग, लाल रिबन से गुथित चोटी, माथे पर बडी–सी लाल टिकुली, कुछ भी नहीं था उनके चेहरे पर। कभी माँ अपनी माँग दिखाकर रोती, कभी मंझली की ओर इशारा करती, कभी परिमल की फोटो की ओर सकेत करती, कभी सूनी चौकी की ओर इशारा करती और फिर रोने लगती। उनके रुदन में सबका रुदन शामिल हो गया था। माँ को कुछ न बताने पर भी मर्मभेदी विलाप इस बात का संकेत दे रहा था कि माँ ने अपना बहुत–कुछ खो दिया है। लेकिन इस विषम स्थिति में भी घर के सारे सदस्य माँ को आश्वस्त करने में लगे हुए थे। बडी भाभी कहती– 'अम्माँजी, बाबूजी कोलकाता गये है विनू भइया के पास। आप कोलकाता जायेगी तो वहां बाबूजी आपको मिल जायेगे।'

मंझली भाभी कहती– 'अम्मांजी, आपके बेटे गांव गये हैं, खेती–बाडी संभालने के लिये, आखिर किसी–न–किसी को तो जाना ही पड़ेगा।'

छोटी पोतियां दोनो हाथों से उनके आंसू पोछते हुए कहती– 'दादी, आप मत रोइये। आप रोयेगी तो हम भी रो पडेगे, चुप हो जाइये न दादी।'

माँ अपने सिर पर बार-बार हाथ रखकर इशारा करती कि देखो, मेरे बालो को काट दिया गया है। पूछने पर उत्तर मिला कि– 'हम लोग क्या करते, अम्माजी के बालो मे फोडे हो गये थे। सिर ठीक से धुल नहीं पाता था, गरमी बहुत पडने लगी थी इसलिये सफाई रखने के लिये बालो को कतर दिया था।'

पर माँ इन सब बातों को क्या समझे, जब उनका रोना सीमा पार करने लगता तो मझली अपने नवजात शिशु को माँ के पास सुला देती। माँ अपने दुर्बल और लुंज-पुंज हाथों से उसे थपकियां देने लगती। माँ को तो यह भी ज्ञात नहीं था कि यह उनके मंझले पुत्र परिमल की आखिरी निशानी है।

इस जिन्दगी पर किसी का वश नही है। हाथ-पैरों से विवश, मौन–मूक विनू की माँ अपनी बेबस जिन्दगी के दिन घिसट-घिसट कर काट

रही थी। वह अपने दैनिक कार्यों के लिए भी दूसरों पर आश्रित थी। एकमात्र रुदन ही उनके पास हथियर था। भूख लगे तो, प्यास लगे तो, विस्तर गीला हो जाये तो सब की अभिव्यक्ति वह रोकर ही करती थी। घरवालो की अपनी-अपनी समस्याए थी। मझली का वच्चा छोटा था। उसे नर्स की नाइट ड्यूटी भी करनी पडती थी। वडी भाभी आप बीमार रहती। विजू भइया की तबीयत अचानक ही विगड जाती। उन्हे जव-तव मेडिकल एड देनी पडती। चार बच्चो की जिम्दारी, उनकी पढाई-लिखाई, भइया का नाट्य एवं फिल्म निर्माण का शौक, जिसमे भाभी को हाथ वंटाना ही पडता। थक–हार कर कोलकोता फोन किया गया कि अच्छा होगा वडे भइया माँ की सेवा का जिम्मा अपने ऊपर ले ले। हम लोग अपनी परिस्थिति के आगे हथियार डाल चुके हैं, हो सके तो वडे भइया आकर माँ को कोलकाता ले जाये।

इन बातो को सुनकर विनू भइया के मानस मे विचारों का झंझावात–सा छा गया था। भइया अभी सौम्या भाभी की मौत के हादसे से उबर भी नहीं पाये थे। छोटी बेटी मनीषा को समय के क्रूर हाथो ने, माँ की लगातार बीमारी ने और फिर उनकी मृत्यु ने जैसे एक बालिका को अल्पायु मे ही जिम्मेदार महिला का रूप दे दिया था। घर का सामान लाना, भइया और पापा का खयाल रखना, धोबी और अन्य खर्चों का हिसाब रखना, अपनी स्वयं की पढाई, घर आये मेहमानो की आवभगत, सबने मिलकर जैसे उस अल्पवयस्क बालिका को असमय मे ही गभीर व्यक्तित्त्व का स्वामी बना दिया था। वह बार-बार पापा के चेहरे की ओर देखती। पापा के चेहरे पर तनाव की, परेशानी की लकीरे स्पष्ट उभरी हुई दिख रही थी। वे सोचते–पत्नी-विहींन इस घर मे वह कैसे माँ की देखभाल कर पायेगे, अभी तो उसे गुजरे दो मास भी नही हुए है। चौकी पर उसके शरीर होने का भ्रम होने लगता है, बच्चे हर समय मॉ की ही बात करते हैं।

मम्मी होती तो ऐसा होता, वैसा होता, विस्तर पर पडे-पडे ही अनेक तरह की डिश बनने का आर्डर हो जाता। होली, दिवाली, नववर्ष सब रस्मे मॉ विस्तर पर पडे-पडे ही करवा लेती।

क्या करे विनू भइया? इन सबको अपने भरे हृदय से सात्वना दे कि एक जिम्मेदारी मे और इजाफा कर ले? आखिर वे परिवार के सबसे बडे बेटे हैं, उनका भी तो कुछ कर्तव्य है। उस समय उन्हे उस ऊहापोह, मानसिक द्वन्द्व की स्थिति से मनीषा ने ही उबारा था।

"पापा ले आओ न दादी को कोलकाता। जैसा होगा, देखा जायेगा, हम सब मिलकर देखभाल कर लेगे।"

उस समय उस छोटी–सी लडकी का आत्मविश्वास एवं साहस देखकर विनू भइया स्तंभित रह गये थे। उन्हे लगा था उसके सामने सौम्या एन सी सी. आफिसर के रूप में खडी है और कह रही है– यार, चिन्ता न करो। सव ठीक हो जायेगा। गो ऑन। अरे यार, चिन्ता न करो। लेट अस गो ऑन। सब ठीक हो जायेगा।

माँ, जो जीवनपर्यन्त काशी नहीं छोडना चाहती थी, आखिर उन्हे अन्त समय मे नियति कोलकाता महानगर में खींच लाई थी। जब विनू भइया के बच्चे छोटे थे तो कितना प्रयास किया था भइया ने कि मॉ उनके पास आकर रहे, उनके बच्चों को संभाले। छोटे को कितनी मुश्किल से पाला था भइया ने। भाभी के स्कूल जाने के बाद उसको लटकाकर रेलवे क्वार्टर ले जाना, साथ में दूध की बोतल और कपडे। दोपहर को उसे वापिस लाना क्योकि घर मे कोई उसे देखने वाला नही था। उस समय भी माँ कोलकाता रहने को तैयार नहीं हुई थी क्योकि काशी माँ के रोम-रोम मे बसी हुई थी। वहा का संकटमोचन मन्दिर, काशी विश्वनाथ उनकी आस्था के केन्द्रविन्दु थे, जहां दर्शन करने मे असहाय होने पर भी वे घर वैठे हाथ जोडकर अपने मानस में उनके दर्शन कर लिया करती थी। लेकिन सभी को इस बात का सन्तोष था कि माँ अब अपने बडे वेटे के पास आ गयी है। उनका अन्तिम समय सुख से व्यतीत होगा और यहा उनकी सेवा हो सकेगी।

लेकिन कोलकाता स्थित उस रेलवे क्वार्टर मे जब माँ ने प्रवेश किया तो सब ओर आंखे फाड-फाडकर देखती रही पर उन रिश्तो की भीड मे उन्हें वे पुष्ट हाथ दिखाई नहीं दिये जो एन सी सी. आफिसर के यूनिफार्म मे उन्हें अक्सर सेल्यूट मारा करते थे। उनके पास जो भी महिलाएं आती वे उनका हाथ पकड-पकडकर सौम्या बहू के बारे मे पूछती पर वे सब निरुत्तर ही रहती। डा. सिह की पत्नी का हाथ मॉ ने इतनी सख्ती से पकड लिया था कि उसे छोडने का नाम नहीं ले रही थी। उनकी कद-काठी सौम्या भाभी से बहुत–कुछ मिलती-जुलती थी। उनके बार-बार कहने पर कि "अम्माजी, मैं आपकी सौम्या नहीं, डा. सिंह की पत्नी हू । आपकी बहू बच्चो को लेकर कैम्प मे गई है।" पर यह मात्र भुलावा ही था जो माँ को दिया जा रहा था। उसके बाद रसोईघर मे इस कमरे में बाहर से आते वह बाहर झांक-झाक कर देखती शायद सौम्या आती हुई दिखाई पड जाए, पर उनका सब प्रयास

वेकार रहता। सौम्या तो इस संसार से कुछ मास पूर्व ही जा चुकी थी। उसकी तस्वीर पर वच्चो ने श्रद्धापूर्वक पुष्पमालाएं चढा रखी थी। उसके सामने माथा टेककर ही वच्चे अपना दैनिक कर्म शुरू करते थे। भइया भी काम पर जाने से पूर्व उनसे विदा लेकर ही जाते थे। वह उन सवके वीच नहीं थी फिर भी प्रेरणा का केन्द्रविन्दु थी। माँ उस फोटो को देखकर ही शायद धीरे-धीरे सव–कुछ समझ गई थी और उन्होने लोगों को झकझोर कर सौम्या के वारे मे पूछना छोड दिया था।

जव कोई उनसे पूछता- माँजी सौम्या कहां गई तो वडी विवशता से हाथ नचाकर फोटो की ओर संकेत करती जो उनके सामने कार्निश पर रखी थी और ऐसा करते समय उनकी आंखो से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती, जिसे करुणा के हाथ रूमाल से पोछने लगते।

अठाईस

सुडौल काया, सांवला रग, नाक-नक्शा ठीक, उम्र यही कोई 30 वर्ष के आस-पास। बंगाली तात की साडी मे लिपटी करुणा साढे सात बजे सवेरे क्वार्टर नम्बर सात में पहुच जाती। विनू भइया के नौकरी जाने से पूर्व ही करुणा अपनी उपस्थिति से अवगत करा देती और आते ही सबसे पहले बिस्तर पर लेटी माँ को संभालती। माँ का बिस्तर गीला तो नहीं है, माँ शौचादि कार्यों से निवृत्त हो गई क्या ? आते ही प्रश्न पूछती। घर की जिम्मेदारी तो मम्मी की मृत्यु के बाद मनीषा ने सभाल ही ली थी पर माँ, जो बिलकुल बच्चे के समान अवश-अशक्त हो गई थी, उनको सभालने के लिये करुणा को रखना आवश्यक था। लेकिन करुणा की खोज भी डा नमिता की दूरदर्शिता की परिचायक थी।

माँ के जीवन के उत्तरार्द्ध मे इस पात्र ने जिस प्रकार अपने दायित्व को निभाया उसको देखकर करुणा को उपन्यास का पात्र बनाने को बाध्य होना पडा। अगर वह न होती तो शायद माँ को जीवन के अन्तिम वर्ष घिसट-घिसट कर काटने पडते।

यह बात अवश्य है कि वह एक वेतनभोगी महिला थी। विनू भइया को अपनी गाढी कमाई का एक हिस्सा करुणा को वेतन के रूप मे देना पडता था, पर वह भी आजकल संभव कहां है। आज के इस अर्थप्रधान युग मे बूढो की देखभाल पर रुपये खर्च करना लोग फिजूलखर्ची समझते हैं, जबकि भइया माँ की सेवा के लिये इतना कर रहे थे।

तो वापस वही लौट आये कि आखिर करुणा की खोज क्यों करनी पडी? जब विनू भइया माँ को कोलकाता लेकर आये और यह देखा गया कि माँ हमेशा के लिये मौन हो गई है तथा अपनी दैनिक क्रियाए भी स्वय करने

मे असमर्थ हैं, उस समय उनकी देखभाल की समस्या मुंह बाये आकर खडी हो गई। घर मे कोई औरत तो थी नहीं, बच्चे सब पढने वाले थे, स्कूल–कॉलेज जाने वाले थे। आज अगर विनू भइया की पत्नी जिन्दा होती और स्वस्थ रहती तो करुणा को रखने की कोई आवश्यकता नहीं थी। औरत की देखभाल दूसरी औरत ही कर सकती है। अगर भइया छुट्टी लेकर माँ की देखरेख करे तो उसकी भी एक सीमा होती है छुट्टियां कोई द्रौपदी का चीर तो है नहीं जो आगे से आगे बढती जाएगी। पहले ही सोम्या भाभी की बीमारी मे भइया की सारी छुट्टियां समाप्त हो गई थी। कितनी बार तो तनख्वाह तक कटने की नौबत आ गई थी। इसलिये डा. नमिता ने अस्पताल वालो से सम्पर्क करके करुणा को रख लिया था। वैसे यह निर्विवाद सत्य है कि महानगरो मे जहां और सब समस्याएं होती है, जिन्दगी अत्यधिक व्यस्त हो जाती है, आत्मीयता तिरोहित हो जाती है, संवेदनाएं लुप्त हो जाती हैं, पर कुछ सुविधाएं ऐसी होती हैं जो पैसा खर्च करने पर मिल जाती है। जैसे आपको सेवा कार्य के लिये नर्स चाहिए तो किसी भी अस्पताल से सम्पर्क करने पर वह आपको उपलब्ध करा दी जाएगी।

इसलिये जब करुणा को मॉ की देखभाल के लिये रखा गया तो उसने मॉ के जीवन के अन्तिम दो वर्षो मे जिस प्रकार तन और मन से मॉ की सेवा की, वैसी कोई बेटी या बहू ही कर सकती है। इसलिये अगर इस उपन्यास के उत्तरार्द्ध मे करुणा जैसी नारी पात्र का सृजन न करे तो शायद इस उपन्यास में कुछ रिक्तता का आभास अवश्य होगा या ऐसा लगेगा कि किसी के अस्तित्व को जानबूझकर नकार दिया गया है।

वास्तव मे विनू की मॉ के लिए करुणा उनकी देखरेख करने वाली हाड-मॉस की एक सेविका नही, बल्कि उनकी दिनचर्या का एक आवश्यक अग बन गई थी। प्रात सात बजे अपनी ड्यूटी पर आते ही वह मॉ को मजन-कुल्ला कराके, मुह–हाथ धोकर तौलिये से उन्हे अच्छी तरह स्पज करके अपने हाथो से चाय-नाश्ता कराती। उसके पश्चात् वहीं उनकी चादर ठीक करती, उन्हे नहलाती-धुलाती, पाउडर लगाती। उनके छोटे-छोटे बालो मे कघी करती। दोपहर का खाना मॉ को खिलाकर वह स्वय भी मॉ के सोने पर सो जाती। और जैसे ही संध्या होती, माँ की निगाहे बाहर टिक जाती। रेलवे क्वार्टर के बाहर बना हुआ घास का मैदान था। जहा व्हील चेयर पर घूमना मॉ को बडा प्रिय लगता था। विनू भइया इसीलिये मॉ के लिए पहियो

वाली कुर्सी लाये थे जिस पर सध्या होते ही करुणा मॉ को बैठाकर, उनकी साडी तथा वाल ठीक करके, उन्हे वाहर लॅान मे घुमाने ले जाती। उस समय माँ के चेहरे पर अपूर्व सतुष्टि का भाव उभर आता। जो आनन्द एक छोटे वच्चे को हरी घास पर खेलने से मिलता है, उसी निश्चल आनन्द की आभा मॉ के चेहरे पर दिखाई देती। माँ देखने का प्रयास करती कि कब वरसात बन्द हो और वे वाहर निकले और वर्षा वन्द होते ही वे बाहर चलने के लिए करुणा को झकझोरने लगती। मॉ करुणा के सम्पर्क की इतनी अभ्यस्त हो चुकी थी कि जिस दिन करुणा नहीं आती या एक दिन की भी छुट्टी ले लेती, तो माँ का सारा गुस्सा उस पर निकलता। दूसरे दिन उसको देखते ही मॉ मुंह फेर कर लेट जाती, उसके हाथ से खाना नहीं खाती, अगर जवरदस्ती उन्हे खाना खिलाया जाता तो वे थाली उठाकर उलटा देती। उनके मुँह मे कौर देने पर वे कौर निकाल कर थूकने लगती पर जब करुणा उनके पैरो पर हाथ रख कर कहती– माँ हमे माफ कर दो, अब हम छुट्टी नही लेगे। तो उनका सारा क्रोध शान्त हो जाता। वैसे करुणा के साथ उनका लगाव इतना गहरा हो गया था कि जब भी घर मे कोई मिठाई इत्यादि आती या फल वगैरह माँ को खाने को दिये जाते, माँ पहले उसकी ओर सकेत करती जिसका आशय यह होता कि पहले इसे खाने को दो, मैं बाद मे खाऊँगी।

विनू की मॉ की जीने की ललक भले ही तीव्र रही हो पर उनकी शारीरिक क्षमता धीरे-धीरे घटती जा रही थी। उनका शरीर दुर्बल होकर एक छोटे बालक सदृशय हो गया था। उनके लिए अब कोई डाक्टरी उपचार नहीं रह गया था। सब नाते-रिश्तेदारो को यही समाचार दे दिया गया था कि मॉ का दर्शन कर ले, माँ और काल में जैसे होड–सी लगी थी और मन्द गति से काल उन्हें अपने चक्र मे दबोचता जा रहा था।

भूल नही सकी है सुमि गरमी की छुट्टियों को, जब उसने मॉ को अन्तिम बार देखा था। बिस्तर से चिपकी हुई माँ की कलान्तिहीन देह केवल हड्डियो का ढांचा मात्र थी। तब भी मॉ ने विदा होते समय अपनी सारी साडिया, जो उनके सिरहाने रखी थीं उसके सामने रख दी थी और सकेत से कहा था– जो पसन्द आये ले ले। शायद यह उनकी आखिरी निशानी हो, मृत्युशैया पर लेटी माँ को बेटी की विदाई की चिन्ता थी जबकि बेटी इस बात को मन मे लेकर लौट रही थी कि शायद यह मॉ-बेटी का अतिम मिलन है। वाहर टैक्सी खडी थी। स्टेशन जाने के लिए बार-बार उसके नाम की पुकार

मच रही थी पर उस क्षण जब उसने माँ के पैर छुये तो माँ ने उसके हाथो को इतना कस कर पकड लिया था जैसे वे उसे कभी नहीं छोडेगी। पता नहीं माँ में कहा से इतनी शक्ति आ गई थी। शायद दीप बुझने से पहले उसकी लौ इसीलिये तेज हो उठती है। बडी मुश्किल से माँ से अपना हाथ छुडाकर सिसकी भरते हुए वह बाहर की ओर भाग पडी थी। भइया ने उसे समझाते हुए कहा था– रोते नही सुमी तुम भाग्यवान हो जो तुमने जीवित अवस्था मे माँ के दर्शन कर लिये। नहीं तो कल को अगर माँ नहीं रहेगी तो तुम्हें कितना पश्चाताप होता कि तुम मृत्यु से संघर्ष करती माँ को देखने एक बार भी नही गई।

और भइया के इन शब्दो ने उसकी दुखती रग पर जैसे फाहे का काम किया था। बहनें और भी थीं, भाई भी थे पर कोई भी माँ को देखने नहीं पहुच सका था। शायद सबकी अपनी-अपनी विवशताए थीं तथा अपनी परिस्थितिया थीं। किसी के ऊपर कार्यभार की अधिकता थी तो कोई गृहस्थी के चक्कर मे फसा हुआ था। किसी के लिए क्या कहा जा सकता है, पर माँ की निगाहे सवालिया बनी बार-बार बाहर ही देखती रहती, जैसे उन्हे किसी की प्रतीक्षा हो। कभी-कभी सबके मन में यह विचार आते कि माँ से बहुत बातें गुप्त रखी गई हैं, क्यों न उन्हे बता दिया जाये कि उनके वट वृक्ष के तीन पुष्प, उनके बेटे-बेटी और बडी बहू उस डगर पर गये हैं जहां से कभी कोई लौट कर नही आता। क्या माँ को इन सब बातो से अनजान रखना माँ के प्रति अन्याय नही होगा ? क्यो हम माँ को जानबूझ कर अंधकार में रख रहे हैं ? बडी ही द्वन्द्वात्मक स्थिति उत्पन्न होती। घर के सदस्य मिल–बैठकर अक्सर इस विषय पर चर्चा करते। पर जब डाक्टरों से सलाह करते और उनके सामने यह प्रस्ताव रखा जाता कि क्या माँ को सब घटनाक्रमो से अवगत करा दिया जाये, तो डाक्टरो का समूह उन्हे मना कर देता। वे कहते, "इनका शरीर बहुत जर्जर है। यह जिस हाल मे है उनको ऐसे ही छोड दिया जाए। अगर अपने घर के सदस्यो की मृत्यु का रहस्य इनके सामने उजागर कर दिया तो इनका दुर्बल हृदय इस आघात को सहन नही कर पायेगा। अगर कल को इन्हे माइन्ड हैमरेज हो गया तो इसके उत्तरादायी आप होगे।"

और तब भइया और घर के सारे सदस्य अपने दैनिक क्रियाकलाप मे लीन हो जाते और समय की गति अपने उसी क्रम से चलती रहती, माँ बिस्तर पर अर्द्धचेतन अवस्था मे पडी रहती।

तीस

वावूजी का पत्र सुमि को रिक्तता से उवार लेता था। वावूजी अक्सर कहते– "अरे जव तक मॉ-वावूजी जिन्दा है तव तक मायके की देहरी और घर-द्वार हैं, उसके वाद कौन किसे पूछता है ?" पहले वह इन सारे तथ्यो को नकार दिया करती थी, पर अव धीरे-धीरे उसे यथार्थ का ज्ञान हो गया है और आज जब वह सवको खोकर रीती रह गई है तव उसे इस तथ्य का और तीव्रता से एहसास होता है। उस दिन नवरात्रि की षष्ठी के दिन भी सुमि कैसी हतप्रभ–सी रह गई थी। पास ही में उसकी सहेली मीना वैठी थी जो बहुत दिनो वाद उससे मिलने आई थी। दोनो के बीच थी ढेर–सी वातें, घर की, स्कूल की, अन्य सहेलियो के सुख और दुख की कथाएं और व्यथाएं। दोनो के बीच कुछ भी दुराव और छिपाव नही था। सहज आत्मीय सम्बन्ध था उन दोनो के वीच, जिसकी डोर से वे बंधी हुई थी। उनके बीच बातो की कोई सीमा रेखा नही थी। उसी समय पोस्टमैन ने टेलीग्राम कहकर आवाज लगाई। सुमि के पति वाहर गये। टेलीग्राम वाहर ही पढ लिया और वाहर ही बाहर रख दिया। पूछने पर कहा कि वाहर कोई नही था, पर सुमि को इसका आभास अवश्य हो गया था कि कुछ–न–कुछ घटित अवश्य हो गया है। उसने मीना से भी अपने मन की बात कही कि जरूर कोई–न–कोई समाचार है। पर सुमि के पति टालमटोल करते रहे।

रात को जव सुमि सोने के लिये जाने लगी तो विस्तर पर जाने से पहले उसने देवी-देवताओ को नमस्कार किया तथा पूजाघर मे अपना माथा टेका तो यह देखकर हतप्रभ रह गई कि पूजाघर मे मॉ की फोटो रखी हुई थी। यह क्या और ऐसा क्यो ? ऐसा क्यो किया सुमि के पति ने? प्रश्नो के बवण्डर वात्याचक्र की तरह उसके चारो ओर घूमते रहे। विस्तर पर रात–भर करवटे वदलती रही, बार-वार सुशात से एक ही बात पूछती।

क्यो माँ की तस्वीर को कार्निस से हटाकर पूजाघर मे स्थापित कर दिया ?

हालांकि इसका अर्थ वह भली प्रकार समझती थी, पर उसे विश्वास नहीं हो रहा था। पहले तो सुशांत बात को टालते रहे, पर फिर स्वयं को भी संयत नहीं कर सके और बोले- सुनि दुखी मत होना, तुम्हारी माँ देवलोक मे चली गई हैं। बहुत कष्ट सहा उन्होने। अब उन्हे सब दुखो से मुक्ति मिल गई।

सुनि सुशांत के कन्धे पर सिर रखकर फफक उठी। उसे आज पहली बार यह अनुभव हुआ कि वह नितांत अकेली हो गई है। जिसकी आत्मा उससे जुडी हुई थी, वह अनन्त लोक की ओर गमन कर गई है।

भाई-दूज के दिन सुदूर प्रदेश मे बैठी सुनि जब कलशो के ऊपर टीका काढती है तो बार-बार उसके हाथ रुक जाते हैं। बार-बार भाइयों का और भतीजों का नाम लेती है और सातिया माँडती है, पर कलश का चारो ओर का सिरा भर नहीं पाता है। कहा तो कलशी की ऊपरी गर्दन इतनी भर जाती थी सातियो से, कि जरा-सी भी जगह खाली नहीं रहती थी और कहां बीच में गिनती टूट-सी जाती है, कुछ तो तोडकर चले गये। चले क्या गये, काल के गर्त मे समा गये। नही तो उनके जाने की भी कोई उम्र थी क्या ?

जब भी भाई-दूज आती है, सुनि यादों के जंगल मे भटकने लगती है। जो इस संसार मे जीवित हैं उनकी मंगल-कामना करते हुए कलशी पर टीका काढती है, सातिया माँडती है, चने बीनती है, जल का लोटा भर के रखती है, कहानी सुनती है। लेकिन जो बिछड़ गए हैं उनके लिए दो बूंद आंसू बहाकर अपने स्नेह को समर्पित करती है। उसे याद आता है उस समय पिता का वह घर, जिसके कण-कण मे उसके बचपन की अनेक स्मृतियां बिखरी पडी हैं और उसे याद आता है प्राणो से प्रिय वह नगर, जहां की कोई भी राह उसके लिए अनजानी नहीं है। पता नहीं ऐसा क्यो होता है ?

बचपन में साथ-साथ खेलने वाले भाई-बहनों मे विवाह होते ही भाई अपनी गृहस्थी में इतना रम जाता है कि उसके मन के किसी कोने मे रंच मात्र के लिए भी यह ध्यान नहीं आता कि कहीं सुदूर अंचल में स्थित बहन अपनी थाली में राखी सजाकर या थाली मे कुकुंम, अक्षत, नारियल लेकर उसकी मगल-कामना करते हुए स्फुट शब्दों मे बुदबुदा रही होगी। ईश्वर के समक्ष अपना आंचल पसार कर भाई के परिवार के लिये सुख-समृद्धि की कामना

कर रही होगी। भाई जिस स्नेह के सेतु झटक कर तोड डालता है बहन आजन्म उससे आवद्ध रहती है। अपनी घर-गृहस्थी मे लिप्त रहने के बावजूद भी उसके मन के किसी–न–किसी कोने मे भाइयो के लिए कोमल भावनाएं उपस्थित रहती हैं जिनमे मॉ-बाप के बाद भइया का ही स्थान रहता है।

इसी समय कामिनी बहन की लिखी पंक्तियां भी बार-बार उसके मानस मे चक्कर काटने लगती हैं जब सुमि अपनी विवशताओ के चक्रव्यूह मे फसकर दो-चार वर्ष तक नैहर नहीं जा सकी थी और छोटी बहन कामिनी से उसने कुशल-क्षेम जाननी चाही थी, उस समय उसने पत्र मे यही तो वाक्य लिखे थे–

जीजी, नीम चाहे कितना ही कडवा क्यो न हो, वह दवा बनकर पथ्य के काम आता है इसलिए वह ग्राह्य है। भाई चाहे कितना ही कठोर क्यो न हो, आखिर है तो भाई। नैहर की शोभा तो भाई-भतीजो से है। मॉ-बाप तो इस संसार मे अजर-अमर किसी के भी नही रहते हैं, आखिर भाई-भतीजो पर ही मन टिकाना पडेगा।" सुमि का रोम-रोम भाई-भतीजों को असीसता रहता है। उसका मन उनका कुशल समाचार जानने को सदा व्यग्र रहता है। मातृगृह का समाचार सुनते ही उसकी आंखो से गंगा-जमुना धारा वहने लगती है। कभी-कभी उसे लगता है, शायद बाबूजी सही कहते थे–

'अरे जब तक इस ससार मे मॉ-बाप जिन्दा हैं तब तक सब पूछते हैं। मॉ-बाप नही रहेगे तो कौन पूछेगा ?'

उस समय वह इस यथार्थ से कहां परिचित थी। उसे गर्व था अपने भाइयो के स्नेह पर, उनके प्रेम पर। वह सोचती थी सब अपनी धारा बदल सकते हैं, पर मेरे भाई नही। पर क्या यह सम्भव था? नही। समय का क्रूर प्रवाह अपने साथ बहुत–कुछ बहाकर ले जाता है। स्नेह, प्रेम सब–कुछ। आज उसे जिस कटु सत्य का ज्ञान हो गया है अगर उसे पहले ही यह ज्ञान हो जाता तो यह सब इतना तकलीफदेह नहीं होता।

लेकिन आज वह माँ से रिक्त उस घर मे माँ को अन्तिम भावाजलि देने जा रही है तो विनू भइया का चेहरा बार-बार उसकी आखो के सामने आ जाता है। किस तरह भइया ने रातो को जाग कर माँ की सेवा की थी और आज वह अध्याय भी समाप्त हो गया। तीन दिन तक ट्रेन मे सफर करते हुए सुमि के मन मे इन्हीं विचारो का मंथन होता रहा।

हावडा स्थित उस रेलवे क्वार्टर मे, जहा सुमि की माँ ने अन्तिम श्वास ली थी, जब सुमि ने प्रवेश किया तो सभी भाई-बहिन उसको देखते

ही बिलख पडे, उनके धैर्य का बाध टूट गया था।

'जीजी, माँ तो चली गई हम सबको छोडकर, अब क्या होगा?'

जबकि यह स्वत सिद्ध था कि माँ तो उस लोक मे बहुत पहले ही जा चुकी थी, केवल हाड-मास का शरीर विस्तर पर पडा था। पर संसारी लोगो का मोह तो उस मास-मज्जा से निर्मित शरीर से होता ही है। सब–कुछ जानते हुए भी कि शरीर क्षणभगुर है, नाशवान है, हम व्यक्ति की मात्र उपस्थिति से अपने–आपको सुखद अनुभूति का एहसास कराते है। जाने वाला तो चला जाता है अपने साथ अपनी व्यथाए, कथाएं लेकर पर पीछे उनकी स्मृतियो के दश मानस को मंथित करते रहते हैं।

विनू भइया उसी चौकी पर बैठे थे, जहा सौम्या भाभी एव माँ ने अन्तिम श्वास ली थी। नमिता ने कहा भी–

बुआजी, पापा जब से दादी का दाह-सस्कार करके आये हैं। इसी चौकी पर बैठे हैं। शायद यही उनकी माँ के प्रति भावाजलि है।

एक महीन धोती मे लिपटे, शाल ओढे हुए केशरहित विनू भइया बहुत उदास लग रहे थे और उदास क्यो न होते ? दो वर्षों से माँ के पीछे सब–कुछ भूल बैठे थे। बडे थे, घर के सारे काज उन्हीं के हाथ से लिखे थे। पहले सौम्या भाभी, फिर छोटा भाई परिमल और अब मॉ। भला ऐसा कौन–सा प्राणी होगा जो विचलित न हो जाय, पर भइया शान्त और सौम्य मुखमुद्रा मे अपने गालो पर हाथ धरे बैठे थे। और फिर बडे धीरे–से उठकर विनू भइया अपने बहनोई सुशांत के कंधों से लगकर फूट पडे थे। ऐसा लगा था जैसे इतने दिनो का धीरज का बांध आज स्रोत बनकर फूट निकला हो और सुशांत ने उनके कन्धो की थपथपाते हुए कहा था–

'शान्त हो जाओ विनू, तुमने अपनी ड्यूटी पूरी की, उनका अन्तिम समय सुख-शान्ति से गुजरा, यही क्या कम है ? उन्हे जीवित नरक तो नही भोगना पडा। तुमने उनकी सेवा–परिचर्या की, समस्त व्यवस्था की, बिरले ही ऐसा कर पाते हैं।'

दोनो एक–दूसरे के पास बैठ गये थे और फिर शुरू हुआ था बिन्दु छोटे भाई का वाचक की तरह सारा हाल बताना। सुदूर प्रदेश मे रहने वाला मंथन भी अपने परिवार सहित वहां पहुच चुका था। उस घर को प्रतीक्षा थी उन रिश्तों की जो मॉ के अश थे।

माँ ने जिस दिन अन्तिम श्वास ली थी वह भी नवरात्रि था। भइया के स्कूल मे अवकाश था, पर वे बाहर जाने को

उस दिन सवेरे से ही माँ ने खाना-पीना छोड दिया था। सेविका करुणा ने इस बात की ओर भइया का ध्यान भी आकर्षित किया था कि आज सवेरे से माँ का जी ठीक नही है। माँ रोज सवेरे ब्रेड-दूध खाती थी। वह भी मन से खाया नही गया था। जैसे ही माँ को नित्य कर्म के लिए कुर्सी पर बैठाया गया उनका सिर एक तरफ लुढक गया था। आनन-फानन मे डाक्टर को बुलाकर उनकी मृत्यु की पुष्टि की गई और डाक्टर ने उनकी नब्ज और पुतलियों को देखकर घोषित कर दिया था– 'सी इज नो मोर।'

यह सच था कि बिनू की माँ इस दुनिया से दूर अनन्त यात्रा पर चली गई थी। बिनू उस शोक को अपने भग्न हृदय मे समेटे हुए एक धोती पहने, जिससे उन्होने अपना ऊपरी हिस्सा भी ढक रखा था, गालो पर हाथ दिये बैठे थे। उन्हें प्रतीक्षा थी माँ के सगे–सम्बन्धियो की, रक्त के सम्बन्धो की।

सब जगह समाचार भेज दिया गया था। माँ के नैहर भी, जहा केवल एकमात्र सहोदर भ्राता था। सगी बहन तो पहले ही समाप्त हो चुकी थी।

तीस

शायद पाठक यह सोचकर आश्चर्यचकित हो कि माँ के अन्तिम विश्राम के समय इस चरित्र की उद्‌भावना कहां से फूट पडी। पर यह वह चरित्र है जिससे बिनू की माँ का बचपन से जुडाव रहा। यह उस गृह के बेटे थे, जहा बिनू के सभी भाई-बहिन ने अपने जन्म की पहली करवट ली थी। जहां उनका बचपन बीता था इसलिये इस चरित्र की उद्‌भावना किये बिना यह दंश उपन्यास अपूर्ण–सा रहेगा।

गंगा किनारे स्थित वह घर, जो नानी का घर था, जहा सब भाई–बहनो का बाल्यकाल बीता था। उनके ऊपर किसी का ममतापूर्ण कठोर अनुशासन था तो वह उनके मामा परमेशचन्द का, जिन्हे सम्पूर्ण काशी नगरी जानती थी इसलिए नही कि एक ओवरसियर के पुत्र थे, परन्तु इसलिये कि अगर जरा सी भी गुण्डागर्दी किसी ने की तो उसे छठी का दूध याद दिलाने के लिये परमेशचन्द हमेशा तैयार रहते थे। सारे भाई-बहिन उनसे डरते भी थे, पर मन ही मन मे उनको सबसे बहादुर समझते थे।

चालीस वर्ष पूर्व की काशी, जहां बिनू के मामा के घर का वह स्थान

रामनगर के इस पार काशी, हिन्दू विश्वविद्यालय के निकट ही था, पर बिलकुल सुनसान। रात के समय रिक्शे और गाडियां उधर आने से डरते थे। बियाबान जंगल में कोई मार कर फेक दे और हाथ भी न धोये तो क्या पता लगे! वास्तव में परिस्थितियो ने ही परमेश मामा को इतना साहसी बनाया था। उनके व्यक्तित्व को देखकर बेचन शर्मा उग्र की कहानी गुण्डा मे जो चरित्र दिखाया गया था वही व्यक्तित्व विनू के मामा मे स्पष्ट दिखाई पडता था। वह दूसरो के लिये भले ही गुण्डे थे, अपराधी वर्ग के साथ शातिर थे तो बेईमान और झूठे लोगो को लतियाना भी खूब जानते थे। उस समय जरा-सा मौका मिलते ही चोर–डाकू अपने हथियार लेकर उस मकान पर चढाई कर बैठते थे और मामा आवाज लगाते– अरे भाई वह बन्दूक लाना, कभी कहते बल्लम लाना, गंडासा लाना जब कि घर में लाठी छोड कोई भी हथियार न रहता। सब लोग ऊपर से देखते रहते और नीचे मामा चोरो से लाठी का खेल ऐसे खेलते जैसे लाठी मे मनई खेल रहे हो। एक बार तो मामा उनको दौडाने के लिये छत से नीचे ही कूद पडे थे और उनके पैरो की हड्डी टूट गयी थी। करीब छह महीने अस्पताल मे रहना पडा था। बच्चे लोग अपने स्कूलो मे गर्व से सिर ऊँचा करते हुए कहते– "जानते हो हमारे परमेश मामा ने अकेले छह चोरो को मार भगाया और अपने घुटनो की परवाह नही की।"

सच तो यह है कि परमेश मामा को क्रोध बहुत आता है। जिस समय उन्हे गुस्सा आता, वे आपे से बाहर हो जाते और सामने वाले की खैरियत न रहती। उसके मॉ-बाप और पूरे खानदान को गालियो से शुरू करते और उसकी सम्पूर्ण वंशावली की विरुदावलि गायी जाती। अगर कभी बसन्ती नानी के मुह से यह वाक्य निकल जाते कि "क्या परमेश, तू फेनाफेन होकर, नये कपडे पहनकर और जेब मे नोट ठूंस कर बाहर निकल रहा है और किसी की तुझे परवाह नहीं है।" तो वे तुरन्त आपे से बाहर हो जाते।

उनका सारा क्रोध उन कपडो पर उतरता जो वे पहने रहते और फिर वे पैन्ट और कमीज उतार कर उनकी सिलाई फाड़ने लगते और उसकी चिन्दी-चिन्दी करने को तैयार हो जाते। अगर रुपये उनके हाथो मे होते तो वे भी चिन्दी-चिन्दी करने लगते। उनके क्रोध की अग्नि के समक्ष इन चीजो की बिसात ही क्या थी। उस समय कभी बिजू उनका कमीज तथा विनू उनकी पेन्ट लेकर छिपा देते थे। उनके हाथो से नोट छीन लेते ताकि वे उसे बचा सके। अगर नानी नाश्ते या खाने के विषय मे दो बात बोल देती कि "तेरे

को तो नित पकवान चाहिये, दुनिया चाहे कुये मे पडे", तो चूल्हे की शामत आ जाती। पतीली, कडाही सब उलट दी जाती। पूरे कमरे मे दाल, चावल, सब्जी बिखर जाते। दरवाजे की चूले पकड-पकड कर वे हिलाने लगते जैसे कि दरवाजे को तोड डालेंगे। उस समय उन के क्रोध का भाजन विनू ,बिजू और सुमि को ही बनना पडता। लेकिन उसके बाद जब परमेश मामा की शादी हो गई तो इस कार्यक्रम मे मामी भी शामिल हो गई। तब मामी आगे-आगे भागती और पीछे-पीछे मामा गोजी लेकर उनके पीछे दौडते और बच्चे लोग मामी को बचाने की फिक्र करते रहते।

परिवार का हर सदस्य परमेश मामा से आतंकित रहता था। अगर किसी बहू के सिर से जरा कपडा उतर जाता तो मामा उसकी सत्तर पीढियो को कोस डालते। अगर सुमि जरा–सा छत के ऊपर बाल सुखाने के लिये खडी हो जाती तो उसे भी शब्दावलियो से विभूषित होना पडता। "क्या झोटा खोलकर छत पर खडी है। यह कोई भले घर की बहू–बेटियो के लच्छन हैं क्या ?"

परमेश मामा अपने तो रोज दोपहर में आल्हा गाने बैठ जाते। नानी के लाखो बार मना करने पर भी वे अपनी आदत से बाज नही आते। वे कहती– अरे परमेश आल्हा मत गा। घर मे लडाई झगडा करवायेगा क्या? तू क्या किसी को शाति से नही रहने देगा?

पर वे जितना गरजती, वे उतना ही जोर–जोर से आल्हा गा–गा कर सुनाते। पर रात को अगर सुमि, विजू, विनू को लैम्प की रोशनी मे 'चन्द्रकान्ता सन्तति' और 'भूतनाथ' पढते हुये देख लेते तो गालियों की बौछार कर डालते। सुमि और विनू को अभी भी याद है कि जब वे छोटे थे तब लोगो के मन मे इन उपन्यासो के पढने के पीछे कितना उत्साह था। कितने लोगो ने इसको पढने के लिये हिन्दी भाषा सीखी थी। दिन मे तो कोर्स की किताबो से स्कूल से उन भाई–बहनो को समय नही मिलता था और रात मे पढने पर वे मामा की तेज निगाहो से बच नही पाते थे। मामा कहते– साले बहुत उपन्यास पढने चले हैं। जासूस और चोरो को देखते ही बिस्तर मे दुबक जाते हैं, जगह गीली कर देते है। चले है "चन्द्रकान्ता सन्तति" और "भूतनाथ" पढने।

मामा का परिवार इतना रूढिवादी नही था कि वह प्राचीन परम्पराओ से जोक की तरह चिपके रहे। सभी लोग पढे-लिखे थे। पर अगर मामी को

सकटमोचन या विश्वनाथ मन्दिर तक भी जाना पडता तो वे बिना घूंघट निकाले और ऊपर चादर ओढे बगैर घर से नहीं निकल सकती थी। हालाकि मामी इस बात का पूरा ध्यान रखती थी कि उनसे इस विषय मे गलती न हो, पर अगर थोडी–सी भी चूक हो जाती थी तो मामा उनकी समस्त पीढियों का गालियों से स्वागत करने पर उतारू हो जाते।

पर यह कितने सुखद आश्चर्य का विषय था कि जो परमेश मामा घर–परिवार के लिये साक्षात् दुर्वासा ऋषि का रूप थे, वे किसी बच्चे या भांजे-भाजी के बीमार पडने पर जोर-जोर से रोने लग जाते थे और डाक्टर के घर के सौ-सौ चक्कर लगाते थे। सारी-सारी रात जागकर उसके सिरहने बैठे रहते थे। और उन्हीं परमेश मामा की क्रोधाग्नि बाहरी व्यक्तियो के लिये जैसे सुरक्षा कवच थी। अगर गंगा किनारे घास काटती घसियारिन या तगारी ढोती मजदूरिन को रास्ता चलते कोई मनचला फिकरा कस देता तो उसकी खोपडी से खून बहने में देर न लगती। सुमि और विनू के मानसतल में न जाने ऐसी कितनी घटनाएं सुप्त पडी है जब मामा की क्रोधाग्नि ने लोगो की अस्मिता को बचाया था।

एक बार जब विश्वविद्यालय मे स्टूडियों वाले ने फोटो खीचते समय कालेज की छात्रा के साथ असभ्य व्यवहार किया तो मामा ने मार-मार कर उसका थोबडा रक्त-रजित कर दिया था और पुलिस आने पर रातो रात गगा नदी पार कर बाहर चले गये थे। पुलिस वाले भी इस सभ्य गुण्डे से परिचित थ। और एक बार जब गगा नदी पर नौका विहार करते समय कुछ नौजवानो ने युवतियो के साथ छेडखानी की तो मामा अपने कुछ अजीज दोस्तो के साथ गोजी लेकर गगा नदी पर पहुच गये थे और उनके होश–हवास ठिकाने लगा दिये थे।

और सुमि को वह क्षण भी याद है जब अर्द्धरात्रि को सुनसान जगल से बचाओ-बचाओ की आवाजे आई थी और मामा अपने दोनो भानजों के साथ उस आवाज की ओर दौड पडे थे और वहां जाकर ज्ञात हुआ कि एक रिक्शे वाला कुछ गुण्डो के साथ साजिश करके काशी स्टेशन पर उतरे दम्पती को बहला-फुसला कर गलत रास्ते पर ले आया था और फिर सब मिलकर उससे रुपये और गहने छीनने की कोशिश कर रहे थे। मामा उन दम्पती को अपने घर लेकर आये। वे पति-पत्नी डर के मारे थरथर काप रहे थे। मामा ने उनको खाना खिलाया। सोने के लिये कमरा दिया और सवेरे उनके निर्दिष्ट

स्थान छोडकर आये थे। कभी-कभी सोचती हू मामा को सब बुरा ही बुरा कहते है पर अगर मामा उस दिन उस दम्पती की गुहार पर न दौडते तो उनकी अस्मिता और उनके प्राण सकट मे पड जाते और सवेरे उस स्थान पर उनकी लाशो के सिवाय कुछ न मिलता।

गगा किनारे स्थित यह घर, जहां सुमि–विनू का बचपन व्यतीत हो रहा था, वह परमेश मामा के कठोर अनुशासन की छत्र–छाया मे पोषित और पल्लवित हो रहा था। बाबूजी तो शुरू से सरकारी दौरे पर रहते थे, पर परमेश मामा के डर और भय के कारण ही वे बच्चे आवारा न बनकर पढाई-लिखाई मे होशियारी बरते जा रहे थे। उन्हे मालूम था कि उनकी प्रत्येक गतिविधि पर परमेश मामा की नजर रहती है। तभी तो एक बार जब स्कूल से छूटने पर सुमि दिन–भर घर नहीं लौटी और सहेलियो के साथ दुर्गाजी का मेला देखने चली गई तब उसकी कस कर पिटाई हुई थी। सुमि बार-बार यही कहे जा रही थी-मामा छोड दो, अब हम स्कूल से सीधे घर आयेगे। रास्ते मे कहीं इधर-उधर नही जायेगे। जायेगे तो घर पर बोल कर जायेगे।

पर मामा के हाथ और जबान थके तब न। उस समय परमेश मामा की बहू ने आकर सुमि को उनके हाथो से छुड़ाया था। आखिर छुडाती क्यो नही, मामी के वात्सल्य और स्नेह का केन्द्रबिन्दु भाजे-भांजी ही तो थे। पता नही मामी को ऐसा कौनसा रोग था या श्राप था कि उनके कम से कम छह सन्तान तो हुई थी पर जीवित एक भी नही बची थी। कोई अठमासिया होता तो छमासिया और अगर बेटा-बेटी पूरा भी होता तो कुछ दिनो बाद ही समाप्त हो जाता। जो मामा साक्षात् क्रोध की प्रतिमूर्ति थे, वे सन्तानो के गम मे धीरे-धीरे शिथिल पडते जा रहे थे। कभी-कभी वे सोचते, क्या वे ऐसे ही सन्तानहीन रह जायेगे। लेकिन भाग्यवश उसी समय परमेश मामा का ट्रांसफर हावडा हो गया था।

मामा-मामी को भी कोलकाता साथ ले गये और विनू और उनके भाई-बहिन सूने–से रह गये पर सबको यह मालूम हुआ कि कोलकाता मे ताडकेश्वर बाबा की कृपा से मामी को कन्यारत्न की प्राप्ति हुई है। वैसे आज के वैज्ञानिक युग में कोई इस पर विश्वास नही करेगा तो हम भी यह कहना चाहेगे कि चिकित्सा और चमत्कार दोनो साथ-साथ चल रहे थे, क्योकि कोलकाता बडा शहर था। वहां परमेश मामा ने मामी के इलाज मे कोई कसर बाकी नही रखी और उसी का नतीजा था की मामी एक पुत्र और पुत्री की

माँ बनी। लेकिन उसके बाद फिर उसी इतिहास की पुनरावृती होने लगी।

सुमि को वह घटना अभी अच्छी तरह याद है जब मामा ड्यूटी पर बाहर गये थे और मामी ने दर्द से कराहते हुए जुड़वा बच्चों को जन्म दिया था। सुमि ही दौडकर लेडी डाक्टर को बुलाकर लाई थी। जुडवा बच्चो को जन्म देने के बाद मामी की आंखे धीरे-धीरे बन्द होने लगी और वे अचेतन अवस्था मे चली गई। सुमि यह देख कर जोर से चिल्ला उठी–

"डाक्टर साहब, देखिये जरा मामी की आखे कैसे पथरा रही है और घर मे कोई तीसरा व्यक्ति भी तो नहीं है। हे भगवान ! मैं क्या करूं, अब क्या होगा ? मामा भी बाहर चले गये हैं, उन तक सूचना कैसे भेजी जाये, डाक्टर साहब, कुछ तो करिये।"

डाक्टर साहब इस भोली बच्ची का आर्तनाद सहन नहीं कर सके। उन्होने इंजेक्शन लगाते हुए कहा– "हम आखिरी बार कोशिश कर रहे हैं बेटी, भगवान पर भरोसा रखो।" और धीरे-धीरे मामी चेतन होती गई। जैसे ही उन्होने अपनी आखें खोली, सुमि खुशी के आवेश मे रो पडी और सवेरे जब परमेश मामा ड्यूटी से लौट कर आये तो सुमि ने सारी घटना का जिक्र उनसे किया। उत्तर मे मामा ने हौले से उसके कन्धो को थपथपाया था। हालाकि इन्हीं परमेश मामा ने सुमि के ब्याह मे इतना हडकम्प मचाया था कि लाठी तानकर खडे हो गये थे जब उन्हे ये मालूम पडा कि सुदूर राजस्थान सुमि बेटी का ब्याह हो रहा है तो वे गरज कर बोले थे–

"का उत्तर प्रदेश मे लडको का अकाल पडा था क्या जो बहनोईजी इतना दूर बेटी का विवाह कर रहे हैं। अरे पानी की एक-एक बूद वास्ते तरस जायेगी हमारी बिटिया। हम भी देखते है कैसे वे मनमानी कर लेते हैं और कैसे बिटिया का विवाह रचा लेते हैं अरे हम एके तो मामा है बिटिया के न तो भात भरेगे और न बिछुवा नथली पहिना कर मडप मे ले जायेगे। अरे पहिले तो हम मन्डवा ही नही गाडेगे तो विवाह वो कैसे रचायेगे।"

पर ऐन वक्त पर मामी के समझाने-बुझाने से उन्होने सारी रस्म कर दी थी और मंडवे में लाकर सुमि को बिठा दिया था पर जिस समय सुमि ससुराल के लिए विदा हुई उस समय वे पत्थर हृदय परमेश मामा जिस तरह फूट-फूट कर बच्चो की तरह रो पडे थे, उस दृश्य को देखकर परिवार का प्रत्येक सदस्य अचंभित हो रहा था। उस दिन लोगो को यह अनुभव हुआ था कि सुप्त ज्वालामुखी मे से लावा फूट पडा है। परमेश मामा की आखो से

लगातार गगा-जमुना धारा प्रवाहित हो रही थी और उन्होंने अपने गमछे से आसू पोंछते हुए सुमि को सहारा देकर धीरे-से कार मे प्रशान्त के पास मे बैठा दिया था।

सुमि की विदाई के अवसर पर जिस तरह परमेश मामा की आंखों से गगा-जमुना की अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी उसे देखकर यह अनुमान लगाना कठिन था कि कभी वे क्रोध मे आकर इतना रौद्र रूप धारण कर लेते थे कि बसन्ती नानी होश-हवास खोकर बेसुध हो जाया करती थी। विवाह के पश्चात् कुछ दिनों तक तो मामी को भी परमेश मामा का कोपभाजन बनना पडा, पर उसके बाद पता नहीं मामी ने क्या वशीकरण मन्त्र सिद्ध किया कि मामा उनके आगे-पीछे घूमते रहते और उनके क्रोध का समस्त ज्वार बसन्ती नानी को ही झेलना पडता।

बचपन से ननिहाल मे रहने के कारण सुमि, विनू ,बिजू बसन्ती नानी के आखो के तारे और उनके लाडले बन चुके थे। उनके पोते-पोती तो लम्बे अन्तराल के बाद हुए थे, इसलिए अपने स्नेह और वात्सल्य का अखूट भण्डार वे दोहिते-दोहिती पर ही उड़ेलती रहती। जब कोई पर्व या त्योहार होता चाहे, वह गगा दशहरा का त्यौहार हो या सक्रान्ति का, सारे बच्चे अपने कपडे लेकर बसन्ती नानी के आगे-पीछे घूमते रहते।

नानी कब चलोगी गंगा नहाने? देखो न, कितना दिन चढ गया है,। लोग नहा-नहा कर लौटने भी लगे हैं।

नानी हाथो मे गंगाजली लेती, झोले मे कपडे डालती, उस समय वे जो भी काम उन बच्चो को करने को कहती, वे दौड-दौड कर करते। रात को भी वे नानी की खटिया के आस-पास ही जमे रहते और उनसे कहानी सुनते-सुनते आगे-पीछे लुढक जाते। माँ उनको नीद से उठा-उठा कर अपने निर्दिष्ट स्थान पर सुलाती रहती। लेकिन गंगा किनारे स्थित उस मकान मे जब बाढ आती और वह विकराल रूप धारण कर लेती। उस समय घर छोडकर दूसरी जगह जाना पडता, पर जब नानी से घर छोडने की बात कही जाती तो अपना पोपला मुंह हिलाकर, हाथ नचा-नचा कर कहती–

ना रे ना, मैं तो मैं घर छोडकर कही न जाने की। कहीं चोर-चकार आकर सारा सामान ले गये तो क्या होगा तुम लोग जाओ, मैं तो यही रहूगी। मेरे लिये तो यही तीरथ है। तुम्हारे नाना की आत्मा का इसमें वास है, तो मैं तो यहीं रहूगी।

लेकिन एक बार बाढ ने भयंकर तबाही का रूप धारण कर लिया और गाव के गाव उसकी गोद मे समाने लगे। ऐसा लगा कि यह घर बाढ की चपेट को सहन नही कर पायेगा और धराशायी हो जायेगा। उस समय बसन्ती नानी के लाख ना-नुकर करने पर भी विनू भइया ने उस पोपले.मुह वाली हलकी-फुलकी नानी को अपनी गोद मे उठाकर नाव पर चढा दिया था। दूसरी जगह जाकर सब भाई-बहिन तो खेल मे रम गये थे, मॉ खाना बनाने का जुगाड करने लग गई थी। नई जगह वैसे भी गृहस्थी जमाने मे परेशानी होती है, पर बच्चो के तो पेट भरने ही थे। पर नानी का मन अपने घर मे ही अटका रहा। वे बार-बार एक ही रट लगाती-

चल सुमि, एक बार घर देख ही आये। कहीं कोई हिस्सा तो नही गिर गया! कहीं चोर कुछ उठाकर तो ले नहीं गये। जाने का मन न होने पर भी नानी की बात रखनी पडती। चारो ओर पानी ही पानी, कमर तक पानी में चलकर सुमि और नानी घर पहुंचते हैं, पर यह क्या, सीढिया पानी मे डूब चुकी हैं। घर के अन्दर जाने का रास्ता बन्द हो गया है। सुमि दुमन्जिले पर खिडकी के सहारे चढ कर छत से आगन मे कूद पडती है। आज सोचती है तो लगता है कितनी बडी गलती की थी। अगर हाथ-पैर टूट जाते तो! पर बचपन एक ऐसी अवस्था होती है जब बाल-मन हर स्थिति को खेल ही खेल मे झेल लेता है, वह आपदाओं से आशकाग्रस्त भी नहीं होता और न यह सोच पाने मे समर्थ होता है कि उत्सव मृत्यु मे भी परिवर्तित हो सकता है। नानी ने कितना बडबड किया था उस दिन "मरी सुमि, तुझे इस तरह ऊपर से नीचे कूदने को किसने कहा था। अगर तू लगडी–लूली हो जाती तो तेरे से शादी कौन करता?"

सुमि वही नानी के गले मे बाहे डालकर झूल जाती हैं और कहती है– "अरे नानी, तुम्हे छोडकर मैं कही न जाने की।" चारो ओर अथाह जल राशि, निर्जन टापू जैसा घर और नानी की गोद मे सिर छुपाये सुमि का मन आज भी अन्दर तक भीग उठता है। नानी के सिमटे दो झुर्रियोभरे हाथो का स्पर्श सुमि आज भी भूली नहीं है।

लेकिन वही घर, जो नानी के लिये तीरथ से कम नही था, जब परमेश मामा का क्रोध के ज्वार उमडता और उनका गुस्सा विकराल रूप धारण कर लेता, उस समय लगता जैसे सम्पूर्ण घर मे भूचाल–सा आ गया है। दरवाजे-खिडकियो को आवेश मे आकर तोडना, खाने की थाली को

उठाकर फेंक देना, यह सब परमेश मामा की क्रोध की अभिव्यक्ति के विभिन्न रूप थे और इन सब घटनाक्रमो के बीच कथित नानी रिरियाती रहती–

"अरे परमेश ऐसा मत कर रे, तुझे क्या हो गया है रे ? अरे कोई इसे समझाओ तो सही।

पर किसकी हिम्मत थी जो परमेश मामा का सामना कर सके। वे मूछो पर ताव देते हुए कहते- कौन साला माई का लाल है जो मेरे सामने मुंह खोल सके। किसने अपनी माँ का दूध पीया है जो मेरे ऊपर ऊंगली उठा सके।

उस समय विनू , विजू , उदयन, मुन्नू ही उनको संभाल पाते थे। पर इन सब आदतों के चलते एक दिन नानी को फालिज मार गया। वैसे यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि उसके पीछे परमेश मामा का क्रोधी स्वभाव था, बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि शायद वंशानुगत ही यह पक्षाघात का रोग उन्हें विरासत मे मिला है। क्योकि सबको याद है कि नानाजी जब वाराणसी मे ओवरसियर थे तब उन्हें भी पैरो में फालिज मार गया था।

अब बसन्ती नानी की दिनचर्या क्या होती। एक लकवाग्रस्त रोगी की दिनचर्या और हो भी क्या सकती थी। जो नानी दिन–भर में एक सैकण्ड के लिये भी विश्राम नहीं करती थी, कभी करेले तैयार करना, कभी सेम का अचार डालना, कभी लाल मिर्च में गोद-गोद कर मसाले भरने और बडी कडाही मे सारे घरवालो के लिये पकौडे डालकर कढी बनाना और बन जाने के बाद रगड-रगड कर कडाही माँजना, मतलब यह कि रसोई में उन्ही का साम्राज्य रहता था। लडकियों को तो कुछ करने भी नही देती थी वे कहा करती–

"कुवारी लडकियो के हाथ का कच्चा खाना मैं तो ना खाने की पराठे भले ही बनावाकर खिला दो।" तब उस घर मे कुंवारी लडकियो को तो जैसे मौज ही मिल गई थी, वे केवल पढाई-लिखाई करती और रसोई को हाथ भी नही लगाती। उनको हर तरह से समझाया जाता कि कुवारी कन्या तो देवी का रूप होती है। वह तो बिल्कुल शुद्ध होती है। नवरात्रि मे मामी और माँ भी तो कन्याओ को भोजन कराती हैं।

पर नानी इतने अधिक संस्कारों से बधी थी कि उनके गले यह बात नहीं उतरती थी। तो जो इतने अधिक परम्पराओ और छुआछूत से बधी हुई थी

उन्ही के साथ विधाता ने जो इतना निर्दयी व्यवहार किया, इसे विडम्बना और नियति का चक्र ही कहा जाएगा।

बसन्ती नानी के पैरो पर सबसे अधिक लकवे का असर पडा था वे बेजान हो गये थे। अपनी नित्य क्रियाओ के लिए बिस्तर से उठना उनके लिए दूभर था। वे पेशाब-शौच सब बिस्तर पर ही करने के लिए विवश थी। एक खटिया और उस पर पडी हुई गद्दी, उसी मे नानी लिपटी रहती थी। इस हालत मे ऊपर वाले सेवा करने वाले, व्यक्ति भी परेशान हो जाते हैं, क्योकि सेवा करना सबके वश की बात नही होती। सेवा मार्ग पर चलने वाले को सहिष्णुता और धैर्य की विशेष आवश्यकता होती है। उन्हें अपने सुखों को तिलांजलि देनी पडती है। नानी की सेवा का जिम्मा लिया विनू की माँ ने, जो उनकी नींद सोती और उनकी नींद जागती। अगर रात को सिरहाने बैठे-बैठे उनकी आख लग जाती तो बसन्ती नानी जोर-जोर से चिल्लाने लगती– और विनू की माँ नीद मे से अचकचा कर उठती और गद्दी बदल कर दूसरी गद्दी बिछाती।

मामी को रसोई मे लगना पडता और वे नानी को समय नही दे पाती। माँ का सकटमोचन जाना, गंगा स्नान करना, वहा जाकर ढेरो कपडे धोना, सब छूट गया था। घर मे बहू थी, जवान बेटियाँ थी, जो घर का सारा काम कर लेती थी और माँ की दिनचर्या नानी की दिनचर्या के साथ सम्मिलित हो गई।

विनू की माँ, जो इतने मनोयोग से, तन-मन से बसन्ती नानी की सेवा में अहर्निश लगी हुई थी, पर उन्हे बदले मे क्या मिलता था–उलाहना, उपालभ, जली-कटी बाते। उस समय विनू के बाबूजी अपना घर तक नही बनवा सके थे, इसलिये अक्सर सुनने को मिलता–

"अरे बिन्दा मकान अपने नाम कराने के लिए दिन–रात सेवा कर रही है और मकान नही तो शायद माँ जमीन का छोटा–सा टुकडा ही इसके नाम लिख दे। इसीलिए अपना सब कामकाज छोडकर दिन–भर माँ मे ही लगी रहती है।"

पर विनू की माँ पर इन सब तानों-कसालों का कोई असर नहीं पडता था। वह तो माँ के प्रति अपना कर्तव्य समझकर सेवा कर रही थी और इस बात को भी जानती थी कि सेवा के मार्ग पर चलना कांटो की राह पर चलना है। जिस पर चलने वाले व्यक्ति के अन्तर्मन को व्यंग्य–बाणो के

तीर-तरकशो का सामना करना ही पड़ेगा। और इसी बात के मद्देनजर ही परमेश मामा ने जीते-जी माँ से मकान अपने नाम करा लिया था, वैसे कानूनी रूप से एकमात्र पुत्र होने के कारण अधिकारी तो वे थे ही, पर इस अधिकार पर कोई दूसरा कब्जा न कर ले, इसीलिए उन्होने उस पर वैध मुहर लगवा ली थी। नानी को उठाकर गोद मे बिठाकर वसीयतनामे के कागजों पर अपना नाम डलवाकर उनसे दस्तखत भी करवा लिये थे। बसन्ती नानी अर्द्धचेतन अवस्था मे थी, दस्तखत तो उन्होंने कर दी दिये थे, पर उनके मुंह से जो वाक्य निकले थे वे जैसे पत्थर की लकीर हो गये। उन्होंने कहा था- मैं कहे देती हू परमेश, मैं अगर मर जाऊ तो मुझ मरी को हाथ मत लगाइयो। मेरा अन्तिम काम भी तेरे हाथ से नहीं होगा, मैं कहे देती हूं।

कहते हैं कि चौबीस घण्टे में एक बार सरस्वती साक्षात् हमारी जबान पर आकर बैठ जाती है। उस समय जो भी बात जबान पर आ जाये, वहीं सच हो जाती है सो यही नानी के साथ भी हुआ था। बडी बेटी और बडे दामाद की मौत ने नानी को तोडकर रख दिया था। केवल उन्हे प्रतीक्षा थी यमराज की। जब बसन्ती नानी की मौत का समाचार परमेश को मिला था, उस समय वे हैडक्वार्टर से बाहर ड्यूटी पर जा चुके थे। जहा-जहां उनकी ड्यूटी की सभावना थी सब जगह फोन से सम्पर्क किया गया पर सम्पर्क साधते-साधते चौबीस घण्टे लग ही गये। इतनी देर तक नानी की मिट्टी और अधिक रखना मिट्टी की दुर्दशा करना था, इसलिये उनके दोहिते विजू, विनू, बिन्दू ही उनको कन्धा देकर शमशान ले गये थे तथा उनका अतिम संस्कार कर दिया था।

माँ फफक-फफक कर रो पडी थी। उन्हे लगता था जैसे उनके पास अब कोई काम ही नहीं रह गया था। परमेश मामा तीन दिन बाद जब काशी लौटे तो विनू की माँ के आगे पुक्का फाडकर रो पडे थे-

यह क्या हो गया जीजी, अरे ऐसा तो मैंने सोचा भी नही था ? मेरी जनमदायिनी माँ इतनी कठोर कैसे हो गई कि उनके अतिम क्षण मे उनके दर्शनो से वचित ही रहा ? बताइये जीजी, क्या दोष था मेरा ? क्या कहती माँ, जो भवितव्य है वो तो होकर ही रहता है, उसे हम-आप कोई भी टाल नहीं सकते हैं।

सुमि को जब नानी की मृत्यु का समाचार मिला तो वह हतप्रभ रह गई थी। समाचार भी बहुत देर से मिला। समय पर भी नहीं मिला कि उस

पुराने घर मे, जहा सुमि का वचपन वीता था, जाकर दो वूद आंसू वहा सके। गरमी की छुट्टियो मे जाने पर घर की विना रैलिग की सीढिया चढते समय वार-वार नानी का झुरियोभरा चेहरा सामने आता है जो अव अतीत के आईने में सिमट कर रह गया है। माँ की आंखो से आसुओ की धारा प्रवाहित होने लगती है। वार-वार कानो मे एक ही वाक्य गूजने लगता है। गगा की ओर अकेली मत जइयो। जवान लडकी है, कोई श्राप न लग जाये। और नानी ही उस गगा की गोद मे समाहित हो चुकी थी।

सच हो यह है कि इस जिन्दगी की हाट मे जो कुछ देता है, वही पाता है। जो जैसा करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है। जो जैसा वोता है, वैसा ही काटता है। अगर हमने किसी को कुछ दिया है तो हम कुछ पाने के हकदार हैं और अगर हमने घृणा, द्वेप, ईर्ष्या ही वाटी है तो वहीं हमारे हिस्से में आयेगी।

परमेश मामा के क्रोधी स्वभाव से जिस तरह परिवार के सदस्य आतंकित और भयभीत थे, वे क्या कभी उन्हे बदले मे स्नेह दे पाये ? उन्होने कभी यह जानने का प्रयास भी नही किया कि उनके पिता के कठोर मन के कोने मे कहीं उदारता या करुणा की पतली–सी धारा प्रवाहित हो रही है, जिसमें अवगाहन करने पर वे स्नेह से प्लावित हो सकते हैं।

जिन सन्तानो के लिये उन्होने ईश्वर से न जाने कितनी मनौतियां मानी थी, उन्होने जन्म लेकर उन्हे पितृत्व का गौरव तो सौंप दिया था पर क्या सच्चे अर्थो मे पिता को जो मान-सम्मान देना था, दे पाये थे? दोनो पक्षो में ही कहीं–न–कहीं कमी अवश्य रह गई थी। अगर ऐसा न होता तो परमेश मामा का घर शान्ति, प्रेम का जीवन्त प्रतीक वन कर अशाति का अरण्य स्थल न वनता।

चाहे वेटी हो या वेटा, दामाद हो या वहू ,जव देखो जमीन के वटवारे की ही वाते करते और मामा के सामने जव इसका जिक्र छिडता, परमेश आपे से वाहर हो जाते और आवेश मे आकर जोर-जोर से वोलने लगते– "एक-एक को देख लूंगा सालो को। किसी को भी जमीन का एक इच टुकडा नही दूंगा। गिद्ध की तरह नजर जमाए वैठे हैं। अरे, हमको ऐरा–गैरा–नत्थू खैरा समझ रखा है क्या ?"

उनकी सन्तानें अपने-अपने पक्ष वालो को इकट्ठा करती। किसी के नैहर वाले इकट्ठा होकर उनको घेर लेते। अश्लील गालिया निकालते।

दोनो पक्षों में वाक्‌युद्ध चलता रहता, कभी-कभी हाथापाई तक की नौवत आ जाती। जब वातावरण सीमा से अधिक तनावपूर्ण हो उठता, तो वीच मे आकर बचाव करती उनके भाजे विजू की वहू नीरा, एक अघोपित मध्यस्थ की भूमिका अदा करती, अरे भई यह क्या कर रहे हैं आप लोग। घर में लडाई का मैदान समझ रखा है क्या ? अरे, वे तो वुजुर्ग है पर वेटे-वहुएं तो कम से कम अपनी सीमा मे रहें।

· उस समय वे एक बार शान्त हो जाते, पर दूसरे रोज सवेरा होते ही फिर वहीं रामायण दुहराई जाती। सुमि को अभी भी स्मरण है, जब पिछली गरमी की छुट्टियो में वह पीहर गई थी तो टैक्सी से उतरते ही सवसे पहले परमेश मामा ही दिखाई दिये थे। उसका सामान उतार कर वरामदे मे रख दिया था। चार वर्ष के लम्वे अतराल के पश्चात् सुमि नैहर गई थी, सो भी इकलौते भतीजे की वीमारी का समाचार सुनकर रहा नहीं गया था तव। टैक्सी से उतरते समय मन पता नही कैसा हो गया था। उस दिन देखा था कि परमेश मामा कितने दुवरा गये थे। सिर के सारे वाल सफेद हो गये थे, बार-बार एक ही बात की पुनरावृत्ति करते थे—

अरे साले लोग हम से जमीन का वंटवारा करायेगे। अरे, मैं मर जाऊगा पर कटी उंगली पर पेशाब नही करूगा। किस माई के लाल मे हिम्मत है कि मेरे से जमीन ले सके। जव सुमि पन्द्रह दिन नैहर मे बिताकर विदा हुई थी तव अपने दामाद से मिल कर कैसे बच्चो की तरह फूट-फूट कर रो पडे थे—

अरे अब हमारा ई भगवाने मालिक है, अरे ई सब जमीन ही हमको ले डूबेगी।'का पता हमरा अव का होगा। सुमि ने आर्द्र स्वर मे कहा था- नही मामा, ऐसा नही कहते।

और कह भी क्या सकती थी। न तो उसका वश परमेश मामा पर था और न उनकी सतानो पर। पर उस समय सुमि को यह क्या मालूम था कि यही उसका परिमेश मामा से अतिम बार मिलना है, कि इस घर मे वे कभी दिखाई नही देगे।

फरवरी मास की गुलाबी सर्दियो मे जव सुमि को यह समाचार मिला कि परमेश मामा नही रहे तो सुमि का मन कहीं गहराई तक रो पडा था। कुछ भी हो, वे उसके इकलौते सगे मामा थे। बिलकुल निकट का रक्त सम्बन्ध, उसकी माँ के इकलौते सगे भाई। पर क्या मिला परमेश को? क्या वे अपने

इकतीस

"मैं विन्दु बेटे और पूर्णा बहू के साथ अवश्य जाऊगा। कोलकाता उसके लिए अनजान शहर है, नयी-नयी शादी हुई है, पहली बार विन्दू बहू को लेकर जा रहा है। नयी बहू है। वहा की बोली भी नहीं समझती है। मैं उन दोनो के साथ जाऊगा। उनकी नयी गृहस्थी को ठीक से जमा दूगा।"

विनू के बाबूजी छोटे बेटे विन्दू के साथ कोलकाता जाने की जिद किये बैठे थे क्योकि वह शादी के बाद पहली बार बहू को लेकर कोलकाता जा रहा था। उधर विन्दू बाबूजी की नजरे बचाकर माँ के सामने हाथ जोडते हुए कह रहा था- "अम्मा, बाबूजी को हमारे सग मत भेजो, वे हमारे साथ चलेगे तो हमारी नाक मे दम कर देगे। वे क्या अभी भी हमे छोटा बच्चा समझते हैं। वे सवेरे चार बजते ही दरवाजे पर डन्डा मारना शुरू कर देंगे, राम-राम बोलना शुरू कर देगे, उस पर भी हम नहीं उठेगे तो जोर-जोर से भजन गाना शुरू कर देगे, बाबूजी को हमारे साथ जाने से रोक लो अम्मा।"

विनू की माँ ने बाबूजी को बहुतेरा समझाया पर वे कहा मानने वाले थे। वे तो उनके रवाना होने के चार घण्टा पहले ही स्टेशन जाकर बैठ गये थे। जिस तरह वे घर से चार घण्टे पहले ही जाकर स्टेशन पर बैठ जाया करते थे कि कहीं उनकी गाडी न छूट जाये उसी तरह उन्होने इस ससार से विदाई भी चटपट ली थी।

एक-एक कर उसके गले से लग गये थे। सव अपने-अपने मुख से वावूजी की अतिम यात्रा का शब्दो द्वारा चित्राकन कर रहे थे। उदास स्वर मे बडे भइया कह रहे थे– उस दिन सवेरे हास्पिटल से एम्बुलेंस मे डालकर तेरी सौम्या भाभी को घर लाये थे। वावूजी उनको देखते ही वच्चो की तरह ताली पीटकर हर्षोत्फुल स्वरो मे वोल पडे थे- "मैं कहता था न वडी वहूरानी अवश्य स्वस्थ होकर घर लौटेगी। अरे, उन्हे अभी वहुत–सारे काम करने हैं। अभी तो वेटी का व्याह करना वाकी है। मैंने जीवन जी लिया, पहले मैं जाऊगा, वे क्यो जायेंगी, उनके सारे काम अभी अधूरे पडे हैं।"

वावूजी की आदत थी कि सवेरे-सवेरे जो संवाद वोलना शुरू करते, दिन–भर उसी को दोहराते रहते। उस दिन पता नहीं इन वाक्यो की उन्होने कितनी वार आवृत्ति की होगी, 'वे क्यो जाएंगी, पहले मैं जाऊंगा, उन्हे ढेर–सारे काम करने हैं।'

उस दिन छोटी वहू पूर्णा ने जव उनसे दूध पीने के लिए कहा तो वोल पडे थे– 'वस आज-आज दूध पी रहा हूं। कल से मेरा दूध वन्द कर दीजियेगा।'

उनकी गर्दन मे हलका-हलका दर्द हो रहा था। पूर्णा के हाथ होले-हौले उनकी गर्दन की नसो पर तेल मसल रहे थे पर उनका दर्द कम नहीं हो रहा था। वे कह रहे थे- मेरी गर्दन जोर से दवाइये ना!

पूर्णा ने कहा भी– वाबूजी, आप यह क्या कह रहे हैं भला कोई ऐसे भी कहता हैं क्या? तो बाबूजी बोले– क्या फर्क पडता है एक दिन तो जाना ही है।

सध्या होते-होते बावूजी शिथिल–से हो गये थे। पेट की नसें फूल गई थी। डाक्टर को बुलाया गया था। उन्होने बाबूजी को अस्पताल ले जाने की सलाह दी थी और जैसे ही विनू भइया ने टैक्सी रोकी। बाबूजी ने दम तोड दिया था। हास्पिटल ले जाने का भी समय उन्होने नही दिया था। रोना-धोना भूल कर सब हतप्रभ थे। किसी को इस बात का अन्दाज नहीं था कि जो बाबूजी कल तक बिलकुल स्वस्थ थे, आज उनके बीच से एकाएक चले जायेगे। जब डाक्टर ने घोषित कर दिया कि बाबूजी नही रहे तो सब फूट-फूट कर रो पडे थे। विनू भइया ने दुखते हृदय से, शान्त भाव से बाबूजी का सारा कारज किया था। शोकमग्न हृदयो को सात्वना देने के लिए आने-जाने वालो का तांता लगा हुआ था लेकिन लोगो के मन में सशय था।

बाबूजी का तो लोगो ने सोचा ही नहीं था। कल शाम को ही तो बाबूजी को मैदान मे टहलते सभी ने देखा था। लोगो ने तो सौम्या भाभी का सोचा था। लेकिन जैसे ही वे घर मे प्रवेश करते, सौम्या बिस्तर पर बैठी दिखाई पडती और उनके संवेदना प्रकट करने पर बिलख पडती— 'अरे हम तो अच्छे-भले बैठे हैं, हमे कहां मौत ले गई। हमारे तो बाबूजी चले गये। वे कल हमारे अस्पताल से लौटने के बाद यही रट लगाये रहे कि बहूरानी तुम्हे ढेर-सारे काम करने हैं पहले मै जाऊगा। तुम नहीं जावोगी। अरे भइया हम अब का बताये, बाबूजी अपनी उम्र हमे उधार दे गये। अरे हम उनका यह ऋण कैसे चुकायेगे ?"

कभी-कभी एकान्त में बैठी सुमि सोचती है, क्या बाबूजी को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था। कुछ दिनो पहले जब सुमि को उनका पत्र मिला, तब ऐसा ही तो लगा था। उन्होने लिखा था— "मैं जहा भी शरीर का त्याग करूं वहीं मेरा दाह संस्कार कर दिया जाये। मेरी मिट्टी को यहा-वहा न घसीटा जाये।"

काशी सबसे बड़ा मुक्ति का पावन स्थल है। विजू भइया को समाचार मिलने पर उन्होने अतिम कारज की सारी तैयारी कर रखी थी पर बाबूजी के न रहने के बाद उनकी इच्छा का सम्मान किया गया।

असम मे स्थित सबसे छोटे भइया मथन को जब बाबूजी के न रहने का समाचार मिला तो वह प्लेन से तुरन्त भागा-भागा आया और इस तरह फूट-फूट कर रोने लगा जैसे कोई छोटा बच्चा रोता है। भइया ने उसे सांत्वना देते हुये अपने कंधे से लगा लिया था।

पत्र लिखना बाबूजी के दैनिक कार्यक्रम मे समाहित था। उन्होने एक बार पत्र में सुमि को यह भी लिखा था- 'जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये।' मैं जब इस संसार से चला जाऊ तो मेरी मृत्यु का शोक कभी न करना। अरे माँ-बाप किसी के हमेशा थोडे ही जीवित रहते हैं।

आज भी उनके पत्रो के शब्द सुमि के कानो मे गूंज रहे हैं, पर क्या वो व्याकुल मन को धैर्य बंधा सकते हैं? वह अपने मन के हाहाकार को किस कोने मे जाकर प्रकट करे! कितनी भी कोशिश करे, पर भूल नहीं पाती बाबूजी का वह अनुशासित व्यक्तित्व। जब बाल्यावस्था में बाबूजी चार बजे ही पढ़ने के लिए उठा देते, पढाई पूरी न करने पर और गगा स्नान न करने पर नाश्ता भी नहीं मिलता। स्कूल से हर मास सभी भाई-बहिनो की मासिक प्रगति की रिपोर्ट माँगी जाती। पर उन्ही बाबूजी के व्यक्तित्व का वह कौनसा कुसुम के

समान कोमल रूप था कि सुमि को जरा–सा भी भाई लोगो के हाथ लगाने पर गरज उठते- अरे यह तो लक्ष्मी है, इसे सब मिलकर क्यो मार रहे हो? समझ लो, बहुत पाप लगेगा।

उनके व्यक्तित्व का नवनीत के समान वह कौन-सा रूप था जो सुमि की विवाह के बाद विदाई सहन न कर सकने के कारण गंगा तट पर जाकर बैठ गये थे? वह भावुक पिता का कौन-सा रूप था जो छोटी बेटियो के विदा होने पर वे सारी रात हिलक-हिलक कर रोये थे? इसे सुमि के सिवा आज तक कौन जान सका है!

विनू के बाबूजी, जिन्होने सामाजिक वर्जनाओं को नकार कर, सामाजिक दंशो की परवाह न करते हुए अपनी गृहस्थी को खण्ड-विखण्ड होने से बचा लिया था। जिन्होने मान-अपमान, घात-प्रतिघातो को सहन करते हुए इतिहास के क्षेत्र मे नवीन धारणाओ को जन्म दिया था और विश्व के कोने-कोने में जाकर अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया था।

महापुरुष के महाप्रयाण के समाचार को सुनकर सभी स्तब्द, विश्वास ही नहीं होता है कि आपने इस ससार से सदा के लिये विदा ले ली है सुमि ही क्या जिसने भी सुना कि विनू के बाबूजी डा त्रिवेदा का महा प्रयाण हो गया वे एक बारगी अचभित से रह गये। ऐसे सशक्त व्यक्तित्व को क्या मृत्यु समाप्त कर सकती है? जिन्होंने इतिहास के क्षेत्र मे नवीन मान्यताओं को रेखाकिंत किया था ऐसा कौन सा स्थान था जहा आपने अपना शोधपूर्ण भाषण नहीं दिया था, पूर्व से लेकर पश्चिम तक, काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक मरु भूमि से आसेतु समुन्द्र की सीमा को नापते हुए भ्रमण करते हुये जब आप अपने हाथो मे स्थित छडी के द्वारा कुतुबमीनार को विष्णु ध्वज एव ताजमहल को शिवमदिर घोषित करते थे और उनके पीछे अकाटय तर्क देते थे उस समय सभी के मन मे जैसे एक भुचाल सा आ जाया करता था। कुछ ने तो आपके सिद्धान्तो पर हिन्दुत्व के प्रबल पक्षधर होने की मोहर भी लगा दी थी कुछ धर्मान्ध लोगो ने तो आपको अपहृत एव जान से मारने की धमकी तक दे डाली थी इसलिये सुरक्षा के दृष्टिकोण से आपकी जितनी भी पुस्तकें प्रकाशित हुई उनमे कही पर भी आपका चित्र नही छापा गया था। आप साधनारत तपस्वी की तरह जीवन पर्यन्त ऐतिहासिक अनुसंधान मे लगे रहे आपकी सक्रियता को देखकर कुछ लोगो ने आपको व्यंग्यबाणो से दशित किया पर आप सभी आधातो को शंकर की तरह गरलपान करते रहे लेकिन आपकी आसन्न मृत्यु ने सभी को झकझोर कर रख दिया है।

आपके महा प्रयाण का समाचार सुनकर आपकी जन्मस्थली सम्पूर्ण विहार शोकग्रस्त है जहाँ पर आपने प्राग्ण मौर्य विहार जैसे शोध ग्रथ की रचना की थी जिस पर आपको विद्या वाचस्पति (पी.एच.डी.) की उपाधि दी गई थी। विहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, वैशाली, विद्यापीठ मुजफ्फरपुर जहॉपर आपने ज्ञान का प्रकाश फैलाया था सभी शोकमग्न है। आज सोननदी की लहरे भी व्याकुल होकर सिर धुन रही है और पूछ रही हैं कहॉ गया हमारे तट पर विचरण करनेवाला–इतिहास सेतु में नवीन अध्याय जोडने वाला डा त्रिवेदा? ये सारे प्रश्न अनुत्तरित होकर लौट आते हैं क्योकि सभी शोकमग्न हैं कौन किसे उत्तर देगा?

समाचार पत्रो से ज्ञात हो रहा है कि आपकी पुण्य स्मृति मे स्थान–स्थान पर श्रद्धांजलि सभायें आयोजित की जा रही है। भण्डारकर ओरियटल रिसर्च इंस्टीयूट, पूना मे शोक प्रस्ताव पारित हुये कहा गया है कि डा. त्रिवेदा जैसे गवेषणा पूर्ण इतिहासकार की रिक्तता की पूर्ति होना असंभव है। विहार के भोजपुरी समाज ने आपको श्रद्धासुमन अर्पित करते हुये कहा कि–

"डा त्रिवेदा (नेऊर चाचा) जैसन मानुष ई धरती पर बार–बार नाही आवेला। व ऊ हमेशा माटी से जुडल रहलन। इतिहास की फुलवारी को पालन पोषण करने वास्ते ही उ आयल रहलन उनकर कमी कौनो माई का लाल पूरी नाही कर सकेला।"

राजस्थान की वीर प्रसूता धरती जिसके हर कौने पर स्थित विश्वविद्यालय के प्रागण मे आपने अपना विद्वत्ता पूर्ण भाषण दिया बीकानेर जहाँ आज से कई वर्षों पूर्व सर वाल्टर नोबल स्कूल मे आपने शिक्षण का कार्य किया जहॉ आपके सहयोगी चिमन गोस्वामी, नरोत्तम स्वामी, विद्याधरजी शास्त्री जैसे विद्वान थे जो आपके यहां से जाने के बाद भी आपको विश्वविद्यालय की सगोष्ठियो मे आमन्त्रित करते थे, जहॉ आपको ऐतिहासिक गवेषणापूर्ण अवधारणाओ को सुनकर युवा पीढी को एक नई दिशा मिलती थी। मासिक पत्रिका विश्वम्भरा ने भी आपके देहावसान पर गहरा दु:ख प्रगट किया।

आपका जितना अधिकार हिन्दी और भोजपुरी भाषा पर रहा है उतना ही संस्कृत और अंग्रेजी पर भी रहा है इसलिये लदन से भी आपके अनेक शोध पत्र प्रकाशित हुये उन्होने भी शोक प्रस्ताव पारित कर आपको श्रद्धासुमन अर्पित किये।

काशी आपका मुख्य निवास स्थान रहा क्योकि आपकी समस्त सन्तानो की शिक्षा दीक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे ही हुई थी। जहॉ पर पतित पावनी गंगा मैया की लहरे प्रातः सायं काल आपके विचरण की साक्षी वनी थी। आज आपके निधन का समाचार सुन कर गंगा नदी की लहरे भी शोकाकुल है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय कॉलेज डॉ. सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व विद्यालय काशी विद्यापीठ आदि सभी स्थानो पर आपको श्रद्धासुमन अर्पित किये गये है जिसमे कहा गया है कि –

'यह सच है कि डा त्रिवेदा के जीवन काल में उनके सिद्धांतों को मान्यता नही मिली। आपके द्वारा प्रतिपादित तिथिक्रम को इतिहास की पाठ्यपुस्तिका मे समाहित नहीं किया गया क्योकि ऐसा करने पर उलटफेर होना संभव था। लेकिन वह दिन दूर नहीं जब इतिहासकारो को उन नवीन मूल्यों को स्वीकार करना पडेगा और ऐसा अवश्य होगा क्योकि इतिहास का प्रवाह अविछिन्न प्रवाह है वह अपने नवीन मूल्यो को सदैव जोडने के लिये प्रतिवद्ध रहता है।

सुमि के ऐसे वाबूजी, तुम सदा जीवित रहोगे, इतिहास के पृष्ठो मे। तुम जीवित रहोगे प्राक्मौर्य बिहार के पृष्ठों मे, और तुम जीवित रहोगे इंडियन कार्नोलोजी मे। जहां पर भी कुतुबमीनार को हिन्दू स्मारक विष्णु ध्वज के रूप मे प्रतिपादित किया जायेगा, वहा तुम्हारा नाम अवश्य गुजित होगा। तुम अमर हो वाबूजी, इतिहास की नवीन मान्यताओं मे क्या ऐसे व्यक्ति को मौत मार सकती है?

तुम्हारी सन्तानो को तुम पर गर्व है। तुमने उन्हे सिर ऊचा उठाकर चलना सिखाया। तुमने उन्हे जीवन का नया आयाम दिया। तुम जीवित हो, सब भाई-वहिनो की स्मृति मे।

तुम्हे समर्पित है आसुओ का अर्घ्य। मानसिक और सामाजिक दशो से पीडित सुमि का व्याकुल हृदय तुम्हारी स्मृतियो की शीतल छांव मे ही सुख की प्राप्ति करता है। उसकी आंखो से प्रवाहित अविरल अश्रुधारा तुम्हे भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करती है। हे अनन्त पथ के पथिक ! तुम्हारी आत्मा को चिर विश्रान्ति प्राप्त हो।

गंगा किनारे स्थित उस घर मे वडी चप्पलो का स्थान अब छोटी चप्पले लेने लगी है। वेदो के स्वर भले ही न गूजते हो, उनके स्थान पर आधुनिक सगीत की स्वर लहरिया गूंज रही हैं, पर तुम्हारी सन्तानो की स्मृतियो मे गगा स्नान से लौटते हुए तुम्हारी खडाऊ की खट-खट की ध्वनि

अभी भी ध्वनित हो रही है। चाहे वह देश के किसी भी कोने मे क्यो न बस गया हो, तुम्हारे द्वारा गेय वैदिक ऋचाओ का स्वर **"एको ब्रह्म, द्वितीयो नास्ति"** अभी भी उनके कानों मे गुंजित हो रहा है। तुम तो उस परम ब्रह्म मे एकाकार हो गये पर तुम्हारे द्वारा मिले पाथेय को लेकर वे जीवन यात्रा मे मिले सामाजिक एव मानसिक दशो का शकर की तरह गरल पान कर तुम्हारे आदर्शों को पुन. स्थापित करने के लिए सकल्पित हैं। क्योंकि काशी शिव की नगरी है। जहा का ककड़ भी शंकर है। जहां का व्यक्ति सामाजिक, मानसिक, व्यक्तिगत दंशो से उबर कर एक नई राह का निर्माण करता है। क्योकि उसको अमृत तत्त्व देने वाली है माँ गगा की लहरे, जो पतितपावनी गगा कोटानुकोटि मनुष्यो की पुण्य आस्था का केन्द्र बनी रही है और बनी रहेगी।

।। इति शुभम् ।।